प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

आचारांग सूत्र

भाग २

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ८८ वाँ रत्न

श्री आचारांग सूत्र

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट के बाहर, ब्यावर -३०५ ९०१

✆ : (01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ 2626145
२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ 251216
३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड**
४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ 252097
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ 23233521
७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ 5461234
८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**
९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, **भीलवाड़ा** ☎ 236108
१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ 25357775
१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३६४, शॉपिंग सेन्टर, **कोटा** ☎ 2360950

मूल्य : २५-००

चतुर्थ आवृत्ति — **वीर संवत् २५३२**
१००० — **विक्रम संवत् २०६३**
नवम्बर २००६

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ 2423295

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

किसी भी धर्म का मुख्य आधार उसका श्रुत साहित्य होता है। जिसमें उस धर्म के उपासकों के आचार-विचार, तात्त्विक विधि विधानों का वर्णन होता है। अन्य धर्मों की अपेक्षा जैन धर्म में श्रुत साहित्य का ज्यादा महत्व पूर्ण स्थान है। इसका कारण है कि जैन धर्म के श्रुत साहित्य के उपदेष्टा कोई सामान्य साधक नहीं होते हैं। इसके उपदेष्टा सर्वोत्कृष्ट साधना के स्वामी अनन्त ज्ञान दर्शन के धारक वीतराग तीर्थंकर प्रभु होते हैं। वे राग द्वेष के विजेता होने से उनकी वाणी में पूर्वापर अंश मात्र भी विरोधाभास नहीं होता है। जबकि अन्य दर्शनों में यह बात संभव नहीं है। तीर्थंकर प्रभु भव्यात्मा के आध्यात्मिक विकास के लिए जो ज्ञान कुसुमों की वृष्टि करते हैं, उन सभी कुसुमों को विमल बुद्धि के स्वामी गणधर प्रभु झेल कर आगम माला के रूप में गुंथन करते हैं।

तीर्थंकर प्रभु केवल अर्थ रूप वाणी के उपदेशक होते हैं। गणधर प्रभु उस अर्थ रूप वाणी को सूत्र बद्ध करते हैं। आज हमारे यहाँ आगम साहित्य की जो महत्ता एवं प्रामाणिकता है वह इसलिए नहीं कि वे गणधर कृत है, बल्कि इसलिए है कि इसके अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर प्रभु की वीतरागता है।

चूंकि हमारे सूत्रों का मूलाधार प्रभु की अर्थ रूप वाणी है। इससे स्वयमेव सिद्ध है कि सूत्रों का आधार अर्थ हैं, न कि अर्थ का आधार सूत्र है। पर साथ में यह भी ध्यान रखने की बात है कि अर्थ भी दो प्रकार का होता है। एक अर्थ वह जिसके आधार पर श्रुत का सर्जन होता है और दूसरे प्रकार के अर्थ का आधार श्रुत है। आगम मर्मज्ञ विद्वान् आचार्यादि श्रुत की टीकादि के द्वारा अर्थ करते हैं।

प्रथम अर्थ का उद्गम अनन्त ज्ञानदर्शनधर तीर्थंकर भगवन्त हैं, जिसके आधार पर गणधर भगवन्त श्रुत की रचना करते हैं। अतएव नियमतः सर्व मान्य होता है। उसमें किसी को कोई प्रकार के ननूनच की गुजाईश रहती ही नहीं है। किन्तु दूसरे अर्थ के लिए सर्व मान्य नियम नहीं की वह मान्य हो ही। इसलिए दूसरे अर्थ की मान्यता लिए नियमा नहीं बल्कि भजना है। यदि आचार्यादि के द्वारा किया गया अर्थ श्रुत के अनुकूल हुआ हो तो मान्य होता है। इसके विपरीत यदि प्रतिकूल है, बाधक है, तो बाधक वाला अंश अमान्य होता है। बाधक होने के मुख्य दो कारण हैं पहला कारण तो श्रुत सर्जक गणधर भगवन्तों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के बाद जिन-जिन विद्वान् आचार्यादि ने श्रुत का अर्थ किया उनका ज्ञान एवं क्षयोपशम उनकी तुलना में अल्प होता है। दूसरा आचार-विचार की शिथिलता/न्यूनता के प्रभाव से वैचारिक और मान्यता भेद के कारण अर्थ में जान बूझकर गड़बड़ी कर दी जाती है। जैसा कि मध्य काल में हुआ। इस प्रकार वर्तमान में उपलब्ध अर्थ प्रथम प्रकार का अर्थ नहीं, प्रत्युत दूसरे प्रकार का है जिसका आधार श्रुत है। इसलिए इसे प्रथम अर्थ की भांति मौलिक एवं परममान्य नहीं कहा जा सकता है। पर जो श्रुत है जिसके आधार पर भाषान्तर किया गया है वह तो मौलिक ही है।

वर्तमान में उपलब्ध आगम साहित्य दो भागों में विभाजित है-अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य। अंग प्रविष्ट में इग्यारे अंग है उनमें आचारांग सूत्र का प्रथम स्थान है इसमें क्या सामग्री का संकलन है वह इसके नाम से ही फलितार्थ हो जाता है। इस सूत्र का सम्पूर्ण विषय आचार-धर्म से सम्बन्धित है। श्रमण जीवन की साधना, आचार-विचार, विधि निषेध आदि का जितना मार्मिक एवं विस्तृत-विवेचन इस अंग सूत्र में है। वैसा अन्य सूत्रों में कहीं नहीं है। चूंकि मोक्ष के अव्याबाध सुखों को प्राप्त करने का मूल सम्यक् आचार है और अंगों का सार तत्व आचार में रहा हुआ है। दूसरी बात संघ व्यवस्था की दृष्टि से आचार-संहिता की सर्व प्रथम आवश्यकता होती है। जब तक आचार संहिता की स्पष्ट रूपरेखा न हो वहाँ तक सम्यग् प्रकार से आचार का पालन नहीं किया जा सकता। इन्हीं कारणों से इस सूत्र को अंग साहित्य में प्रथम स्थान दिया गया है।

आचारांग सूत्र के दो श्रुत स्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम आचार अथवा ब्रह्मचर्य है। इसके नौ अध्ययन एवं ५१ उद्देशक है। उनमें से सातवां अध्ययन अभी विच्छेद गया हुआ है। इस श्रुत स्कंध में सूत्र रूप में श्रमणाचार (अहिंसा, संयम भाव, कषाय विजय, अनासक्ति, विमोक्ष आदि) का वर्णन है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध जिसका नाम आचार चूला है। चूला से तात्पर्य पर्वत अथवा प्रसाद पर जैसे शिखर अथवा चोटी होती है, उसी प्रकार प्रथम श्रुतस्कन्ध की यह चूला रूप चोटी है। इसमें श्रमण चर्या से सम्बन्धित (भिक्षाचरी, गमन, स्थान, वस्त्र-पात्र आदि एषणा, भाषा विवेक, शब्दादि विषय, विरति महाव्रत आदि) का वर्णन है।

नंदी सूत्र में इस सूत्र के परिचय के लिए निम्न पाठ दिया गया है -

"से किं तं आयारे? आयारे णं समणाणं णिग्गंथाणं आयार-गोयर वेणइय-सिक्खा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भासा-अभासा-चरण-करण जायामायावित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते तं जहा - णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे।''

प्रश्न - वह आचारांग क्या है ?

उत्तर - आचारांग में श्रमण निर्ग्रन्थों का १. आचार २. गोचर ३. विनय ४. वैनयिक ५. शिक्षा ६. भाषा ७. अभाषा ८. चरण ९. करण १०. यात्रा-मात्रा इत्यादि वृतियों का निरूपण किया गया है। वह संक्षेप में पांच प्रकार का है यथा - १. ज्ञानाचार २. दर्शनाचार ३. चारित्राचार ४. तपाचार और ५. वीर्याचार।

यानी तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्ररूपित और पूर्व महापुरुषों द्वारा आचरित ज्ञानादि की आराधना विधि को आचार कहते हैं तथा उसके प्रतिपादक ग्रंथ को आचाराङ्ग सूत्र कहते हैं। इसमें मोक्षप्रद तप में श्रम करने वाले, समस्त जीवों के प्रति वैर का शमन करने वाले, इष्ट अनिष्ट में समभाव रखने वाले, निर्ग्रन्थों के आभ्यन्तर और बाह्य विषय कषाय कंचन कामिनी आदि की परिग्रह रूपी गांठ से निर्मुक्त संतों के आचरण करने योग्य विधि-निषेध का वर्णन है।

इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं और पच्चीस अध्ययन हैं। प्रथम श्रुत स्कन्ध के नौ अध्ययन हैं - १. शस्त्र परिज्ञा २. लोक विजय ३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व ५. लोकसार ६. धूत ७. महापरिज्ञा ८. विमोह और ९. उपधानश्रुत। अभी ७ वाँ महापरिज्ञा अध्ययन व्यवच्छिन्न हो चुका है। दूसरे श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन हैं - १. पिण्डैषणा २. शय्याएषणा ३. इर्या ४. भाषा ५. वस्त्रैषणा ६. पात्रेषणा ७. अवग्रह प्रतिमा ८. स्थान नैषैधिका ९. उच्चार प्रश्रवण १०. शब्द ११. रूप १२. परक्रिया १३. अन्योन्य क्रिया १४. भावना और १५. विमुक्ति। ये सब २५ अध्ययन हुए। दूसरे श्रुतस्कन्ध के पहले से ७ वाँ सात अध्ययनों को पहली चूला ८ वें से १४ वाँ इन सात अध्ययनों को दूसरी चूला, १५ वें अध्ययन को तीसरी चूला और १६ वें अध्ययन को चौथी चूला कहा है। यद्यपि द्वितीय श्रुतस्कन्ध पांच चूलिकासों में विभक्त माना गया है। इनमें से चार चूला आचाराङ्ग में है और पांचवीं चूला आचारांग से पृथक कर दी गई है जो निशीथ सूत्र के नाम से स्वतंत्र आगम मान लिया गया है। जिसमें आचारांग में वर्णित आचार में दोष लगने पर इसकी विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

दोनों श्रुतस्कन्ध के ८५ उद्देशक हैं। पहले श्रुतस्कंध के ५१ है - यथा शस्त्र परिज्ञा के ७, लोक विजय के ६, शीतोष्णीय के ४, सम्यक्त्व के ४, लोकसार के ६, धूत के ५,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महापरिज्ञा के ७, विमोह के ८ और उपधान श्रुत के ४। दूसरे श्रुतस्कन्ध के ३४ हैं। पिण्डैषणा के ११ शय्याएषणा के ३, ईर्या के ३ भाषा के २, वस्त्र के २, पात्र के २, अवग्रह के २, शेष नौ के एक-एक के प्रमाण से ९ में कुल ३४ हुए। इस प्रकार दोनों श्रुत स्कन्ध के ८५ उद्देशक हुए।

भाषा की दृष्टि से प्रथम श्रुतस्कन्ध में तात्विक विवेचन की प्रधानता होने से इसकी रचना सूत्र शैली में की गई है। जिसके कारण इसके भाव-भाषा शैली में क्लिष्टता है। जबकि दूसरे श्रुतस्कन्ध में साधना के रहस्य को व्याख्यात्मक दृष्टि से समझाया गया है। इसलिए इसकी शैली बहुत सुगम एवं सरल है। प्रथम श्रुत स्कन्ध जहाँ छोटे-छोटे वाक्यों में गंभीरता युक्त रहस्य भरा हुआ है, वैसा दूसरे श्रुतस्कंध में नहीं है।

आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का अन्वय सहित प्रकाशन पूर्व में संघ द्वारा हो चुका है। जिसका अनुवाद पण्डित रत्न श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र" ने बीकानेर में श्री अगरचन्द भैरुदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था में रह कर किया। अब दूसरे श्रुतस्कंध का प्रकाशन किया जा रहा है। इसके अनुवादक सम्यग्दर्शन के सह सम्पादक **श्री पारसमलजी चण्डालिया** है। जिसे श्रीमान् धर्मप्रेमी सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्दजी पींचा जोधपुर निवासी ने पूज्य पण्डित रत्न श्री घेवरचन्द जी म. सा. को सुनाया और जहाँ-जहाँ संशोधन की आवश्यकता महसूस की गई वहाँ किया गया। इसके बाद मैंने भी इसे पढ़ा। इसकी अनुवाद की शैली संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र वाली रखी गई है। इसमें मूलपाठ-कठिन शब्दार्थ-भावार्थ एवं आवश्यकतानुसार विवेचन भी दिया गया है। संशोधित प्रथम आवृत्ति के प्रकाशन के बाद इसकी द्वितीय आवृत्ति फरवरी २००१ में प्रकाशित हुई वह भी अल्प समय में अप्राप्य हो गयी तो इसकी तृतीय आवृत्ति जनवरी २००४ में प्रकाशित की गयी। प्रकाशन की उपयोगिता को देखते हुए अब इसकी संशोधित **चतुर्थ आवृत्ति** प्रकाशित की जा रही है।

संघ का आगम प्रकाशन का कार्य पूर्ण हो चुका है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में **धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई** की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हों वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबहन शाह** एवं पुत्र रत्न **मयंकभाई** शाह एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध की यह चतुर्थ आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। पूर्व प्रकाशित तृतीय आवृत्ति को **१. श्रीमान् किशोरजी सराफ दुर्ग २. श्री रोशनजी सोनी दुर्ग ३. श्री सुनिलकुमारजी टाटिया रायपुर ४. श्री प्रकाशचन्दजी सा. डागा रायपुर** ने पूज्य पं. र. श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को पूज्य श्री जी की अनुकूलतानुसार उन्हें सुनाया। पूज्य श्री जी ने जहाँ भी आवश्यक समझा, उचित संशोधन हेतु संकेत किया, तदनुसार यह चतुर्थ संशोधित आवृत्ति भी **आदरणीय शाह साहब** के अर्थ सहयोग से ही प्रकाशित की जा रही है। पूज्य श्री जी सुनाने वाले सभी श्रावकों एवं आदरणीय शाह साहब का संघ अत्यन्त आभारी है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके **आदरणीय शाह परिवार** के आर्थिक सहयोग के कारण इसका **मूल्य मात्र २५)** ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन संशोधित आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ।

ब्यावर (राज.)
दिनांक: २५-११-२००६

संघ सेवक
नेमीचन्द बांठिया
श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ
१.	**प्रथम अध्ययन पिण्डैषणा**	**१-१०१**
१.	प्रथम उद्देशक	१-१८
२.	द्वितीय उद्देशक	१८-२७
३.	तृतीय उद्देशक	२८-३७
४.	चतुर्थ उद्देशक	३७-४४
५.	पञ्चम उद्देशक	४४-५३
६.	षष्ठ उद्देशक	५३-६०
७.	सप्तम उद्देशक	६१-६८
८.	अष्टम उद्देशक	६९-७९
९.	नवम उद्देशक	७९-८६
१०.	दशम उद्देशक	८७-९४
११.	एकादशम उद्देशक	९४-१०१
२.	**द्वितीय अध्ययन शय्यैषणा**	**१०२-१४७**
१.	प्रथम उद्देशक	१०२-११५
२.	द्वितीय उद्देशक	११५-१३०
३.	तृतीय उद्देशक	१३०-१४७
३.	**तृतीय अध्ययन इर्यैषणा**	**१४८-१७६**
१.	प्रथम उद्देशक	१४८-१५९
२.	द्वितीय उद्देशक	१५९-१६८
३.	तृतीय उद्देशक	१६८-१७६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं. विषय	पृष्ठ
४. चतुर्थ अध्ययन भाषाजात	**१७७-१९७**
१. प्रथम उद्देशक	१७७-१८६
२. द्वितीय उद्देशक	१८६-१९७
५. पञ्चम अध्ययन वस्त्रैषणा	**१९८-२१७**
१. प्रथम उद्देशक	१९८-२१२
२. द्वितीय उद्देशक	२१३-२१७
६. षष्ठ अध्ययन पात्रैषणा	**२१८-२२८**
१. प्रथम उद्देशक	२१८-२२४
२. द्वितीय उद्देशक	२२४-२२८
७. सप्तम अध्ययन अवग्रह प्रतिमा	**२२९-२४४**
१. प्रथम उद्देशक	२२९-२३६
२. द्वितीय उद्देशक	२३६-२४४
८. अष्टम अध्ययन स्थान सप्तिका	**२४५-२४७**
९. नवम अध्ययन निषीधिका	**२४८-२४९**
१०. दशम अध्ययन उच्चार प्रस्रवण	**२५०-२६०**
११. एकादश अध्ययन शब्द सप्तक	**२६१-२६९**
१२. द्वादश अध्ययन रूप सप्तक	**२७०-२७१**
१३.त्रयोदंश अध्ययनपरक्रिया सप्तक	**२७२-२८३**
१४. चतुर्दश अध्ययन अन्योन्य क्रिया	**२८४**
१५. पञ्चदश अध्ययन भावना	**२८५-३५६**
१६. सोलहवाँ अध्ययन विमुक्ति	**३५७-३६६**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	२५-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्री आचारांग सूत्र

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन

प्रथम उद्देशक

द्वादशांगी में आचारांग सूत्र का प्रथम स्थान है। इस के दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपआचार और वीर्याचार, इन पांच आचारों का वर्णन सूत्र शैली में किया गया है। अतः प्रथम श्रुतस्कंध भाव, भाषा एवं विषय की दृष्टि से गहन एवं गंभीर है जबकि द्वितीय श्रुतस्कंध में प्रमुख रूप से चारित्राचार (साध्वाचार) का उपदेश शैली में वर्णन किया गया है। अतः भाव, भाषा एवं विषय की दृष्टि से यह श्रुतस्कंध सरल एवं सुगम है। प्रथम श्रुतस्कंध में वर्णित चारित्राचार का इस द्वितीय श्रुतस्कंध में विस्तृत वर्णन किया गया है। अतः चारित्र की सम्यक् आराधना करने के लिये दूसरे श्रुतस्कंध का अध्ययन करना परम आवश्यक है।

आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध में १६ अध्ययन हैं और इनके ३४ उद्देशक हैं। पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में इस प्रकार का वर्णन है-

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा-असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, पाणेहिं वा, पणएहिं वा, बीएहिं वा, हरिएहिं वा, संसत्तं, उम्मिस्सं, सीओदएण वा, उसित्तं रयसा वा, परिघासियं तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, परहत्थंसि वा, परपायंसि वा, अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे वि संते णो पडिग्गाहेज्जा ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - से - वह, **भिक्खू** - भिक्षु (साधु), **वा** - अथवा, **भिक्खुणी** - भिक्षुणी (साध्वी), **गाहावइ कुलं** - गाथापति (गृहस्थ) के घर में, **पिंडवाय पडियाए** - पिंडपात प्रतिज्ञा से-आहार प्राप्ति के लिये, **अणुपविट्ठे समाणे** - प्रविष्ट हुआ, **जं** - जो, **पुण** - फिर, **जाणेज्जा (जाणिज्जा)** - जाने, **असणं** - अशन, **पाणं** - पान, **खाइमं** - खादिम, **साइमं** - स्वादिम, **पाणेहिं** - प्राणियों से, **पणएहिं** - पनक के जीवों से, **बीएहिं**- बीजों से, **हरिएहिं** - हरितकाय से, **संसत्तं** - युक्त (ऊपर ऊपर से लगे हुए), **उम्मिस्सं** - मिश्रित (मिला हुआ - पूर्णतया एकमेक हुआ), **सीओदएणं** - शीतोदक से, **उसित्तं** - गीला, **रयसा** - सचित्त रज (धूल) से, **परिघासियं** - परिघर्षित-भरा हुआ, **तहप्पगारं** - तथा प्रकार के, **परहत्थंसि** - गृहस्थ के हाथ में, **परपायंसि** - गृहस्थ के पात्र में, **अफासुयं**- अप्रासुक-सचित्त, **अणेसणिज्जं** - अनेषणीय-दोष युक्त, **मण्णमाणे**- मानता हुआ, **लाभे वि** - प्राप्त होने पर भी, **णो** - नहीं, **पडिग्गाहेज्जा (पडिग्गाहिज्जा)**- ग्रहण करे।

भावार्थ - भिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी ऐसा जाने कि अशन, पान, खादिम और स्वादिम द्वीन्द्रियादि रस जनित प्राणियों से, बीजों से, पनक के जीवों के संसर्ग से, हरितकाय से संयुक्त है या मिश्रित है अथवा सचित्त जल से गीला है अथवा सचित्त धूल से भरा हुआ है तो इस प्रकार का अशन पान खादिम और स्वादिम गृहस्थ के हाथ में या गृहस्थ के पात्र में हो तो साधु सचित्त तथा सदोष मानता हुआ प्राप्त होते हुए भी उस आहार को ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत श्रुतस्कंध के पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन में यह बताया गया है कि - साधु-साध्वी को संयम पालन करने के लिए किस तरह से एवं कैसा आहार करना चाहिये? आगमों में साधु साध्वियों के लिये आहार ग्रहण करने के एवं आहार त्याग के छह-छह कारण बतलाये गये हैं। आहार ग्रहण करने के छह कारण इस प्रकार हैं -

वेयण १ वेयावच्चे २ इरियट्ठाए य ३ संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए ४ छट्ठं पुण धम्मचिंताए ६॥

- १. क्षुधा वेदनीय सहन नहीं हो सकने के कारण अर्थात् क्षुधावेदनीय की शान्ति के लिये २. वैयावृत्य-सेवा करने के लिए ३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए ४. संयम पालन करने के लिए ५. प्राणों को धारण करने के लिए, शरीर निर्वाह के लिये ६. धर्म चिंतन करने के लिए - इन छह कारणों से साधु-साध्वी आहार करते हैं। यानी छह कारणों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में से किसी एक कारण से आहार की आवश्यकता होने पर साधु कैसा आहार स्वीकार करे? यह प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है। गृहस्थ के घर जाकर साधु प्रासुक एवं एषणीय आहार ही ग्रहण करे।

प्रश्न - प्रासुक किसे किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रासुक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है - **'प्रगतः-प्रणष्टाः असवः प्राणाः यस्मात् स प्रासुकः।'**

अर्थ - जिसमें से प्राण निकल गये हैं उसे प्रासुक कहते हैं अर्थात् अचित्त।

प्रश्न - एषणीय किसे कहते हैं ?

उत्तर - **'इषु इच्छायाम्'** धातु से एषणीय शब्द बना है। जिसका अर्थ है साधु जीवन की मर्यादा के अनुसार ग्रहण की जाने वाली वस्तु अर्थात् कल्पनीय वस्तु को एषणीय कहते हैं। अर्थात् आधाकर्म आदि दोषों से रहित आहार आदि एषणीय कहलाते हैं।

प्रश्न - आधाकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - **''साधु प्रणिधानेन यत् सचेतनं अचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, चीयते वा गृहादिकं, व्यूयते वा वस्त्रादिकं तत् आधाकर्म।''**

अर्थ - साधु के लिये सचित्त वस्तु को अचित्त की जाय तथा अचित्त वस्तु को पकाया जाय तथा मकान आदि बनाया जाय एवं वस्त्रादिक बुने (बनाये) जाय, उसको आधाकर्म कहते हैं।

प्रश्न - अशन, पान, खादिम, स्वादिम किसे कहते हैं ?

उत्तर - **'अश्यते इति अशनम्'** - जो खाया जाय। अर्थात् रोटी, दाल, भात आदि आहार अशन कहलाता है।

'पीयते इति पानम्' - जो पीया जाय। अर्थात् पेय पदार्थ पानी, दूध आदि आहार पान कहलाता है। परन्तु 'पान' शब्द से प्रमुख रूप से पानी को ही ग्रहण करना चाहिये।

'खाद्यते इति खादिमम्' (खाद्यम्) - जो खाया जाय अर्थात् सूखा मेवा, फल आदि आहार खादिम कहलाता है।

'स्वाद्यते इति स्वादिमम्' (स्वाद्यम्) - जिससे मुख स्वादिष्ट बने अथवा मुख को स्वादिष्ट बनाने वाला आहार अर्थात् पान, सुपारी, इलायची, लौंग आदि आहार स्वादिम कहलाता है। (ठाणाङ्ग ४ उद्देशक ४ सूत्र ३४०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकार दूसरी तरह से भी व्याख्या करते हैं वह इस प्रकार है - जिसको खाने से केवल भूख मिटे, उसको अशन कहते हैं जैसे रोटी आदि।

जिसके पीने से केवल प्यास मिटे, उसे पान कहते हैं जैसे पानी।

जिसके खाने से भूख और प्यास दोनों मिटे, उसे खादिम कहते हैं जैसे दूध, इक्षु रस, बादाम, पिस्ता फल आदि।

जिसको खाने से मात्र मुख स्वादिष्ट बने, उसे स्वादिम कहते हैं जैसे - लोंग, सुपारी, इलायची आदि।

कुछ लोग ऐसी व्याख्या करते हैं कि जिससे मुख साफ हो उसे स्वादिम कहते हैं किन्तु यह व्याख्या ठीक नहीं है क्योंकि मुख तो कभी साफ होता ही नहीं है क्योंकि उसमें हर समय थूक रहता ही है। स्वादिम शब्द का अर्थ भोजन करने के बाद जिन पाचक द्रव्यों को खाया जाता है, वे स्वादिम कहलाते हैं।

प्रश्न - प्राण किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च। उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः।
प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा॥

अर्थ - जिनसे प्राणी जीवित रहे उन्हें प्राण कहते हैं। वे दस हैं -

१. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण २. रसनेन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण ६. काय बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. मन बल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास बल प्राण १०. आयुष्य बल प्राण।

इन दस प्राणों में से किसी प्राण का विनाश करना हिंसा है। जैन शास्त्रों में हिंसा के लिये प्रायः प्राणातिपात शब्द का ही प्रयोग होता है। इसका अभिप्राय यही है कि इन दस प्राणों में से किसी भी प्राण का अतिपात (विनाश) करना ही हिंसा है।

एकेन्द्रिय जीवों में चार प्राण होते हैं - स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण, आयुष्य बल प्राण।

द्वीन्द्रिय में छह प्राण होते हैं - चार पूर्वोक्त तथा रसनेन्द्रिय बल प्राण और वचन बल प्राण।

त्रीन्द्रिय में सात प्राण होते हैं - छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय बल प्राण। चतुरिन्द्रिय में आठ प्राण होते हैं - पूर्वोक्त सात और चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंज्ञी पंचेन्द्रिय में नौ प्राण होते हैं - पूर्वोक्त आठ और श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण।

संज्ञी पंचेन्द्रिय में दस प्राण होते हैं - पूर्वोक्त नौ और मन बल प्राण।

प्रश्न - भिक्षु किसे कहते हैं ?

उत्तर - भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले को भिक्षु कहते हैं।

प्रश्न - भिक्षा कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर - हारिभद्रीय अष्टक प्रकरण ५/१ में भिक्षा तीन प्रकार की बतलाई गयी है। यथा -

१. अनाथ, अपङ्ग आदि व्यक्ति अपनी असमर्थता के कारण मांग कर खाता है उसे 'दीनवृत्ति भिक्षा' कहते हैं।

२. परिश्रम करने में समर्थ व्यक्ति आलस्य और अकर्मण्यता के कारण मांग कर खाता है उसे 'पौरुषघ्नी भिक्षा' कहते हैं।

३. सर्व पापों के त्यागी आत्म ध्यानी साधु पुरुष अहिंसा और संयम की दृष्टि से अन्त, प्रान्त, रूखा, सूखा जैसा भी आहार भिक्षा में सहज प्राप्त हो जाता है उसी में संतोष करते हैं उस भिक्षा को 'सर्वसम्पत्करी भिक्षा' कहते हैं। इससे संयम का पालन होता है और संयम पालन से मुक्ति मिलती है।

से य आहच्च पडिग्गहिए सिया से तं आयाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा, अप्पंडे, अप्पपाणे, अप्पबीए, अप्पहरिए, अप्पोसे, अप्पुदए ,अप्पुत्तिंग पणग-दग-मट्टिय-मक्कडा-संताणए, विगिंचिय विगिंचिय उम्मीसं विसोहिय विसोहिय तओ संजयामेव भुंजिज्ज वा, पीइज्ज वा, जं च णो संचाइज्जा भुत्तए वा पायए वा से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता, अहे झामथंडिलंसि वा, अट्ठिरासिंसि वा, किट्टरासिंसि वा, तुसरासिंसि वा, गोमयरासिंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव परिट्ठविज्जा॥ १॥

कठिन शब्दार्थ - **आहच्च** - कदाचित्, **पडिग्गहिए** - ग्रहण कर ले, **तं** - उस आहार को, **आयाय**- लेकर के, **एगंतं** - एकान्त स्थान में, **अवक्कमिज्जा** - जावे, **एगंतं** - एकान्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में, **अवक्कमित्ता** - जाकर, **आरामंसि** - उद्यान में, **उवस्सयंसि** - उपाश्रय में, **अप्पंडे** - अंडों से रहित, **अप्पपाणे** - प्राणियों से रहित, **अप्पबीए** - बीजों से रहित, **अप्पहरिए** - हरितकाय से रहित, **अप्पोसे** - ओस से रहित, **अप्पुदए** - जल से रहित, **अप्पुत्तिंग** - उत्तिंग-कीडी नगरा से रहित, **पणग** - पनक से रहित, **दग** - सचित्त जल, **मट्टिय** - सचित्त जल युक्त मिट्टी, **मक्कडासंताणए**- मकड़ी आदि के जाले, **विगिंचिय** - अलग करके (उस सचित्त या मिश्र भाग को निकाल के), **विसोहिय** - विशोधित कर-बीन कर (सचित्त दाने को अलग करके), **तओ** - इसके बाद, **संजयां** - यतनापूर्वक, **एव** - ही, **भुंजिज्ज** - खाए, **पीइज्ज** - पीए, **णो** - नहीं, **संचाइज्जा** - समर्थ हो, **भुत्तए** - खाने में, **पायए** - पीने में, **अहे** - अथ, **झामथंडिलंसि** - दग्ध स्थंडिल (भूमि) में, **अट्ठिरासिंसि** - अस्थियों (हड्डियों) की राशि में, **किट्टरासिंसि** - लोहे आदि के मल के ढेर में, **तुसरासिंसि** - तुष राशि में, **गोमयरासिंसि** - गोबर के ढेर में, **वा** - अथवा, **अण्णयरंसि**- अन्य प्रासुक स्थानों में, **तहप्पगारंसि** - इसी प्रकार अन्य स्थान पर, **पडिलेहिय** - प्रतिलेखना कर, **पमज्जिय** - प्रर्माजना कर, **परिट्ठविज्जा** - परठ दे।

भावार्थ - कदाचित् भूल से असावधानी के कारण पूर्वोक्त सदोष आहार को ग्रहण कर लिया गया हो तो वह साधु उस आहार को लेकर एकान्त में जाए और एकान्त में जाकर, जहाँ लोगों का आवागमन न हो ऐसे उद्यान या उपाश्रय में अंडों, प्राणियों, बीजों, हरितकाय, ओस, जल, उत्तिंग, पनक, सचित्त जल वाली मिट्टी, मकड़ी के जाले आदि से रहित ऐसे स्थान पर उस आहार में से सचित्त पदार्थों को अलग करके, जीव जंतुओं को हटाकर उस आहार-पानी का यतना पूर्वक उपभोग करे। यदि वह खाने पीने में असमर्थ हो तो उस आहार को लेकर एकांत में जाए और वहाँ जाकर दग्ध स्थंडिल भूमि में, हड्डियों के ढेर में, लोहे आदि के मल की राशि पर, तुष-भूसा के ढेर पर, गोबर के ढेर में अथवा इसी प्रकार अन्य प्रासुक एवं निर्दोष स्थान में उस स्थान की बार-बार प्रतिलेखना और प्रर्माजना करके यतना के साथ उस आहार को परठ दे।

विवेचन - यदि कभी सचित्त पदार्थों से युक्त आहार आ गया हो-जैसे गुठली सहित खजूर या ऐसे ही बीज युक्त कोई अन्य पदार्थ आ गए हैं और वह गुठली बीज या सचित्त पदार्थ उससे अलग किये जा सकते हों तो साधु उन्हें अलग करके उस अचित्त आहार को उपयोग (परिभोग) कर ले। यदि कोई पदार्थ ऐसा है कि उसमें से उन सचित्त पदार्थों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अलग नहीं किया जा सकता है तो मुनि उस आहार का उपभोग नहीं करे किन्तु एकान्त निर्दोष स्थान में परठ दे। इसी तरह भूल से आधाकर्म आदि दोषों से युक्त आहार आ गया हो तो भी एकान्त स्थान में यतना पूर्वक परठ दे। इससे स्पष्ट है कि साधु सचित्त एवं आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार का सेवन न करे। भगवती सूत्र शतक १८, उद्देशक १० में भगवान् महावीर स्वामी ने सोमिल ब्राह्मण को स्पष्ट शब्दों में बताया कि साधु के लिए सचित्त आहार अभक्ष्य है। श्रावक के व्रतों में भी यह स्पष्ट उल्लेख है कि श्रावक साधु को प्रासुक एवं निर्दोष आहार पानी ही देवें।

'झामथंडिलंसि' शब्द का अर्थ है दग्ध भूमि अर्थात् जहाँ पर पहले चूने का भट्टा आदि रहा हो और उसमें अग्नि जलकर भूमि अचित्त हो गयी हो ऐसा स्थान। हड्डियों का ढेर, लोह का कीटा, तुष और गोबर का ढेर पर न परठे किन्तु इसका आशय यह है कि जहाँ पर हड्डियाँ, लोह का कीटा, तुष और गोबर ये पदार्थ उस भूमि पर रहें हो और अब वे उठा लिये गये हों किन्तु उन पदार्थों की दुर्गन्ध आदि के कारण वह भूमि अचित्त हो गयी हो उस भूमि पर परठना चाहिए किन्तु इन पदार्थों का ढेर पड़ा हुआ हो उन पदार्थों के ढेर पर तो परठना ही नहीं चाहिये क्योंकि ढेर के नीचे रहे हुए जीवों की विराधना का कारण बनता है।

मूल में 'अप्पंडे अप्पपाणे' आदि शब्द दिये हैं। 'अप्प' का अर्थ है अल्प। अल्प शब्द के दो अर्थ हैं - थोड़ा और अभाव। यहाँ पर अल्प शब्द का अर्थ थोड़ा न लेकर अभाव अर्थ करना चाहिए। इसीलिये भावार्थ में अण्डे आदि से रहित ऐसा ही अर्थ किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविट्ठे समाणे से जाओ पुण ओसहीओ जाणिज्जा-कसिणाओ, सासियाओ, अविदलकडाओ, अतिरिच्छ-च्छिण्णाओ, अव्वुच्छिण्णाओ, तरुणियं वा छिवाडिं अणभिक्कंताभज्जियं पेहाए अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिग्गाहेज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **ओसहीओ** - औषधियों को, **कसिणाओ** - कृत्स्न-सम्पूर्ण, **सासियाओ**- अविनष्ट योनि-जिसका मूल नष्ट नहीं हुआ हो, **अविदलकडाओ** - द्विदल-जिसके दो भाग नहीं हुए हों, **अतिरिच्छच्छिण्णाओ** - तिरछा छेदन नहीं हुआ हो, **अव्वुच्छिण्णाओ** - अचित्त नहीं हुई हो, **तरुणियं** - तरुण बिना पकी हुई, **छिवाडिं** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूंग आदि की फली, **अणभिक्कंत** - अनभिक्रान्त-जीव, **अभज्जियं**- अभग्न, **पेहाए** - देखकर।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी औषधि (गेहूँ आदि धान्य) के विषय में ऐसा जाने कि-यह सचित्त है (शस्त्र परिणत नहीं हुई है) जिसकी योनि नष्ट नहीं हुई है, द्विदल दो या दो से अधिक भाग नहीं हुए हैं, जिसका तिर्यक् छेदन नहीं हुआ है, अचित्त नहीं हुई है तथा सचित्त अपक्व मूंग आदि की अभग्न फली को देखकर उसे अप्रासुक और अनेषणीय मानता हुआ साधु-साध्वी प्राप्त होने पर भी उसे ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में औषध (गेहूँ आदि धान्य) ग्रहण करने के संबंध में वर्णन किया गया है। साधु-साध्वी को दी जाने वाली औषध सचित्त प्रतीत होती हो तो उसे ग्रहण नहीं करे। यदि वह सजीव नहीं है तथा पूर्णतया निर्जीव और निर्दोष है तो साधु साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में '**कसिणाओ**' आदि पांच पदों से वनस्पति की सजीवता सिद्ध की है।

यहाँ मूल में '**ओसहीओ**' शब्द दिया है जिसका अर्थ टीकाकार ने '**औषधीः शालिबीजादिकाः**' किया है। अर्थात् शालि, गेहूँ आदि बीज वाले धान्य। यहाँ पर चौबीस प्रकार के धान्यों को औषधि (दवा) कहा है। रोग की ही दवा की जाती है। क्षुधा वेदनीय के उदय से भूख लगती है इसलिए भूख एक प्रकार का रोग है उस रोग को मिटाने के लिये एवं शान्त करने के लिये अनाज (धान्य) का सेवन किया जाता है इसलिए धान्य को औषधि कहा है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जाओ पुण ओसहीओ जाणिज्जा-अकसिणाओ असासियाओ विदलकडाओ तिरिच्छच्छिण्णाओ वुच्छिण्णाओ तरुणियं वा छिवाडिं अभिक्कंतं भज्जियं पेहाए फासुयं एसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते पडिग्गाहिज्जा॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - अकसिणाओ - अकृत्स्न-अपूर्ण (अचित्त-शस्त्र परिणत), **असासियाओ**- विनष्ट योनि, **विदलकडाओ** - जिसके दो टुकडे किये गये हों, **तिरिच्छच्छिण्णाओ** - तिर्यक् छेदन किया हो, **वुच्छिण्णाओ** - अचित्त-जीव से रहित, **अभिक्कंतं** - जीव रहित, **भज्जियं**- भर्जित-मर्दित, **फासुयं**- प्रासुक, **एसणिज्जं** - एषणीय-निर्दोष।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी औषधि (धान्य) के विषय में ऐसा जाने कि इनमें शस्त्र परिणत हो चुका है, इनकी योनि नष्ट हो चुकी है, इन्हें द्विदल (दो फाड़) कर दिया गया है, तिर्यक् छेदन हुआ है, जीव रहित है तथा मर्दित मूंग आदि की कच्ची फली को अचित्त एवं भग्न देखकर प्रासुक और एषणीय मानता हुआ साधु या साध्वी प्राप्त होने पर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - शंका - प्रथम सूत्र में सचित्त पदार्थ ग्रहण करने का निषेध कर दिया तो फिर प्रस्तुत सूत्र में सचित्त औषध एवं फलों के निषेध का क्यों वर्णन किया गया?

समाधान - जैनेतर साधु वनस्पति में जीव नहीं मानते और वे सचित्त औषध एवं फलों का प्रयोग करते हैं इसलिये पूर्ण अहिंसक साधु के लिए यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह सचित्त औषध एवं फलों को ग्रहण नहीं करे। अब सूत्रकार आहार की ग्राह्यता एवं अग्राह्यता का उल्लेख करते हुए फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा पिहुयं वा बहुरयं वा भुंजियं वा मंथुं वा चाउलं वा चाउलपलंबं वा सइं भज्जियं अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पिहुयं** - पौहे (होला) शाली, जव आदि के, **बहुरयं** - अधिक सचित रज हो, **भुंजियं**- भर्जित-अर्द्ध पक्व, **मंथुं** - बैर आदि फल का चूर्ण, **चाउलं** - चावल, **चाउलपलंबं**- चावल अथवा धान्यादि का चूर्ण (आटा) **सइं** - एक बार, **भज्जियं**- सेका हुआ-अग्नि से भुना हुआ।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होने पर जाने कि चावल, पोहे (होला) आदि धान्य, बहुत तुष वाले धान्य, अग्नि द्वारा अर्द्धपक्व धान्यों तथा बैर आदि फलों का चूर्ण चावल अथवा चावल आदि धान्यों का पोहा आदि एक बार भुना हुआ है तो उसे अप्रासुक अनेषणीय मानकर उपलब्ध होने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा-पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा असइं भज्जियं दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा भज्जियं फासुयं एसणिज्जं जाव लाभे संते पडिगाहिज्जा॥ ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **असइं** - अनेक बार, **दुक्खुत्तो** - दो बार **वा** - अथवा, **तिक्खुत्तो**- तीन बार।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होने पर जाने कि पोहे अर्थात् शाली जव आदि धान्य यावत् चावलों के पोहे आदि कई बार पकाया गया है अथवा दो या तीन बार पका लिया गया है तो साधु प्रासुक और एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि साधु साध्वी को शाली धान आदि अनाज एवं उनका चूर्ण जो अपक्व या अर्ध पक्व हो नहीं लेना चाहिये क्योंकि ये सचित्त (सजीव) होते हैं। जो पदार्थ अच्छी तरह पक गए हैं, अचित्त हो गये हैं उन्हें साधु साध्वी ग्रहण कर सकता है। शाली-चावल की तरह अन्य सभी तरह के अन्न एवं अन्य फलों के संबंध में भी समझना चाहिये। गेहूँ, जौ आदि धान्य की कच्ची फली (उंबी) को अग्नि में सेका जाता है उसको पृथुक, लाजा, खील, होला कहते हैं। एक बार सेकने से इसमें कुछ कच्चा कुछ पक्का रह जाने की शङ्का रहती है।

साधु को गृहस्थ के घर में किस तरह प्रवेश करना चाहिये, इसकी विधि बताते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविसिउकामे णो अण्ण-उत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा अपरिहारिएण वा सद्धिं गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - **पविसिउकामे** - प्रवेश करने की इच्छा करता हुआ, **अण्णउत्थिएण**- अन्यतीर्थिक, **गारत्थिएणं** - गृहस्थी, **परिहारिओ**-दोषों को दूर करने वाला, **अपरिहारिएण**- पार्श्वस्थ, कुशील शिथिलाचारी साधु, **सद्धिं** - साथ में, **पविसेज्ज** - प्रवेश करे, **णो**-नहीं, **णिक्खमेज्ज**- निकले।

भावार्थ - भिक्षा के निमित्त से गृहस्थ के घर में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाला संयमी साधु या साध्वी अन्यतीर्थिकों-तापसों, गृहस्थों (ब्राह्मण आदि) पार्श्वस्थादि शिथिलाचारियों के साथ घर में प्रवेश न करे और न ही इनके साथ बाहर निकले।

विवेचन - यहाँ पर अन्यतीर्थिक से मतलब अन्य मतावलम्बी, परिव्राजक, संन्यासी

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

आदि से है। गृहस्थ से मतलब साधारण गृहस्थ नहीं लिया गया है किन्तु वह गृहस्थ लिया गया है जो गृहस्थों के घर भिक्षा मांगता है। जैसे कि ब्राह्मण सेवग आदि।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा पविसमाणे वा णिक्खममाणे वा णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - बहिया - बाहर, **वियारभूमिं** - स्थंडिल भूमि में, **विहारभूमिं** - विहारभूमि-स्वाध्याय भूमि में, **पविसमाणे** - प्रवेश करता हुआ, **णिक्खममाणे** - निकलता हुआ।

भावार्थ - उग्रविहारी संयमी साधु या साध्वी स्थंडिल भूमि में या स्वाध्याय भूमि में प्रवेश करता हुआ या निकलता हुआ अन्यतीर्थिक साधुओं, गृहस्थों, पार्श्वस्थादि शिथिलाचारियों के साथ प्रवेश भी न करे और बाहर भी न निकले।

विवेचन - शौच निवृत्ति के लिये बाहर जाने की जगह को स्थण्डिल भूमि कहते हैं। इसके लिये आगम में वियारभूमि (विचार भूमि) शब्द रूढ है और जहाँ बैठ कर स्वाध्याय किया जाता है उस एकान्त स्थान के लिए 'विहार भूमि' शब्द रूढ है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ ४॥

कठिन शब्दार्थ - गामाणुगामं - ग्रामानुग्राम, **दूइज्जमाणे** - विचरते हुए, **दूइज्जिज्जा**- विचरे।

भावार्थ - संयमी साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरते हुए भी अन्यतीर्थी और भिक्षोपजीवी गृहस्थ तथा शिथिलाचारी साधुओं आदि के साथ एक गांव से दूसरे गांव न जावे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वी के लिए बताया गया है कि वह गृहस्थों के साथ अन्यमत के साधु संन्यासियों एवं पार्श्वस्थ साधुओं के साथ गृहस्थ के घर में, स्वाध्याय भूमि में और शौच के लिये बाहर स्थण्डिल भूमि में न जाए और न ही इनके साथ विहार करे, क्योंकि ऐसा करने से साधु के संयम में अनेक दोष लगने की संभावना रहती है। अन्य मत के भिक्षुओं के अधिक परिचय से साधु की श्रद्धा एवं संयम में शिथिलता एवं विपरीतता भी आ सकती है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उनके घनिष्ठ परिचय के कारण श्रावकों के मन में संदेह भी पैदा हो सकता है। अतः साधु को उनके साथ घनिष्ठ परिचय करने एवं भिक्षा आदि के लिए उनके साथ जाने का निषेध किया गया है।

साधु आचार में शिथिलता करने वाले साधुओं के पांच भेद ग्रन्थों में बतलाये गये हैं। यथा -

१. **पासत्थ** (पार्श्वस्थ या पाशत्थ) - जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और संयम के समीप रह कर भी उन्हें जीवन में नहीं उतारता है, उसे पार्श्वस्थ कहते हैं।

२. **अवसन्न** - संयम का पालन करते हुए जो संयम से थक गया है अतएव साधु समाचारी के विषय में प्रमाद करता है उसे अवसन्न कहते हैं।

३. **कुशील** - जो साधु के आचार में दोष लगाता है उसे कुशील कहते हैं।

४. **संसक्त** - मूल गुण और उत्तर गुण में दोष लगाने वाला संसक्त कहलाता है। जैसे - गाय के बाटे में खल, कपासिया आदि अनेक चीजें मिली रहती हैं इसी प्रकार संसक्त साधु में भी गुण और दोष मिलते रहते हैं। उत्कृष्ट आचारी साधुओं के साथ उनको बताने के लिये वैसा आचरण करने लग जाता है और शिथिलाचारियों के साथ वैसा ही शिथिल बन जाता है। जैसे पानी तेरा रंग कैसा ? जिस रंग में मिलावे वैसा।

५. **यथाच्छन्द** - उत्सूत्र (सूत्र विपरीत) प्ररूपणा करने वाला तथा सूत्र विपरीत आचरण करने वाला यथाच्छन्द कहलाता है।

इन पांचों को वन्दना करने वाले के कर्मों की निर्जरा नहीं होती मात्र कायक्लेश होता है और इसके सिवाय कर्म बन्ध भी होता है। पासत्थ आदि का संसर्ग करने वाले भी अवन्दनीय बतलाये गये हैं। (हरिभद्रीयावश्यक वन्दनाध्ययन पृष्ठ ५१८)

(प्रवचन सारोद्धार पूर्वभाग गाथा १०३ से १२३)

वहाँ इनके भेद प्रभेद बतलाकर विस्तृत वर्णन किया गया है जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे णो अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा परिहारिओ वा अपरिहारियस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दिज्जा वा अणुपदिज्जा वा ॥ ५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **णो** - नहीं, **दिज्जा** - देवे, **अणुपदिज्जा** - दूसरों से दिलवावें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु या साध्वी अन्यतीर्थियों को, गृहस्थ को, याचकों को और पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारियों को अशन पान खादिम और स्वादिम आहार स्वयं न दे और न दूसरों से दिलवावें।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि मुनि को अपने संभोगी साधु के अतिरिक्त अन्यमत के साधुओं को आहार आदि नहीं देना चाहिए। अन्यमत के साधुओं को, गृहस्थ को, याचकों को अथवा पार्श्वस्थ-शिथिलाचारी साधुओं को अशनादि देने से संयम में अनेक दोष लगने की संभावना रहती है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा, खाइमं वा साइमं वा अस्संपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं सभारब्भ समुद्दिस्स कीयं, पामिच्चं, अच्छिज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडं, आहट्टु चेएइ। तं तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा, बहिया णीहडं वा, अणीहडं वा, अत्तट्ठियं वा, अणत्तट्ठियं वा, परिभुत्तं वा, अपरिभुत्तं वा, आसेवियं वा, अणासेवियं वा, अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा।

एवं बहवे साहम्मिया, एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ, समुद्दिस्स चत्तारि आलावगा भाणियव्वा॥ ६॥

कठिन शब्दार्थ - **अस्संपडियाए** - साधु की प्रतिज्ञा से (साधु के निमित्त), **एगं** - एक, **साहम्मियं**- साधर्मिक को, **समुद्दिस्स** - उद्देश्य करके, **पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं** - प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का, **समारब्भ** - समारंभ करके, **कीयं** - क्रीत-साधु के निमित्त से खरीदा हुआ, **पामिच्चं** - उधार लिया हुआ, **अच्छिज्जं** - दूसरों से छीना हुआ, **अणिसिट्ठं**- स्वामी की स्वीकृति के बिना दिया हुआ, **अभिहडं**- सामने लाया हुआ, **आहट्टु** - लाकर, **चेएइ** - देता है, **तं** - वह, **तहप्पगारं**- इस प्रकार का, **पुरिसंतरकडं**- पुरुषान्तरकृत-दूसरे को दे दिया गया, **अपुरिसंतरकडं**- अपुरुषान्तरकृत-दूसरे को नहीं दिया गया, **णीहडं** - निकाला हुआ, **अणीहडं** - नहीं निकाला हुआ, **अत्तट्ठियं** - अपना किया हुआ, स्वीकृत, **अणत्तट्ठियं** - बिना अपनाया हुआ, **परिभुत्तं** - अपने उपयोग में लिया हुआ, **अपरिभुत्तं** - नहीं भोगा हुआ, **साहम्मिणिं** - एक साध्वी के लिए, **चत्तारि** - चार, **आलावगा** - आलापक, **भाणियव्वा** - कहने चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रविष्ट साधु अथवा साध्वी यह जाने कि-जो आहार किसी एक साधर्मिक साधु को उद्देश्य करके, प्राण भूत जीव सत्त्वों का आरंभ करके तैयार किया गया हो, साधु के निमित्त से मोल लिया हो, उधार लिया हो, निर्बल से छीन कर लिया हो, भागीदारी वाले स्वामी की स्वीकृति के बिना लिया गया हो, सामने ला कर के दिया जा रहा हो इस प्रकार किसी भी दोष से युक्त आहार गृहस्थ लाकर देवे तो ऐसा आहार जो चाहे पुरुषान्तरकृत हो अथवा अपुरुषान्तरकृत हो, घर से बाहर निकाला हो या नहीं निकाला गया हो, जिस पुरुष को वह आहार आदि दिया गया है उसने स्वीकार किया हो अथवा नहीं किया हो, स्वयं के द्वारा काम में लिया हुआ हो या न लिया हो तथा स्वयं सेवन कर लिया हो अथवा सेवन नहीं किया हो इस प्रकार के आहार आदि को अप्रासुक अनेषणीय जानकर के मिलने पर भी साधु या साध्वी ग्रहण न करे।

इसी प्रकार बहुत से साधर्मिक साधुओं के लिए बनाया गया आहार तथा एक साध्वी के निमित्त बनाया गया आहार अथवा बहुत सी साध्वियों के निमित्त से बनाया गया आहार सभी साधुओं और साध्वियों के लिए अगाह्य है। इस प्रकार चार आलापक कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनेषणीय आहारादि की अग्राह्यता का वर्णन किया गया है। साधु साध्वी को सदैव निर्दोष एवं एषणीय आहार ही ग्रहण करना चाहिये। मूल पाठ में **'पुरिसंतरकडं वा अपुरिसंतरकडं वा'** शब्द आया है जिसका अर्थ है - आहार आदि के स्वामी, दाता ने उस आधाकर्मी आहार आदि को दूसरे व्यक्ति को दे दिया हो और उस व्यक्ति ने उस आहार आदि को स्वीकार कर लिया हो इस प्रकार का आहार आदि **पुरुषान्तर-कृत** कहलाता है। किन्तु दूसरे को नहीं दिया हो उस आहार आदि पर उसी का स्वामीपना हो या मालिकी हो उसको अपुरुषान्तरकृत कहते हैं।

मूल पाठ में **'अस्संपडियाए'** दिया है जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है।

'अस्संपडियाए - न विद्यते स्वं-द्रव्यं अस्य सोऽयम् अस्वो-निर्ग्रन्थ इत्यर्थः, तत् प्रतिज्ञया।'

अर्थ - जिसके पास 'स्व' अर्थात् धन नहीं है उसको 'अस्व' कहते है। जिसका आशय है निर्ग्रन्थ। कोष में स्व शब्द के चार अर्थ हैं यथा - आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति (जाति), धन। इस प्रकरण में स्व शब्द का अर्थ धन लिया गया है।

प्रश्न - प्राण, भूत, जीव, सत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - सामान्य रूप से इन चारों शब्दों का अर्थ जीव है किन्तु विशेष की विवशा से इनका अर्थ इस प्रकार किया गया है यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणाः द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः।

जीवाः प्रंचेन्द्रियाः प्रोक्ताः, शेषाः सत्त्वाः उदीरिता ॥ १ ॥

अर्थ - १. बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय को 'प्राण' कहते हैं। २. वनस्पति को भूत कहते हैं। ३. पंचेन्द्रिय को 'जीव' कहते हैं। ४. बाकी शेष अर्थात्-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय इनको 'सत्त्व' कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए पगणिय पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं वा भूयाइं वा जीवाइं वा सत्ताइं वा समारब्भ जाव णो पडिग्गाहिज्जा ॥ ७ ॥

कठिन शब्दार्थ - बहवे - बहुत से, **समण** - शाक्यादि श्रमण, **माहण** - ब्राह्मण, **अतिहि** - अतिथि, **किवण** - कृपण-द्ररिद्र, **वणीमए** - भिखारी, **पगणिय पगणिय** - गिन-गिन कर।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होकर ऐसा जाने कि-यह आहार बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र अथवा भिखारियों आदि के लिए गिन-गिन कर प्राणी भूत, जीव और सत्त्वों का आरंभ समारंभ करके बनाया हो ऐसा आहार उन्होंने ग्रहण किया हो अथवा न भोगा हो तो भी उसको अप्रासुक और अनेषणीय मानकर साधु या साध्वी आहार आदि का लाभ होने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रश्न - मूल पाठ में **समण, माहण** आदि शब्द दिये हैं इनका क्या अर्थ है?

उत्तर - यहाँ **समण** शब्द से पांच प्रकार के श्रमण बतलाये गये हैं। यथा - १. निर्ग्रन्थ (जैन साधु) २. शाक्य (बौद्ध भिक्षु) ३. तापस (अग्नितप से तपने वाले संन्यासी) ४. गैरिक (गेरुवाँ भगवां रंग के वस्त्र पहनने वाले परिव्राजक) ५. आजीविक (गोशालक मतानुयायी साधु)।

माहण का अर्थ है ब्राह्मण। **अतिथि** - बाहर ग्रामादि से आया हुआ भिखारी, **कृपण** - अर्थात् दरिद्री। **वणीपक** - वणीपक के पांच भेद हैं १. अतिथि-वनीपक २. कृपण वनीपक ३. ब्राह्मण वनीपक ४. श्वा (कुत्ता) - वनीपक ५. श्रमण वनीपक। वनीपक का अर्थ है अपनी दीनता बता कर या दाता की प्रशंसा करके भिक्षा मांगने वाला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस सूत्र में "**पगणिय पगणिय**" शब्द दिया है जिसका अर्थ है गिन गिन कर। प्राचीन धारणा के अनुसार इसका अर्थ यह है कि जहाँ '**पगणिय पगणिय**' शब्द आता है वहाँ जैन साधु भी सम्मिलित है। ऐसा समझना चाहिए इसलिए इस आलापक में अन्य भिक्षु के साथ जैन साधु भी सम्मिलित लेना चाहिए ऐसा आहार आदि आधाकर्मी होता है। इसलिए जैन साधु साध्वी के लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है। टीकाकार ने भी इस आलापक का ऐसा ही अर्थ किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स जाव चेएइ तं तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अपुरिसंतरकडं वा अबहिया णीहडं अणत्तट्ठियं अपरिभुत्तं अणासेवियं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिग्गाहिज्जा॥

अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडं बहिया णीहडं अत्तट्ठियं परिभुत्तं आसेवियं फासुयं एसणिज्जं जाव पडिग्गाहिज्जा॥ ८॥

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु अथवा साध्वी ऐसा जाने कि-यह आहार जो कि बहुत से शाक्यादि, भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्री, वनीपक आदि भिखारियों को उद्देश्य करके बनाया गया हो, अपुरुषान्तर कृत हो, घर से बाहर न निकाला हो, दूसरे व्यक्ति ने अपने अधिकृत न किया हो, भोगा न हो, सेवन भी न किया हो तो उसे अप्रासुक एवं अनेषणीय समझ कर ग्रहण न करे।

और यदि साधु इस प्रकार जाने कि-यह आहार दूसरों से कृत है घर से बाहर निकाला हुआ है अपना अधिकृत (नेश्राय) है खाया है सेवन किया हुआ है तो उस आहार को प्रासुक और एषणीय समझ कर ग्रहण करे।

विवेचन - अप्रासुक और अनेषणीय आहार साधु के लिए अग्राह्य है परन्तु यदि आहार पुरुषान्तर हो गया है, लोग घर से बाहर ले जा चुके हैं, व्यक्तियों द्वारा खा लिया गया है और वह प्रासुक एवं एषणीय है तो साधु ग्रहण कर सकता है।

यह आहार अन्य भिखारियों के लिये बनाया गया है इसमें जैन साधु साध्वी सम्मिलित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। जिनके लिये बनाया गया है उन्होंने अपना लिया है और भोग लिया है अर्थात् पुरुषान्तर कृत हो चुका है तो ऐसे आहारादि को जैन साधु साध्वी ले सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसिउकामे से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा-इमेसु खलु कुलेसु णिइए पिंडे दिज्जइ, अग्गपिंडे दिज्जइ णिइए भाए दिज्जइ, णिइए अवड्ढभाए दिज्जइ तहप्पगाराइं कुलाइं णिइयाइं णिइउमाणाइं णो भत्ताए वा पाणाए वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - **कुलाइं** - कुलों को, **इमेसु** - इन, **कुलेसु** - कुलों में, **णिइए** - नित्य, **पिंडे**- पिण्ड-आहार, **दिज्जइ** - दिया जाता है, **अग्गपिंडे** - अग्र पिण्ड, **भाए** - भाग, **अवड्ढभाए**- चतुर्थ भाग, **णिइउमाणाइं** - नित्य प्रवेश, **भत्ताए वा** - भक्त के लिए, **पाणाए** - पानी के लिए।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में आहार आदि प्राप्ति के निमित्त प्रवेश करने की इच्छा रखने वाले साधु साध्वी ऐसा जाने कि - जिन कुलों में नित्य आहार दिया जाता है, भोजन करने के पहले दान हेतु अग्रपिण्ड निकाला जाता है अथवा नित्य अर्द्ध भाग या चतुर्थ भाग दान में दिया जाता है, जिसके कारण भिक्षुओं का भिक्षार्थ निरन्तर आना जाना हो ऐसे कुलों में साधु साध्वी अन्न पानादि के निमित्त नहीं जावे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इस बात का आदेश दिया गया है कि साधु को निम्न कुलों में भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए क्योंकि ऐसे घरों में भिक्षा को जाने से या तो उन भिक्षुओं को जो वहाँ से सदा-सर्वदा भिक्षा पाते हैं, अंतराय लगेगी या उन भिक्षुओं के लिए फिर से आरंभ करके आहार बनाना पडेगा। इसलिये साधु को ऐसे घरों से आहार नहीं लेना चाहिए।

जिन कुलों में सदाव्रत चलता है प्रतिदिन भिक्षुओं की भीड़ पड़ती है। जैन मुनियों के भिक्षा के लिए वहाँ चले जाने पर उन्हें भी उसी आहार में से दिया जाता हो, ऐसे कुलों में यथासंभव गोचरी के लिए नहीं जाना चाहिए। क्योंकि वहाँ पर जाने से अग्रादि पिण्ड के ग्रहण हो जाने की संभावना रहती है। यदि जाने का प्रसंग आ जाये तो अग्रादि पिण्ड के वर्जन का पूर्ण विवेक रखना चाहिए।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जए त्ति बेमि॥ ९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **सामग्गियं** - समग्रता, **सव्वट्ठेहिं** - सभी अर्थों में, **समिए** - समित-समिति से युक्त, **सहिए** - ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त, **सया** - सदा, **जए** - यत्न करे।

भावार्थ - यह साधु और साध्वी का आचार है वह सभी अर्थों में समिति से युक्त ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त होकर सदैव संयम में यत्न करे, ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - जैन साधु साध्वी सर्वथा निर्दोष आहार ही ग्रहण करते हैं। इस बात को सूत्रकार ने '**सव्वट्ठेहिं समिए**.....पदों से व्यक्त किया है। जिसकी टीकाकार ने इस प्रकार व्याख्या की है -

'सर्वार्थैं-सरसविरसादिभिराहारगतैः यदि वा रूपरसगंधस्पर्श गतैः सम्यगितः समितः संयत इत्यर्थः। पञ्चभिः वा समितिभिः समितः शुभतरेषु रागद्वेषविरहित इति यावत् एवंभूतश्च सह हितेन वर्तते इति सहितः, सहितो वा ज्ञानदर्शनचारित्रैः'-आचारांगवृत्ति २,११९

अर्थ - मुनि सरस एवं नीरस जैसा भी निर्दोष आहार उपलब्ध होता है उसे समभाव से ग्रहण करता है। वह रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि विषयों में अनासक्त रहता है। वह पांच समिति से युक्त रहता है, राग द्वेष से दूर रहने का प्रयत्न करता है वह रत्नत्रय-ज्ञान, दर्शन और चारित्र से युक्त होने से संयत है और वह निर्दोष मुनिवृत्ति का पालन करता है यही उसकी समग्रता है।

त्ति बेमि अर्थात्-आर्य सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही तुम्हें कहता हूँ।

।। प्रथम अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

प्रथम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अट्ठमि पोसहिएसु वा अद्धमासिएसु वा मासिएसु वा दो मासिएसु वा, तेमासिएसु वा चाउम्मासिएसु वा पंचमासिएसु वा छम्मासिएसु वा उऊसु वा उउसंधीसु वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उउपरियट्टेसु वा बहवे समण माहण अतिहि किवण वणीमगे एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे पेहाए दोहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए तिहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए चउहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए कुंभीमुहाओ वा कलोवाइओ वा संणिहि संणिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अपुरिसंतरकडं जाव अणासेवियं अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा॥

अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडं जाव आसेवियं फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा॥ १०॥

कठिन शब्दार्थ - अट्ठमि पोसहिएसु - अष्टमी के उपवास के महोत्सव में, **अद्धमासिएसु**- अर्द्ध मासिक, **मासिएसु** - मासिक (मासखमण) व्रत विशेष के उत्सव में, **दो मासिएसु** - द्वि मासिक के उत्सव में, **तेमासिएसु** - त्रैमासिक, **चाउम्मासिएसु** - चार्तुमासिक व्रत के उत्सव में, **पंचमासिएसु** - पंच मासिक, **छम्मासिएसु** - छह मासिक, **उऊसु** - ऋतु संबंधी उत्सव में, **उउसंधीसु** - ऋतुओं की संधि में, **उउपरियट्टेसु** - ऋतु परिवर्तन के उत्सव में, **एगाओ उक्खाओ**- एक बर्तन से, **परिएसिज्जमाणे** - परोसता हुआ, **पेहाए** - देखकर, **उक्खाहिं** - बर्तनों से, **कुंभी मुहाओ** - छोटे मुंह वाले बर्तन से, **कलोवाइओ** - बांस की टोकरी से, **संणिहि संणिचयाओ** - संचय किये हुए स्निग्ध पदार्थों में से।

भावार्थ - साधु या साध्वी आहार ग्रहण करने की इच्छा से गृहस्थ के घर प्रविष्ट होकर ऐसा जाने कि-यह अशनादि अष्टमी के उपवास के पारणे के उत्सव प्रसंग में या अर्द्धमासिक मासखमण, द्विमासिक त्रयमासिक चतुर्मासिक पंचमासिक अथवा छह मासिक पारणक महोत्सव में तथा ऋतु, ऋतु के अंतिम या आरंभ के दिन, ऋतु संधि अथवा ऋतु परिवर्तन महोत्सव पर बनाया गया है बहुत से श्रमण शाक्यादि भिक्षु, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियों (चारण भाट आदि) को एक-दो-तीन-चार बर्तनों से परोसते हुए देखकर छोटे मुख की कुम्भी, बांस की टोकरी से परोसते हुए देखकर एवं संचित स्निग्ध पदार्थों घी आदि को परोसते हुए देखकर इस प्रकार के अशनादिक जो पुरुषान्तरकृत न हुआ हो, घर से बाहर नहीं निकाला हो, दूसरे पुरुष ने स्वीकार न किया हो, न भोगा हो, सेवन नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया हो तो उस अशनादिक को अप्रासुक तथा अनेषणीय जानकर साधु मिलने पर भी ग्रहण न करे।

और यदि इस प्रकार जाने कि यह आहार पुरुषान्तरकृत हो चुका है यावत् दूसरों ने सेवन कर लिया है तो उसे प्रासुक और एषणीय जानकर मुनि ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को उस घर में नहीं जाना चाहिये उस घर से आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये जहाँ अष्टमी के पौषधोपवास का महोत्सव हो या इसी तरह अर्द्धमास, एक, दो, तीन, चार, पांच या छह मास की तपस्या का महोत्सव हो या ऋतु, ऋतु संधि और ऋतु परिवर्तन का महोत्सव हो और अन्य मत के भिक्षु भोजन कर रहे हो। यद्यपि यह भोजन आधाकर्म दोष से युक्त नहीं है फिर भी सूत्रकार ने '**अफासुयं**' शब्द का प्रयोग किया है, इसका तात्पर्य यह है कि ऐसा आहार जब तक पुरुषान्तर कृत नहीं हो जाता जब तक साधु के लिए अकल्पनीय है। परिवार के सदस्यों स्नेही संबंधियों के उपभोग करने के बाद (पुरुषान्तरकृत होने पर) साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

अष्टमी पौषध आदि का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - अमुक समय तक लौकिक एवं कुप्रावचनिक पद्धति से अष्टमी-अष्टमी के दिन उपवास आदि किये हों, उसकी समाप्ति के निमित्त से उजमना (उद्यापन-जीमण विशेष) करके श्रमण-माहण आदि को आहार देते हों, उस उत्सव विशेष को "अष्टमी पौषध" कहते हैं। ऐसे ही 'पाक्षिक पौषध' आदि समझना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा, तंजहा-उग्गकुलाणि वा, भोगकुलाणि वा, राइण्णकुलाणि वा, खत्तियकुलाणि वा, इक्खागकुलाणि वा, हरिवंसकुलाणि वा, एसियकुलाणि वा, वेसियकुलाणि वा, गंडागकुलाणि वा, कोट्टागकुलाणि वा, गामरक्खकुलाणि वा, वोक्कसालियकुलाणि (पोक्कासाइयकुलाणि) वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा फासुयं एसणिज्जं जाव पडिग्गाहिजा॥ ११॥

कठिन शब्दार्थ - **उग्गकुलाणि** - उग्र कुल, **भोगकुलाणि** - भोग कुल, **राइण्णकुलाणि**- राजन्य कुल, **खत्तिय कुलाणि** - क्षत्रिय कुल, **इक्खाग कुलाणि** - इक्ष्वाकु कुल, **हरिवंसकुलाणि**- हरिवंश कुल, **एसियकुलाणि** - गोपाल कुल, **वेसियकुलाणि**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैश्य कुल, **गंडागकुलाणि** - गंडक कुल (नापित कुल) **कोट्टागकुलाणि** - बढई कुल, **गामरक्खकुलाणि** - ग्राम रक्षक कुल, **बुक्कासकुलाणि**- जुलाहे का कुल, **अदुगुंछिएसु** - अनिंदित, **अगरहिएसु** - अगर्हित।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होकर जाने कि - उग्र कुल, भोग कुल, राजन्य कुल, क्षत्रिय कुल, इक्ष्वाकु कुल, हरिवंश कुल, गोपालों का कुल, वैश्य कुल, नापित कुल, बढई कुल, ग्रामरक्षक कुल और जुलाहा कुल तथा इसी प्रकार के अन्य भी अनिंदित, अगर्हित कुलों में से प्रासुक एषणीय आहार आदि प्राप्त हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को किस कुल में आहार के लिए जाना चाहिये। सूत्रकार ने जिन कुलों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं - **१. उग्र कुल** - रक्षक कुल, जो जनता की रक्षा के लिए सदैव तैयार रहता है, **२. भोग कुल** - राजाओं के लिए सम्मान्य **३. राजन्य कुल**- मित्र के समान व्यवहार करने वाला कुल **४. क्षत्रिय कुल** - जो प्रजा की रक्षा के लिए शस्त्रों को धारण करता है **५. इक्ष्वाकु कुल**- भगवान् ऋषभदेव का कुल **६. हरिवंश कुल**- भगवान् अरिष्टनेमिनाथ का कुल **७. एष्य कुल** - गोपाल आदि का कुल **८. वैश्य कुल** - वणिकों का कुल **९. गण्डाक कुल** - नाई आदि का कुल **१०. कुट्टाक कुल** - वर्द्धकी - बढ़ई, सुथार आदि का कुल **११. ग्राम रक्षक कुल** - कोतवाल आदि का कुल और **१२. बुक्कस कुल** - तन्तुवाय (जुलाहा-कपड़े बुनने वाला) आदि के कुल एवं इसी तरह के अन्य कुलों से भी साधु आहार ग्रहण कर सकता है जो निन्दित एवं घृणित कर्म करने वाले न हों। अर्थात् लोक में जिनकी निन्दा या घृणा न की जाती हो ऐसे कुल।

तन्तुवाय कुल, आगम काल में उच्च कुल समझा जाता था जहाँ पर साधु-साध्वी ठहरते थे। भगवती सूत्र शतक १५ में इसका वर्णन आया है। वर्तमान काल में इसे निम्न कुल माना जाता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा-असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, समवाएसु वा, पिंडणियरेसु वा, इंदमहेसु वा, खंदमहेसु वा, रूद्दमहेसु वा, मुगुंदमहेसु वा, भूयमहेसु वा, जक्खमहेसु वा, णागमहेसु वा, थूभमहेसु वा, चेइयमहेसु वा, रूक्खमहेसु वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिरिमहेसु वा, दरिमहेसु वा, अगडमहेसु वा, तडागमहेसु वा, दहमहेसु वा, णईमहेसु वा, सरमहेसु वा, सागरमहेसु वा, आगरमहेसु वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु वट्टमाणेसु बहवे समण माहण अतिहिकिवण वणीमगे एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे पेहाए दोहिं जाव संणिहि संणिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अपुरिसंतरकडं जाव णो पडिग्गाहिज्जा॥

अह पुण एवं जाणिज्जा दिण्णं जं तेसिं दायव्वं, अह तत्थ भुंजमाणे पेहाए गाहावइ भारियं वा, गाहावइ भगिणिं वा, गाहावइपुत्तं वा, गाहावइधूयं वा, सुण्हं वा, धाइं वा, दासं वा, दासिं वा, कम्मकरं वा, कम्मकरिं वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसोत्ति ! वा भगिणि त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं भोयणजायं, से सेवं वयंतस्स परो असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, सयं वा पुण जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - समवाएसु - जन समुदाय में, **पिंडणियरेसु** - पितृ पिण्ड-मृतक भोजन, श्राद्ध में, **इंदमहेसु** - इन्द्र महोत्सव में, **खंदमहेसु** - स्कन्द कार्तिकेय महोत्सव में, **रुद्दमहेसु वा** - रुद्र महोत्सव में, **मुगंद** - मुकुन्द (बलदेव), **भूय** - भूत, **जक्ख** - यक्ष, **णाग** - नाग, **चेइय** - चैत्य, **थूभ** - स्तूप, **रुक्ख**- वृक्ष, **गिरि** - पर्वत, **दरि** - गुफा, **अगड** - कूप, **तडाग** - तालाब, **दह**- हद, **णई** - नदी, **सर**- सर, **सागर** - सागर, **आगर**- आकर, **महामहेसु** - महा-महोत्सवों में, **दायव्वं** - देने योग्य, **दिण्णं**- दिया गया हो, **भुंजमाणे** - खाते हुओं को, **गाहावइभारियं** - गृहपति की भार्या को **गाहावइ भगिणिं** - गृहपति की बहिन को, **गाहावइ पुत्तं** - गृहपति के पुत्र को, **धूयं** - पुत्री को, **सुण्हं** - पुत्र वधू को, **धाइं**- धात्री को, **दासं** - दास को, **दासीं** - दासी को, **कम्मकरं** - कर्मचारी (नौकर) को, **कम्मकरि** - नौकराणी को, **से** - वह, **पुव्वामेव** - पहले, **आलोइज्जा** - देखकर, **आउसोत्ति** - हे आयुष्यमन् !, **आउसि** - हे आयुष्यमति!, **भगिणि** - भगिनि!, **इत्तो** - इस, **भोयणजायं** - भोजन के समूह में से, **दाहिसि** - देओगी, **वयंतस्स** - बोलते हुए, **दलइज्जा** - देवे, **सयं** - स्वयं, **जाइज्जा** - याचना करे, **परो**- दूसरा, **दिज्जा** - देवे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रवेश करके जाने कि-यहाँ बहुत से लोग इकट्ठे हुए हैं, पितृपिण्ड (पितरों के श्राद्ध में) अथवा इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, मुकुन्द, भूत, यक्ष, नाग, स्तूप, चैत्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, कूप, तडाग, हद (द्रह), नदी, सर, सागर, आकर सम्बन्धी महोत्सव में अथवा इसी प्रकार के अन्य महोत्सवों पर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, भिखारीं आदि को एक या अनेक पात्रों से यावत् संचित किये हुए घृतादि स्निग्ध पदार्थों को परोसते हुए देखकर, तथाविध आहार जो पुरुषान्तरकृत न हुआ हो यावत् सेवन न किया गया हो तो मिलने पर भी साधु उस आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझ कर उसे ग्रहण न करे।

अगर साधु को यह ज्ञात हो जाय कि जिनको भोजन देना था, उन्हें दिया जा चुका है और उस गृहस्थ की पत्नी, भगिनि, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धाय, दास-दासी, नौकर-नौकराणी आदि को देखकर कहे कि - हे आयुष्मन् श्रावक ! या हे आयुष्यमति भगिनि! मुझे इन खाद्य पदार्थों में से अन्यतर भोजन देओगी? इस प्रकार कहते हुए कोई अशनादि लाकर देवे अथवा साधु याचना करे या गृहस्थ स्वयं देवे तो साधु उस आहार पानी को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि गृहस्थ के घर में विभिन्न उत्सव, महोत्सवों के अवसर पर शाक्यादि भिक्षु श्रमण ब्राह्मण भिखारी आदि भोजन कर रहे हों और वह भोजन पुरुषान्तरकृत नहीं हुआ हो तो साधु अप्रासुक और अनेषणीय समझ कर ग्रहण नहीं करे। यदि अन्य भिक्षु आदि भोजन करके चले गये हों और परिवार के सदस्य आदि भोजन कर रहे हों तो साधु प्रासुक एवं एषणीय आहार की याचना कर सकता है।

"**पिण्ड णियरेसु**" का अर्थ है-पिण्ड निकर:-पितृ पिण्ड अर्थात् मृतक के निमित्त तैयार किया गया भोजन। वहाँ प्रयुक्त महोत्सव भौतिक कामनाओं के लिए किये जाते रहे हैं।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त **स्तूप** एवं **चैत्य** शब्द एकार्थक नहीं है। स्तूप का अर्थ है-मृतक की चिता पर उसकी स्मृति में बनाया गया स्मारक और चैत्य का अर्थ है-यक्ष आदि व्यन्तर देवता का आयतन। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चैत्य शब्द का प्रयोग जिन भगवान् या प्रतिमा के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है।

स्कन्द का अर्थ - कार्तिकेय (षडानन-महादेव जी के बड़े पुत्र), **रुद्र** का अर्थ -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महादेव जी, **मुकुन्द** का अर्थ - बलदेवजी, **तडाग** का अर्थ - तालाब (कृत्रिम), **सर** का अर्थ - झील (प्राकृतिक), **द्रह** का अर्थ - जो क्रीड़ा आदि करने के लिए पानी से भरा जाता है ऐसा ह्रद (हौद)।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा परं अद्धजोयणमेराए संखडिं णच्चा संखडिं पडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - परं - प्रकर्ष से उत्कृष्ट, **अद्धजोयणमेराए** - अर्द्ध योजन परिमाण क्षेत्र में, **संखडिं** - जीमन वार (प्रीतिभोज) को, **णच्चा** - जान कर, **गमणाए** - जाने के लिए, **णो** - नहीं, **अभिसंधारिज्जा** - मन में संकल्प करे।

भावार्थ - साधु या साध्वी अर्द्ध योजन प्रमाण संखडी-जीमनवार प्रीतिभोज आदि को जानकर आहार लाभ के निमित्त से वहाँ जाने का संकल्प न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को सरस एवं स्वादिष्ट पदार्थ प्राप्त करने की अभिलाषा से संखडी-जीमनवार या प्रीतिभोज में भिक्षा के लिये नहीं जाना चाहिये। संखडी शब्द का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है। "**संखण्डयन्ते-विराध्यन्ते प्राणिनो यत्र सा संखडि:**" - जहाँ अनेक जीवों के प्राणों का नाश करके भोजन तैयार किया जाता है उसे संखडी कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पाईणं संखडिं णच्चा पडीणं गच्छे अणाढायमाणे, पडीणं संखडिं णच्चा पाईणं गच्छे अणाढायमाणे, दाहिणं संखडिं णच्चा उदीणं गच्छे अणाढायमाणे, उदीणं संखडिं णच्चा दाहिणं गच्छे अणाढायमाणे॥

कठिन शब्दार्थ - पाईणं - पूर्व दिशा में, **पडीणं** - पश्चिम दिशा में, **अणाढायमाणे**- अनादर (उपेक्षा) करता हुआ, **दाहिणं** - दक्षिण दिशा में, **उदीणं** - उत्तर दिशा में।

भावार्थ - यदि साधु या साध्वी यह जाने कि पूर्व दिशा में संखडी (जीमनवार) हो रही है तो वह उसके प्रति अनादर (उपेक्षा) भाव रखते हुए पश्चिम दिशा में चला जाय। यदि पश्चिम दिशा में संखडी जाने तो उसके प्रति अनादर (उपेक्षा) भाव रखते हुवे पूर्व दिशा में चला जाय इसी प्रकार दक्षिण दिशा में संखडी जाने तो उसके प्रति अनादर भाव रख कर उत्तर दिशा में चला जाय और उत्तर दिशा में संखडी जाने तो उसके प्रति अनादर भाव रख कर दक्षिण दिशा में चला जाय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - संखडी (जीमनवार) में जाने से निम्नोक्त दोष लगने की सम्भावना रहती हैं रसनेन्द्रिय की लोलुपता, स्वाद की लोलुपता वश अत्यधिक आहार लाने का लोभ स्वादिष्ट भोजन अतिमात्रा में करने से स्वास्थ्य हानि, प्रमाद वृद्धि, स्वाध्याय आदि का क्रम भंग, जनता की भीड में धक्का मुक्की, स्त्री संघटा (स्पर्श) मुनिवेश एवं प्रवचन की अवहीलना, जनता में जैन साधु के प्रति अश्रद्धा भाव बढ़ने की सम्भावना तथा आधाकर्म आदि दोष लगने की सम्भावना रहती है। इसलिए जीमन आदि में जाने का निषेध किया है। यहाँ तक कि जिस दिशा में जीमनवार होवे उस दिशा में जावे ही नहीं।

जत्थेव सा संखडी सिया, तं जहा-गामंसि वा, णगरंसि वा, खेडंसि वा, कब्बडंसि वा मडबंसि वा, पट्टणंसि वा आगरंसि वा दोणमुहंसि वा, णिगमंसि वा, आसमंसि वा, संणिवेसंसि वा, जाव रायहाणिंसि वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए। केवली बूया आयाणमेयं॥

कठिन शब्दार्थ - **जत्थ** - जहाँ पर, **एव** - ही, **सिया** - कदाचित्, **गामंसि** - ग्राम में, **णगरंसि** - नगर में, **खेडंसि** - खेट में, **कब्बडंसि** - कर्बट में, **मडंबंसि** - मडंब में, **पट्टणंसि** - पट्टन (पतन) में, **आगरंसि** - आकर में, **दोणमुहंसि** - द्रोण मुख में, **णिगमंसि**- निगम-व्यापार स्थल में, **आसमंसि** - आश्रम में, **संणिवेसंसि** - सन्निवेश में, **रायहाणिंसि** - राजधानी में, **केवली** - केवली भगवान् ने, **बूया** - कहा है, **आयाणमेयं** - कर्म बंधन का कारण (हेतु)।

भावार्थ - जिस ग्राम में, नगर में, खेट में, कर्बट में, मडंब में, पतन में, आकर में, द्रोणमुख में, व्यापारिक स्थलों में, आश्रम में (तीर्थ स्थल में) सन्निवेश में यावत् राजधानी में जीमनवार (प्रीतिभोज) हो तो संखडी में स्वादिष्ट भोजन लाने की प्रतिज्ञा से जाने के लिए मन में भी इच्छा न करे। केवली भगवान् ने संखडी (प्रीतिभोज) में जाने से कर्मों का बंध होना कहा है।

विवेचन - '**आयाणमेयं**' (आदानमेतत्) के स्थान पर '**आययणमेयं**' (आयतनमेतत्) ऐसा पाठ भी मिलता है। जिसका अर्थ है - यह कार्य दोषों का स्थान हैं।

भावार्थ में दिये गये ग्राम आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार हैं - **१. ग्राम** - ग्रामीण धर्मों से युक्त तथा अठारह प्रकार के कर (महसूल) युक्त। **२. नगर** - अठारह प्रकार कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(मेहसूल) से रहित। ३. **खेट**- जिस के चारों तरफ धूलि का परकोटा हो। ४. **कर्बट** - कुनगर अर्थात् जहाँ किसी प्रकार का व्यापार धंधा नहीं हो सकता हो। ५. **मडंब** - जिस गांव के चारों तरफ, चारों दिशाओं में अढाई अढाई कोस तक कोई ग्राम न हो। ६. **पतन** (पाटन) - जहाँ जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों में से किसी एक से जाया जाता हो। ७. **आकर** - लोहे आदि की खान। ८. **द्रोणमुख** - जहाँ जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाया जाता हो। ९. **निगम** - जहाँ महाजनों (व्यापारियों) की वसति अधिक हो। १०. **आश्रम**- संन्यासियों के रहने का स्थान-तीर्थ स्थान। ११. **सन्निवेश** - जहाँ अनेक प्रकार के बर्तन मिलते हों अथवा पड़ाव। १२. **राजधानी** - जिस नगर में राजा स्वयं रहता हो।

संखडी में जाने से कौन से दोष लग सकते हैं इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार कहते हैं -

संखडिं संखडि पडियाए अभिधारेमाणे आहाकम्मियं वा, उद्देसियं वा, मीसजायं वा, कीयगडं वा, पामिच्चं वा, अच्छिज्जं वा, अणिसिट्ठं वा, अभिहडं वा, आहट्टु दिज्जमाणं भुंजिज्जा। असंजए भिक्खुपडियाए खुड्डियदुवारियाओ महल्लिय दुवारियाओ कुज्जा, महल्लियदुवारियाओ खुड्डियदुवारियाओ कुज्जा, समाओ सिज्जाओ विसमाओ कुज्जा, विसमाओ सिज्जाओ समाओ कुज्जा, पवायाओ सिज्जाओ णिवायाओ कुज्जा, णिवायाओ सिज्जाओ पवायाओ कुज्जा, अंतो वा बहिं वा उवसयस्स हरियाणि छिंदिय छिंदिय दालिय दालिय संथारगं संथारेज्जा, एस विलुंगयामो सिज्जाए तम्हा से संजए णियंठे अण्णयरं वा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **असंजए** - असंयति (गृहस्थ), **भिक्खुपडियाए** - साधु के लिए, **खुड्डियदुवारियाओ** - छोटे द्वारों को, **महल्लिय दुवारियाओ** - बड़े द्वारों वाला, **कुज्जा** - करता है, **विसमाओ** - विषम, **समाओ** - सम, **सिज्जाओ** - शय्या, वसति को, **पवायाओ**- वायु (हवा) वाली, **णिवायाओ** - निर्वात-वायु रहित, **उवस्सयस्स** - उपाश्रय के, **अंतो** - अंदर, **बहिं** - बाहर, **हरियाणि**- हरितकाय (हरियाली) का, **छिंदिय** - छेदन करके, **दालिय**- विदारण करके, **संथारगं** - संस्तारक को, **संथारिज्जा** - बिछाएगा, **विलुंगयामो** - अपरिग्रही (अकिंचन), **संजय**- संयत, **णियंठे** - निर्ग्रन्थ, **पुरेसंखडिं** - पूर्व संखडी-पुत्र जन्म, नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करण तथा विवाह आदि के उपलक्ष्य में होने वाला जीमणवार, **पच्छासंखडिं**- पश्चात् संखडी (मरण के बाद में किये जाने वाले भोज)।

भावार्थ - संखडी (जीमणवार) के संकल्प से जाने वाले साधु साध्वी को आधाकर्मिक औद्देशिक, मिश्रजात, खरीदा हुआ (क्रीतकृत) उधार लिया हुआ, कमजोर से छीनकर लिया हुआ, दूसरे के स्वामित्व का पदार्थ उसकी अनुमति बिना लिया हुआ या सम्मुख लाकर दिया हुआ ऐसा आहार आदि सेवन करने का प्रसङ्ग बनेगा तथा कोई भावुक गृहस्थ साधु के संखडी में पधारने की संभावना से छोटे द्वार को बड़ा, बडे द्वार को छोटा, सम शय्या को विषम और विषम शय्या को सम करेगा। वायु युक्त स्थान को निर्वात स्थान और निर्वात को अधिक वायु युक्त (हवादार) करेगा। उपाश्रय के भीतर या बाहर घास आदि हरियाली को छेदन करके विदारण करके उसे ठीक करेगा, संस्तारक-पाट आदि बिछायेगा इस तरह अनेक दोष संभव है। इसलिए संयमवान् निर्ग्रन्थ पूर्व संखडी तथा पश्चात् संखडी में आहार लाभ की इच्छा से जाने का संकल्प न करे।

विवेचन - संखडी में जाने से आधाकर्म आदि दोष लगने की तथा और भी कई दोष लगने की संभावना रहती है जैसे किसी श्रद्धालु गृहस्थ को यह पता लग जाय कि साधु इस ओर आहार के लिए आ रहा है तो वह उसके लिए शय्या स्थान आदि को ठीक करने का प्रयत्न करेगा, घास फूस को काटेगा, पानी आदि से धोएगा, दरवाजे को छोटा बड़ा बनाएगा आदि। अतः संखडी के स्थान में साधु को आहार के लिए जाने का निषेध किया गया है।

यहा संखडी के दो भेद किये हैं - **१. पूर्व संखडी** - जन्म नामकरण विवाह आदि के समय या इससे पूर्व किये जाने वाले भोज और **२. पश्चात् संखडी** - व्यक्ति की मृत्यु के बाद किया जाने वाला भोज।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जए त्ति बेमि॥ १३॥

॥ बीओ उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - यह साधु और साध्वी का आचार है वह सभी अर्थों में समित और ज्ञान दर्शन चारित्र से युक्त होकर संयम में सदा यत्न करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन का द्वितीय उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन का तृतीय उद्देशक

प्रथम अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में संखडी आदि से संबंधित दोषों का वर्णन किया गया है। इस तीसरे उद्देशक में अन्य दोषों का विवेचन करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से एगया अण्णयरं संखडिं आसित्ता पिबित्ता छड्डिज्ज वा वमिज्ज वा, भुत्ते वा से णो सम्मं परिणमिज्जा, अण्णयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जिज्जा, केवली बूया आयाणमेयं॥ १४॥

कठिन शब्दार्थ - **आसित्ता** - खाकर, **पिबित्ता** - पीकर, **छड्डिज्ज** - छर्दी (दस्त लगना), **वमिज्ज**- वमन करना, **सम्मं** - भली प्रकार से, **णो** - न, **परिणमिज्जा** - परिणमन हो, **अण्णयरे** - अन्य विशूचिकादि से, **दुक्खे** - दुःख, **रोगायंके** - रोग शूलादि आतंक, **समुप्पज्जिज्जा** - उत्पन्न हो जाए।

भावार्थ - संखडी में गया हुआ साधु कदाचित् सरस आहार अधिक मात्रा में करे या दूध आदि पीये तो उसे दस्त या वमन हो सकते हैं अथवा खाये हुए आहार का सम्यक्तया पाचन नहीं होने से विशूचिका ज्वर शूलादिक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। अतः केवली भगवान् ने संखडी में जाने और संखडी भोजन को ग्रहण करने के कार्य को कर्म बंधन का कारण कहा है।

विवेचन - पूर्व उद्देशक में बताया गया है कि संखडी में जाने से साधु को अनेक दोष लगने की संभावना रहती है। प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि संखडी में सरस एवं प्रकाम भोजन बनता है। स्वादिष्ट पदार्थों के कारण वे अधिक खाए जा सकते हैं। जिससे साधु को वमन हो सकता है और पाचन नहीं होने के कारण विशूचिका ज्वर या शूल आदि अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं अतः ऐसे स्थानों में आहार आदि के लिये साधु को नहीं जाना चाहिए।

इह खलु भिक्खू गाहावइहिं गाहावइणीहिं वा, परिवायएहिं वा, परिवाइयाहिं वा एगज्जं सद्धिं सुंडं पाउं भो वइमिस्सं हुरत्था वा उवस्सयं पडिलेहमाणो णो लभिज्जा तमेव उवस्सयं संम्मिस्सीभावमावज्जिज्जा, अण्णमणे वा से मत्ते विप्परियासियभूए इत्थिविग्गहे वा किलीवे वा तं भिक्खू उवसंकमित्तु बूया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आउसंतो समणा! अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा राओ वा वियाले वा गामधम्मणियंतियं कट्टु रहस्सियं मेहुण धम्मपरियारणाए आउट्टामो तं चेवेगइओ साइज्जिज्जा-अकरणिज्जं चेयं संखाए एए आयाणा (आययणा) संति संचिज्जमाणा पच्चावाया भवंति तम्हा से संजए णियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडि पडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ १५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **परिवायएहिं** - परिव्राजकों से, **परिवाइयाहिं** - परिव्राजिकाओं से, **एगज्जं**- एकत्र-इकट्ठे, **सद्धिं** - साथ, **सुंडं** - मदिरा को, **पाउं** - पीकर, **वइमिस्सं** - व्यतिमिश्र- बेभान (बेहोश) होकर, **हुरत्था** - बाहर निकलकर, **उवस्सयं** - उपाश्रय को, **पडिलेहमाणे**- खोज करता हुआ, **णो** - नहीं, **लभिज्जा** - प्राप्त होवे, **तमेव** - उसी, **संमिस्सीभावं** - गृहस्थ आदि के साथ मिलकर, **आवज्जिज्जा**- रहेगा, **अण्णमणे** - परस्पर, **मत्ते** - मदोन्मत्त होकर, **विप्परियासियभूए** - विपरीत भाव को प्राप्त कर, **इत्थीविग्गहे** - स्त्री शरीर में, **किलीवे** - नपुंसक में, **आरामंसि** - उद्यान में, **राओ** - रात्रि में, **वियाले**- विकाल में, **गामधम्मणियंतियं** - भोग भोगने के लिए, **कट्टु**- प्रतिज्ञा करके, **रहस्सियं** - एकान्त स्थान में, **मेहुणधम्मपरियारणाए** - मैथुन धर्म के आसेवनार्थ, **आउट्टामो** - प्रवृत होवें, **एगइओ** - कोई अनभिज्ञ अकेला साधु, **साइज्जिज्जा** - स्वीकार कर ले, **संखाए** - जान कर, **आयाणा**- कर्म बंध का स्थान, **संचिज्जमाणा** - कर्म संचय करता हुआ, **पच्चवाया** - अनेक दोष।

भावार्थ - संखडी में गया हुआ साधु बहुत से गृहस्थों, गृहस्थ स्त्रियों, परिव्राजकों या परिव्राजिकाओं के साथ एक स्थान पर मिलेगा, कदाचित् मदिरापान करेगा, मद्यपान से बेहोश होकर अपनी आत्मा का भान भूलकर अपने उपाश्रय की खोज करेगा, उपाश्रय नहीं मिलने पर उसी स्थान पर पहुँच कर गृहस्थादि के साथ मिलजुल कर रहेगा, मदिरा के प्रभाव से उन्मत्त बना हुआ स्व स्वरूप को भूलकर स्त्री या नपुंसक पर आसक्त हो जायेगा अथवा स्त्री नपुंसक उस पर आसक्त हो जायेंगे और साधु के पास आकर कहेंगे कि हे आयुष्मन् श्रमण! हम किसी एकान्त उद्यान में या उपाश्रय में रात्रि में विकाल में अमुक समय भोग भोगेंगे। इस प्रकार वे साधु को भोग भोगने के लिए ललचा कर प्रतिज्ञाबद्ध कर लेंगे और कदाचित् अनभिज्ञ अकेला साधु उनकी भोग प्रार्थना को स्वीकार भी कर ले, अतः यह सब अकरणीय कार्य जानकर भगवान् ने संखडी में जाने का निषेध किया है क्योंकि वहाँ जाने से कर्म बंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अनेक दोष लगने की संभावना है। अतः संयमवान् निर्ग्रन्थ मुनि पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी में जाने का विचार भी न करे।

विवेचन - आत्म पतन होने की संभावना के कारण भगवान् ने संखडी में जाने का निषेध किया है और इसे कर्म बन्धन का स्थान कहा है। अतः साधु को संखडी के स्थान की ओर भी नहीं जाना चाहिये। इस विषय को और स्पष्ट करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णयरिं संखडिं सोच्चा णिसम्म संपहावइ उस्सुयभूएण अप्पाणेणं, धुवा संखडी णो संचाएइ तत्थ इयरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिग्गाहित्ता आहारं आहारित्तए, माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा। से तत्थ कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिगाहित्ता आहारं आहारिज्जा॥ १६॥

कठिन शब्दार्थ - **अण्णयरिं** - अन्यतर-किसी एक स्थान पर, **सोच्चा** - सुनकर, **णिसम्म**- निश्चित कर-विचार कर, **उस्सुयभूएण** - उत्सुकता से, **संपहावइ** - जाता है, **धुवा** - निश्चित, **इयरेयरेहिं**- इतर-इतर-भिन्न-भिन्न, **कुलेहिं** - कुलों से, **सामुदाणियं** - सामुदानिक-बहुत से घरों का, **एसियं** - एषणीय **वेसियं** - साधु वेश द्वारा प्राप्त किया गया-उत्पादना के दोषों से रहित, **पिंडवायं**-आहार को, **णो संचाएइ**-समर्थ नहीं होगा, **माइट्ठाणं**-मातृ स्थान का, **संफासे**- स्पर्श।

भावार्थ - जो कोई साधु या साध्वी पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी का होना सुनकर निश्चय कर उत्सुकता पूर्वक वहाँ जाता है। "वहाँ तो निश्चित जीमनवार हैं" ऐसा सोचकर वहाँ गया हुआ साधु उद्गम और उत्पादना आदि के दोषों से रहित भिन्न-भिन्न कुलों से प्रासुक और एषणीय निर्दोष आहार ग्रहण कर भोगने में समर्थ नहीं होगा, किन्तु वहीं से सदोष भिक्षा (दूषित आहार) ग्रहण कर दोषी बनेगा। वहाँ मातृ स्थान (कपट) का स्पर्श होता है अर्थात् संयम मार्ग का उल्लंघन होता है। अतः साधु ऐसा कार्य न करे। वह ऐसे ग्राम में प्रवेश करके भी भिक्षा के समय भिन्न-भिन्न कुलों से सामुदानिक भिक्षा द्वारा, उद्गम उत्पादना आदि के दोषों से रहित (निर्दोष) आहार प्राप्त करके उसका उपभोग करे परन्तु संखडी में जाने का विचार न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया है कि साधु साध्वी को संखडी को छोड़ कर अन्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घरों में निर्दोष एवं एषणीय आहार ग्रहण करते हुए संयम साधना में रत रहना चाहिये। शुद्ध भिक्षाचरी के लिये मूल पाठ में प्रयुक्त तीन शब्दों का अर्थ इस प्रकार है -

१. सामुदाणियं - सामुदानिक गोचरी अर्थात् छोटे बड़े या अमीर-गरीब के भेद को भुला कर अनिंदनीय कुलों से निर्दोष आहारादि ग्रहण करना।

२. एसियं - एषणीय-आधाकर्म आदि १६ उद्गम के दोषों से रहित।

३. वेसियं - वैषिक यानी धात्री आदि उत्पादना के १६ दोषों से रहित। **'वेसिय'** शब्द के दो रूप बनते हैं। वैषिक अर्थात् वेष आदि बाह्य लिंग से प्राप्त हुआ और व्येषित अर्थात् विशेष एषणा से शुद्ध कर लिया हुआ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संखडी सिया तं पि य गामं वा जाव रायहाणिं वा संखडी संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए। केवली बूया-आयाणमेयं॥

भावार्थ - जिस गांव में या राजधानी में संखडी हो, वहां साधु अथवा साध्वी उस ग्राम या राजधानी में होने वाली संखडी में संखडी की प्रतिज्ञा से जाने का विचार न करे क्योंकि केवली भगवान् ने फरमाया है कि ऐसा करने से कर्म बंध होता है।

आइण्णोवमाणं संखडिं अणुपविस्समाणस्स पाएण वा पाए अक्कंतपुव्वे भवइ, हत्थेण वा हत्थे संचालिय पुव्वे भवइ, पाएण वा पाए आवडियपुव्वे भवइ, सीसेण वा सीसे संघट्टिय पुव्वे भवइ, काएण वा काए संखोभियपुव्वे भवइ, दंडेण वा, अट्ठिणा वा, मुट्ठिणा वा, लेलुणा वा, कवालेण वा, अभिहयपुव्वे भवइ, सीओदएण वा उस्सित्त पुव्वे भवइ, रयसा वा परिघासिय पुव्वे भवइ, अणेसणिज्जे वा परिभुत्तपुव्वे भवइ अण्णेसिं वा दिज्जमाणे पडिग्गाहिय पुव्वे भवइ, तम्हा से संजए णिग्गंथे (णियंठे) तहप्पगारं आइण्णोवमाणं संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ १७॥

कठिन शब्दार्थ - **आइण्ण** - आकीर्ण-अधिक भीड़ वाली, **अवमा** - अवम-हीन, **अणुपविस्समाणस्स** - प्रवेश करते हुए के, **पाएण वा पाए** - पैर से पैर **अक्कंतपुव्वे** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम आक्रान्त, **हत्थेण वा हत्थे** - हाथ से हाथ, **संचालियपुव्वे भवइ** - संचालन होता है, **पाएण वा पाए** - पात्र से पात्र, **आवडियपुव्वे भवइ** - घर्षण (टक्कर) होता है, **सीसेण व सीसे** - सिर से सिर का, **संघट्टियपुव्वे** - प्रथम संघट्टा होना, **काएण वा काए** - शरीर से शरीर का, **संखोभियपुव्वे**- प्रथम संक्षोभ होना, **दंडेण**- डंडे से, **अट्ठिणा** - अस्थि से, **मुट्ठिणा** - मुष्टि से, **लेलुणा** - ढेले से, **कवालेण** - फूटे ठीकरे से, **अभिहयपुव्वे** - प्रथम अभिहत होना, **सीओदएण** - शीतोदक-शीतल जल से (सचित्त पानी से) **उस्सित्तपुव्वे**- प्रथम फेंकना, **रयसा** - रज से-सचित्त मिट्टी से, **परिघासियपुव्वे** - प्रथम परिघर्षित करना, **अणेसणिज्जे**- अनेषणीय, **परिभुत्तपुव्वे** - प्रथम ग्रहण करना, **अण्णेसिं वा दिज्जमाणे**- अन्य को देते हुए दाता से, **पडिग्गाहियपुव्वे** - बीच में ही पहले ग्रहण कर लेगा।

भावार्थ - जिस जीमनवार में बहुत लोग एकत्रित हुए हों और भोजन कम मात्रा में बनाया हुआ हो वहाँ यदि साधु साध्वी जाये तो भीड़भाड़ में उनके पैर अन्य व्यक्तियों के पैरों तले दब सकते हैं, हाथ से हाथ का संचालन हो सकता है, पात्र से पात्र का संघर्षण हो सकता है, सिर से सिर और शरीर से शरीर का संघटन हो सकता है, क्षोभ हो सकता है। ऐसी भीड़ में कदाचित् साधु को लकड़ी, अस्थि, मुष्टि, पत्थर, मिट्टी के ढेले आदि के प्रहार को भी सहन करना पड़ सकता है। कोई मुनि के शरीर पर शीतल जल फैंक सकता है या सचित्त जल से संघट्टा हो सकता है, इसके अतिरिक्त एक दूसरे पर सचित्त मिट्टी भी फैंक सकते हैं अथवा याचकों की अधिक संख्या होने से साधु को अनेषणीय आहार ग्रहण करने की सम्भावना रह सकती है या अन्य को दिये जाने वाले आहार को बीच में ही ग्रहण करने का प्रसङ्ग बन सकता है। इस तरह वहाँ जाने में अनेकों दोष संभव है। अतः संयमवान् निर्ग्रन्थ साधु इस प्रकार की भीडवाली और जहाँ थोड़े व्यक्तियों के लिए भोजन बना हो एवं बहुत से व्यक्ति जा पहुँचे हो ऐसी संखडी में जाने का विचार भी न करे।

विवेचन - संखडी दो तरह की होती है - १. आकीर्ण-परिव्राजक आदि भिक्षुओं से व्याप्त संखडी और २. अवम अर्थात् जिसमें भोजन थोड़ा बना हो और भिक्षु अधिक आ गये हों, ऐसी हीन संखडी। ऐसी संखडी में जाने से भीड अधिक होने के कारण धक्का मुक्की और परस्पर संघर्ष होने की संभावना रहती है। परस्पर वाक् युद्ध एवं मुष्टि तथा दण्ड आदि का प्रहार भी हो सकता है। इस तरह संखडी में जाना संयम घातक है अतः साधु को उस ओर आहार आदि के लिये नहीं जाना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा एसणिज्जं सिया अणेसणिज्जं सिया वितिगिच्छसमावण्णेणं अप्पाणेणं असमाहडाए लेस्साए तहप्पगारे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा लाभे संते णो पडिग्गाहिज्जा॥ १८॥

कठिन शब्दार्थ - **वितिगिच्छसमावण्णेणं** - विचिकित्सा-आशंका युक्त, **असमाहडाए**- आहार अशुद्ध है इस प्रकार की **लेस्साए** - लेश्या से।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ गया हुआ साधु या साध्वी यह जाने कि आहार सदोष है या निर्दोष ? यदि इस प्रकार की शंका उत्पन्न हो कि आहार अशुद्ध है तो वह उस आहार को मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - साधु को आहार आदि के सदोष-निर्दोष (एषणीय अनेषणीय) होने की शंका हो जाने पर उसे ग्रहण ही नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसा आहार ग्रहण करने पर कई प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं जो आध्यात्मिक साधना में बाधक बनते हैं।

से भिक्खू गाहावइकुलं पविसिउकामे सव्वं भंडगमायाए गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - **भंडगमायाए** - धर्मोपकरण को लेकर।

भावार्थ - गृहपति (गृहस्थ) के कुल में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाला साधु सब धार्मिक उपकरणों को साथ लेकर पिंडपात प्रतिज्ञा (आहार प्राप्ति के उद्देश्य) से गृहपति के कुल में प्रवेश करे या निकले।

से भिक्खू बहिया विहार भूमिं वा वियार भूमिं वा पविसमाणे वा णिक्खममाणे वा सव्वं भंडगमायाए बहिया विहार भूमिं वा वियारभूमिं वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - **विहारभूमिं** - स्वाध्याय भूमि में, **वियारभूमिं** - मलोत्सर्ग भूमि में।

भावार्थ - साधु ग्राम आदि से बाहर स्थंडिल भूमि में या स्वाध्याय भूमि में जावे अथवा वहाँ से वापिस आवे तो अपने सब धार्मिक उपकरणों को साथ लेकर प्रवेश करे या निकले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू गामाणुगामं दुइज्जमाणे सव्व भंडगमायाए गामाणुगामं दुइज्जिज्जा॥ १९॥

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विचरण करते समय साधु अपने सर्व धार्मिक उपकरणों को साथ लेकर विहार करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जिनकल्पी या प्रतिमाधारी साधु को आहार आदि के लिये तथा स्वाध्याय या शौच आदि के लिये और अपने ठहरे हुए स्थान से बाहर जाते समय अपने सभी उपकरण साथ में ले जाने चाहिये। क्योंकि जिनकल्पी या विशिष्ट प्रतिमाधारी मुनि गच्छ से अलग अकेला रहता है और उसके उपकरण भी अधिक नहीं होते हैं। सामान्य रूप से '**अछिद्र पाणिपात्र**' अर्थात् जिनके हाथ की अङ्गुलियों को इकट्ठा करने पर बीच में छिद्र न रहे और यहाँ तक की पानी की एक बून्द भी नीचे न पड़े उसके हाथ ही पात्र का काम देते हैं इसलिए उसे 'पाणि (हाथ) पात्र' कहते हैं। जिनकल्पी मुनि के रजोहरण और मुखवस्त्रिका ये दो उपकरण तो होते ही हैं। इसके अलावा चोलपट्टक, एक सूती, एक ऊनी वस्त्र भी रख सकता है, इस तरह ५ उपकरण हुए। छिद्रपाणि जिनकल्पी साधु पात्र रखता हैं तो उस पात्र के साथ उसे सात उपकरण रखने होते हैं जैसा कि कहा है -

पात्रं पात्रबन्धः पात्रस्थापनं च पात्र केसरिका।
पटलानि रजस्त्राणं च गोच्छकः पात्र निर्योगः॥

अर्थ - पात्र, पात्रों को बांधने का कपड़ा (झोली), पात्र स्थापन (पात्रों के नीचे बिछाने का कपड़ा), पात्र केसरिका (पात्रों को पोंछने का कपड़ा), पटल (पात्रों को ढकने का कपड़ा), रजस्त्राण (पात्रों को बांधते समय वे परस्पर रगड न खाय इसलिए दो पात्रों के बीच में रखा जाने वाला कपड़ा), गोच्छक (सूखे पात्रों को पोंछने का कपड़ा)। ये सातों चीजों को मिलाकर 'पात्र निर्योग' कहा जाता है इस प्रकार छिद्रपाणि साधु पात्र निर्योग और रजोहरण और मुखवस्त्रिका इस तरह नौ उपकरण, चौलपट्टा रखे तो दस उपकरण, एक चादर रखे तो ग्यारह उपकरण और एक ऊनी वस्त्र रखे तो बारह उपकरण होते हैं। इस प्रकार जिन कल्पी साधु के आठ भेद हो जाते हैं। यथा - १. दो उपकरण (मुखवस्त्रिका और रजोहरण) रखने वाला २. तीन उपकरण रखने वाला ३. चार उपकरण रखने वाला ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांच उपकरण रखने वाला ६. दस उपकरण रखने वाला ७. ग्यारह उपकरण रखने वाला ८. बारह उपकरण रखने वाला।

इस तरह जिनकल्पी के जघन्य २ उत्कृष्ट १२ उपकरण कहे गये हैं। थोड़े उपकरण होने से वह उन्हें अपने साथ ले जा सकता है।

से भिक्खू अह पुण एवं जाणिज्जा तिव्वदेसियं वासं वासमाणं पेहाए, तिव्वदेसियं महियं संणिवयमाणं पेहाए, महावाएण वा रयं समुद्धयं पेहाए, तिरिच्छसंपाइमा वा तसा पाणा संथडा संणिवयमाणा पेहाए, से एवं णच्चा णो सव्वं भंडगमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा बहिया विहार भूमिं वा वियार भूमिं वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा गामाणुगामं दूइज्जिज्जा वा॥ २०॥

कठिन शब्दार्थ - **तिव्वदेसियं** - बहुत विस्तृत क्षेत्र, **वासं** - वर्षा, **वासमाणं** - बरसती हुई, **पेहाए**- देखकर, **महियं** - मिहिका (धूंअर), **संणिवयमाणं** - पड़ती हुई, **महावाएण** - महावायु (आंधी) से, **रयं** - धूल, **समुद्धुयं** - उड़ती हुई, **तिरिच्छसंपाइमा** - तिरछे चलने वाले, **तसा पाणा** - त्रस प्राणी, **संथडा** - समुदाय को।

भावार्थ - बहुत दूर तक वर्षा बरसती हुई देखकर, अंधकार रूप धूंअर गिरती हुई देखकर, आंधी चलने से धूल उड़ती हुई देखकर या टिड्डी आदि बहुत से त्रस प्राणियों को उड़ते हुए गिरते हुए देखकर साधु अपने सब धर्मोपकरणों को साथ लेकर भी आहार की प्रतिज्ञा से गृहस्थ के घर में न तो प्रवेश करे और न ही निकले, न बाहर स्वाध्याय भूमि में या स्थंडिल भूमि में प्रवेश या निष्क्रमण करे तथा ग्रामानुग्राम विहार भी न करे।

विवेचन - ऐसे प्रसंगों पर साधु गमनागमन करेगा तो अप्कायिक जीवों की एवं अन्य प्राणियों की हिंसा होगी। अतः उनकी रक्षा के लिये साधु को वर्षा आदि के समय पर अपने स्थान पर ही स्थित रहना चाहिये।

सूत्र नं. १९ और २० ये दोनों सूत्र जिनकल्पी या प्रतिमाधारी साधु के लिये हैं। साध्वी जिनकल्प या प्रतिमा (प्रतिज्ञा-अभिग्रह विशेष) को धारण नहीं कर सकती है इसीलिए इन दोनों सूत्रों में "**वा भिक्खुणी वा**" शब्द नहीं होने चाहिए। केवल '**भिक्खू**' शब्द ही होना चाहिए। बहुत प्रतियों में "**वा भिक्खुणी वा**" शब्द है इसलिये टीकाकार ने मूल में यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्द रख दिया है परन्तु टीकाकार अभयदेव सूरि ने इसकी टीका में सिर्फ **'भिक्खू'** शब्द की 'भिक्षु' संस्कृत छाया कर उसी का अर्थ दिया है यथा - इसकी टीका इस प्रकार दी है-

"स भिक्षुर्गच्छनिर्गतो जिनकल्पिकादिर्गृहपतिकुलं प्रवेष्टुकामः"

अर्थ - "वह साधु जिनकल्पी आदि गृहस्थ के घर में प्रवेश करने की इच्छा रखता हुआ" इत्यादि।

इससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ **'भिक्खुणी'** शब्द नहीं होना चाहिए अतः इस प्रति के मूल में **'वा भिक्खुणी वा'** शब्द नहीं रखा है।

टीका में आये हुए **"जिनकल्पिकादि"** शब्द से स्थविरकल्पी साधु साध्वियों के लिए भी इस सूत्र का विधान समझा जाता है। नजदीक में रहे हुए ग्रामादि में ग्लान आदि साधुओं को संभाल कर पुनः आना हो, ऐसे स्थिति में सभी भण्डोपकरण लिये बिना ग्रामानुग्राम विचरण की विधि समझी जा सकती है। बहुश्रुत गुरु भगवन्तों की धारणा भी ऐसी ही है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा तं जहा - खत्तियाण वा, राईण वा, कुराईण वा, रायपेसियाण वा, रायवंसट्ठियाण वा, अंतो वा, बाहिं वा, गच्छंताण वा, संणिविट्ठाण वा, णिमंतेमाणाण वा, अणिमंतेमाणाण वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा लाभे संते णो पडिग्गाहिज्जा त्ति बेमि॥ २१॥

कठिन शब्दार्थ - खत्तियाण - क्षत्रियों के कुल, **राईण** - राजाओं के कुल, **कुराईण**- कुराजाओं के कुल, **रायपेसियाण** - राज प्रेष्यों के कुल, **रायवंसट्ठियाण** - राजवंश के कुल, **अंतो**- अंदर, **वा** - अथवा, **बाहिं** - बाहर, **गच्छंताण** - जाते हुए **संणिविट्ठाण** - बैठे हुए, **णिमंतेमाणाण**- निमंत्रण करते हुए, **अणिमंतेमाणाण** - आमंत्रण नहीं करते हुए।

भावार्थ - साधु या साध्वी चक्रवर्ती आदि क्षत्रियों, राजाओं, ठाकुर, सामंतों आदि, दंडपाशिक आदि राजवंशीय कुलों से जो भीतर या बाहर जाते हुए, खडे या बैठे हुए निमंत्रण किये जाने पर अथवा निमंत्रण न किये जाने पर वहाँ से प्राप्त होने वाले आहार आदि को साधु ग्रहण न करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने कुछ ऐसे कुलों का निर्देश किया है जहाँ साधु साध्वियों को भिक्षा के लिये नहीं जाना चाहिये। राज भवन एवं राजमहल आदि में लोगों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का अधिक आवागमन होने से ईर्यासमिति का बराबर पालन नहीं हो सकता इस कारण संयम की विराधना होती है। अतः साधु को उक्त कुलों में आहार आदि के लिये नहीं जाना चाहिये।

यह कथन सापेक्ष ही समझना चाहिये क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में जिन १२ कुलों का निर्देश किया है उनमें उग्र कुल आदि कुलों से आहार लेने का स्पष्ट वर्णन है। यदि इन कुलों में जाने पर संयम में किसी तरह का दोष न लगता हो तो इन घरों से निर्दोष आहार लेने में कोई दोष नहीं है। यहाँ पर निषेध केवल इसलिये किया गया है कि राजघरों में चहल पहल अधिक हो तो उस समय ईर्यासमिति का भलीभांति पालन नहीं किया जा सकेगा।

प्रस्तुत सूत्र में राजा, क्षत्रिय आदि कुलों में भिक्षा के लिए जाने का निषेध किया है। क्षत्रिय शब्द से चक्रवर्ती, वासुदेव आदि का तथा राजा शब्द से माण्डलिक आदि राजाओं का अर्थ किया गया है। इनके यहाँ का पिण्ड तो राजपिण्ड होने से प्रथम एवं अंतिम तीर्थंकर के साधुओं के लिए निषिद्ध है। शेष छोटे राजा एवं ठाकुर आदि के यहाँ का पिण्ड राजपिण्ड नहीं माना गया है। वहाँ पर नहीं जाने का उपर्युक्त कारण समझना चाहिए।

॥ प्रथम अध्ययन का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन का चतुर्थ उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा मंसाइयं वा, मच्छाइयं वा, मंसखलं वा, मच्छखलं वा, आहेणं वा, पहेणं वा, हिंगोलं वा, संमेलं वा, हीरमाणं पेहाए अंतरा से मग्गा, बहुपाणा, बहुबीया, बहुहरिया, बहुओसा, बहु उदया, बहु उत्तिंगपणगदग मट्टिय मक्कडा संताणया, बहवे तत्थ समण माहण अतिहि किवण वणीमगा उवागया उवागमिस्संति, तत्थाइण्णा वित्ती, णो पण्णस्स णिक्खमणपवेसाए वायण-पुच्छण-परियट्टणाणुप्पेहा धम्माणुओगचिंताए से एवं णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ २२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **मंसाइयं** - मांस प्रधान, **मच्छाइयं** - मत्स्य प्रधान, **मंस खलं** - मांस का ढेर, **मच्छ खलं** - मत्स्य का ढेर (समूह), **आहेणं** - विवाह भोज, **पहेणं** - वधू की विदाई के उपलक्ष्य में दिया जाने वाला भोज, **हिंगोलं** - मृतक भोज या यक्षादि की यात्रा का भोज, **संमेलं** - प्रीति भोज, **हीरमाणं** - ले जाते हुए को, **अंतरामग्गा** - मार्ग के मध्य में, **उवागया** - आये हों, **उवागमिस्संति** - आने वाले हों या आ रहे हों, **तत्थ** - वहाँ पर, **आइण्णा** - आकीर्ण, **वित्ती** - वृत्ति, **पण्णस्स** - बुद्धिमान् साधु को, **णो वायणपुच्छणपरियट्टणाणुप्पेहाधम्माणुओगचिंताए** - वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिंता नहीं हो सकती।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रवेश करते साधु या साध्वी ऐसा जाने कि आहार मांस प्रधान मत्स्य प्रधान है अथवा मांस या मत्स्य का ढेर रक्खा है। विवाह संबंधी भोज है, मृतक भोज है या यक्षादि की यात्रा का भोज है या प्रीतिभोज है वहाँ से कोई भोजन ले जाये जा रहे हो। मार्ग में बहुत से प्राणी बहुत से बीज, बहुत सी हरी, बहुत सी ओस, बहुत सा पानी, बहुत सी कीड़ियां, निगोद आदि के सूक्ष्म जीव, सचित्त मिट्टी, काई, मकड़ी के जाले आदि हों वहाँ बहुत से शाक्य आदि श्रमण, ब्राह्मण अतिथि, दीन और भिखारी आदि आए हुए हों, आ रहे हों या आने वाले हों जिससे वहाँ बहुत भीड़ हो, जहाँ आना जाना मुश्किल हो, वाचना पृच्छना परिवर्तना अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिन्तन का स्थान प्राप्त न हो तो साधु ऐसी पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी में जाने का विचार भी न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संखडियों के अन्य भेदों का उल्लेख करते हुए साधु साध्वी को वहाँ भिक्षार्थ जाने का निषेध किया गया है क्योंकि प्रथम तो वहाँ आहार में दोष लगने की संभावना है, दूसरे में अन्य भिक्षुओं के अधिक आवागमन होने से उनके मन में द्वेष भाव उत्पन्न होने की तथा अन्य जीवों की विराधना होने की संभावना रहती है और तीसरे में वाचना पृच्छना आदि स्वाध्याय में अंतराय पडने की संभावना रहती है। इस तरह संखडी में जाने के कारण अनेक दोषों का सेवन होता है ऐसा जानकर प्रभु ने उसका निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा मंसाइयं वा मच्छाइयं वा जाव हीरमाणं पेहाए अंतरा से मग्गा अप्पा पाणा जाव अप्पसंताणया, णो जत्थ बहवे समण माहणा जाव उवागमिस्संति अप्पाइण्णा वित्ती पण्णस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिक्खमणपवेसाए पण्णस्स वायण पुच्छण परियट्टणाणुपेहाए धम्माणुओगचिंताए सेवं णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्चासंखडि वा संखडिपडियाए अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ २२॥

भावार्थ - साधु साध्वी अगर ऐसा जाने कि मांस प्रधान, मत्स्य प्रधान संखडी में यावत् उस प्रकार की संखडी में से आहार ले जाते हुए किसी को देखकर तथा उस साधु को मार्ग में जीव विराधना की शंका न हो, वहाँ पर बहुत से शाक्यादि भिक्षु भी नहीं आयेंगे, वहाँ आने जाने में सुलभता हो तथा वाचना पृच्छना परिवर्तना अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिंतन में बाधा न हो ऐसा जान लेने पर साधु अपवाद के रूप में पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी में जाने का विचार करे।

विवेचन - उत्सर्ग मार्ग में तो किसी भी तरह की संखडी में जाने का विधान नहीं है परन्तु प्रस्तुत सूत्र में अपवाद मार्ग में कथन किया गया है कि यदि संखडी में जाने का मार्ग जीव जन्तुओं एवं हरितकाय या बीजों से रहित है अन्यमत के भिक्षु भी वहाँ नहीं है और आहार भी निर्दोष एवं एषणीय है तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। टीकाकार का कथन है कि प्रस्तुत सूत्र अवस्था विशेष के लिये है।

जब कि संखड़ी (जीमणवार) में जाने का ही निषेध किया गया है तो फिर भला जहां मांस आदि प्रधान संखड़ी में जावे ही कैसे? अर्थात् ऐसी संखड़ी में जाने का सवर्था निषेध ही है क्योंकि जैन के साधु साध्वी मांस और मदिरा के सर्वथा त्यागी होते हैं। ऐसी स्थिति में यह अपवाद रूप सूत्र समझना चाहिए। ऐसी कोई शाकाहारी चीज जो अन्यत्र नहीं मिल सकती हो और बीमार साधु के लिये पथ्य रूप कोई वस्तु वहीं पर मिल सकती हो तो गीतार्थ साधु विवेक पूर्वक उस वस्तु की वहाँ पर गवेषणा कर सकता है। अगीतार्थ साधु के लिए तो सर्वथा निषेध ही है।

आगमकालीन युग से लेकर आज पर्यन्त क्षत्रिय आदि उच्च कुलों में - भले वे मांसाहारी भी हों-गोचरी जाने के प्रसंग आते हैं। इसे आगम निषिद्ध भी नहीं समझते हैं। क्योंकि इन कुलों में वैसा आहार अलग ही बनता है, उनके बर्तन भी अलग ही रहते हैं। ऐसी ही स्थिति का आचारांग सूत्र (२-१-४) में उल्लेख है। जहाँ पर भोज में मांस एवं मच्छ की प्रमुखता रही हो, अतः उनके ढेर के ढेर पड़े हों साधारणतया उत्सर्ग विधि से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ नहीं जाना चाहिये। यदि कोई ग्लान प्रायोग्य द्रव्य अन्यत्र नहीं मिल रहा हो, वहाँ पर हो तो अपवाद विधि से उन अभक्ष्य वस्तुओं को छोड़कर अन्य ग्लान प्रायोग्य द्रव्य लाने की आगमकारों ने विधि बतलाई है। भोज पूर्ण हो जाने के बाद लोगों एवं भिक्षाचरों का आना जाना कम हो जाने पर तो साधु प्रायोग्य वस्तु उत्सर्ग विधि से भी उन कुलों से लाई जा सकती है। यहाँ पर प्रयुक्त "**मंसाइयं.....**" आदि शब्दों का मांसपरक अर्थ ही करते हैं, वनस्पतिपरक अर्थ तो इसी अध्ययन के उद्देशक दशवें में आये हुए शब्दों '**बहुअट्ठियं मंसं, मच्छं वा बहुकंटयं**' का करते हैं। (बहुत गुठलियों वाला फल का गिर भाग, बहुत कांटों वाली वनस्पति-अन्ननास आदि फल) आचार की अनभिज्ञता के कारण चाहे किसी को यह उपर्युक्त 'मांसपरक' अर्थ अटपटा भी लग सकता है परन्तु 'आगमकालीन युग से ऐसे ही अर्थ की परम्परा चली आ रही है।' ऐसा समझते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविसिउकामे से जं पुण जाणिज्जा खीरिणियाओ गावीओ खीरिज्जमाणीओ पेहाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उवसंखडिज्जमाणं पेहाए पुरा अप्पजूहिए सेवं णच्चा णो गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा। से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा- खीरिणियाओ गावीओ खीरियाओ पेहाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उवक्खडियं पेहाए पुराए जूहिए सेवं णच्चा तओ संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा॥ २३॥

कठिन शब्दार्थ - **खीरिणियाओ** - दूधारू, **गावीओ** - गायों को, **खीरिज्जमाणीओ**- दूही जाती हुई, **उवसंखडिज्जमाणं** - बनते हुए को, पकते हुए को, **पुरा अप्पजूहिए** - अन्य किसी को नहीं दिया गया हो, **एगंतं** - एकान्त स्थान में, **अवक्कमिज्जा** - जावे, **अणावायं** - लोगों का आवागमन न हो, **असंलोए** - किसी की दृष्टि न पड़ती हो, **चिट्ठिज्जा** - खड़ा रहे, ठहर जाय, **उवक्खडियं** - तैयार हो चुका है, **पुराए जूहिए** - दूसरों को दिया जा चुका है।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में प्रवेश की कामना रखते हुए ऐसा जान ले कि दूधारू गायों का दोहन कर रहे हैं, अशनादिक आहार पक रहा है अभी तक उसमें से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी दूसरे को नहीं दिया गया है तो साधु गृहस्थ के घर में आहार पानी के लिए प्रवेश न करे किन्तु ऐसे एकान्त स्थान में जहाँ लोगों का आवागमन न हो और किसी की दृष्टि भी न पड़ती हो वहाँ जाकर ठहर जाय और जब देखे कि गायें दुही जा चुकी हैं भोजन पक चुका है अन्य को दिया जा चुका है तब यतना पूर्वक आहार पानी के लिये गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

विवेचन - यदि किसी गृहस्थ के घर गायों का दूध निकाला जा रहा हो और साधु घर में प्रवेश करे तो संभव है गायें साधु के वेश को देखकर डर जाएं और साधु को मारने दौड़े तो साधु के या दोहने वाले व्यक्ति के चोट भी लग सकती है तथा साधु को आया देख कर गृहस्थ सोचे कि साधु को भी दूध देना होगा अतः वह गाय के बछड़े के लिए छोडे जाने वाले दूध का भी दोहन कर ले, इससे बछड़े को अन्तराय लगेगी अतः ऐसे समय में साधु को गृहस्थ के घर में प्रवेश नहीं करना चाहिये।

आहार पक रहा हो और उस समय साधु पहुँच जाय तो गृहस्थ उसे जल्दी पकाने का यत्न करेगा उससे तेउकाय के जीवों की विराधना होगी। इस तरह कई दोष लगने की संभावना होने के कारण साधु को ऐसे समय में गृहस्थ के घर में प्रवेश करने का निषेध किया है।

भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु-समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अयं गामे संणिरुद्धाए णो महालए से हंता भयंतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरियाए वयह॥

कठिन शब्दार्थ - **भिक्खागा** - भिक्षु-साधु मुनि, **एवमाहंसु** - इस प्रकार कहे, **समाणा**- वृद्धावस्थादि कारणों से स्थिरवास करने वाले, **वसमाणा** - मास कल्प से विचरने वाले मुनि, **अयं** - यह, **गामे** - ग्राम, **खुड्डाए** - छोटा है, **संणिरुद्धाए** - संनिरुद्ध-रुके हुए हैं अर्थात् भिक्षा के लिये जाने के योग्य नहीं है, **णो महालए** - यह गांव बड़ा नहीं है, **भयंतारो** - हे पूज्य मुनिवरो!, **बाहिरगाणि** - बाहर के किसी, **गामाणि** - गांव में, **भिक्खायरियाए** - भिक्षार्थ, **वयह** - पधारो।

भावार्थ - वृद्धावस्थादि कारणों से स्थिरवास करने वाले या मासकल्प से विचरने वाले मुनि नये आने वाले मुनियों से इस प्रकार कहे कि - "हे पूज्य मुनिवरो! यह गांव छोटा है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसमें भी कितनेक घर संनिरुद्ध-बंद पडे हैं, प्रसूति आदि कारणों से रुके हुए हैं। अतः आप गांव से बाहर किसी अन्य गांव में भिक्षा के लिए पधारो।'' ऐसा सुनकर साधु ग्रामान्तर चला जाय।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त ''**समाणा वा वसमाणा**'' शब्द का टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं - **समाणा** - ''समानाः इति जंघाबल परिक्षीणतयैकस्मिन्नेव क्षेत्रे तिष्ठन्तः'' अर्थात् जंघाबल के क्षीण हो जाने से जो एक ही स्थान पर रुके हुए हैं यानी स्थिरवास विराजित हैं, **वसमाणा** - ''वसमानाः-मासकल्प विहारिणः''-मास कल्प विहार करने वाले। अर्थात् अधिक से अधिक एक महीना रहने वाले।

संति तत्थेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसंति तंजहा-गाहावई वा, गाहावइणीओ वा, गाहावइपुत्ता वा, गाहावइधूयाओ वा, गाहावइसुण्हाओ वा, धाइओ वा, दासा वा, दासीओ वा, कम्मकरा वा, कम्मकरीओ वा, तहप्पगाराइं कुलाइं पुरेसंथुयाणि वा पच्छासंथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खायरियाए अणुपविसिस्सामि, अवि य इत्थ लभिस्सामि पिंडं वा, लोयं वा, खीरं वा, दहिं वा, णवणीयं वा, घयं वा, गुलं वा, तेल्लं वा, महुं वा, मज्जं वा, मंसं वा, संकुलिं वा, फाणियं वा, पूयं वा, सिहरिणिं वा तं पुव्वामेव भुच्चा पेच्चा पडिग्गहं संलिहिय संमज्जिय तओ पच्छा भिक्खूहिं सद्धिं गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसिस्सामि णिक्खमिस्सामि वा, माइट्ठाणं संफासे, तं णो एवं करिज्जा।

से तत्थ भिक्खूहिं सद्धिं कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिगाहित्ता आहारं आहारिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पुरेसंथया** - पूर्व परिचय वाले माता-पिता भाई भतीजे आदि, **पच्छा संथुया** - पश्चात् परिचय वाले सास श्वसुर आदि, **परिवसंति** - निवास करते हो, **पुव्वामेव**- पहले, **अणुपविसिस्सामि** - प्रवेश करूंगा, **अवि य इत्थ** - अथवा इन कुलों में, **लभिस्सामि**- प्राप्त करूँगा, **पिंडं**- अन्न शाल्यादि पिंड, **लोयं** - रस युक्त आहार, **खीरं** - दूध, **दहिं** - दही, **णवणीय** - नवनीत मक्खन, **घयं** - घृत, **गुलं** - गुड, **तेल्लं** - तेल, **महुं** - मधु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्जं - मद्य, **मंसं** - मांस, **संकुलिं** - जलेबी पुड़ी आदि, **फाणियं** - गुड़ का पानी, **पूयं** - पूवा आदि **सिहरिणिं** - श्री खंड आदि, **भुच्चा** - खा कर, **पेच्चा** - पीकर, **पडिग्गहं** - पात्र को **संलिहिय** - पोंछ कर, **संमज्जिय** - साफ कर, **तत्थ** - वह, **इयरेयरेहिं** - भिन्न-भिन्न, **कुलेहिं** - कुलों में।

भावार्थ - किसी गांव में साधु के पूर्व परिचित या पश्चात् परिचित सगे सम्बन्धी निवास करते हों जैसे-गृहस्थ, गृहस्थ की पत्नी, गृहस्थ के पुत्र, पुत्रियाँ, पुत्रवधू, धाय माताएं, दास-दासी कर्मचारी या कर्मचारिणियां हों, ऐसे गांव में पहुँच कर मुनि ऐसा विचार करे कि मैं इन कुलों में पहले भिक्षा के लिए प्रवेश करूंगा, वहाँ मुझे मन इच्छित अन्न, रस युक्त आहार दूध, दही, मक्खन, घी, गुड़, तेल, मधु, मद्य, मांस तिलपपडी जलेबी आदि, गुड़ का पानी, पूड़ी, बूंदी, श्री खंड आदि उत्तम भोजन मिलेगा, उस भोजन को पहले खा पीकर पात्रों को पोंछकर साफ कर रख दूंगा। तत्पश्चात् अन्य साधुओं के साथ आहार-पानी के लिये गृहस्थों के घरों में प्रवेश करूंगा। इस प्रकार का विचार करने से साधु दोष का पात्र होता है, उसे माया कपट का दोष लगता है एवं भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन होता है। अतः साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए।

साधु को चाहिए कि वह भिक्षा के समय अन्य साधुओं के साथ ही भिन्न-भिन्न कुलों से सामुदानिक भिक्षा ग्रहण करे और निर्दोष आहार का सेवन करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्थिरवास रहने वाले मुनियों के पास विहार करते हुए आए हुए अतिथि मुनियों के साथ उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका निर्देश किया गया है। साधु का कर्त्तव्य है कि वह नवागन्तुक मुनियों के साथ अभेद वृत्ति रखे उनके साथ किसी तरह का छल कपट नहीं करे।

प्रस्तुत सूत्र में उल्लिखित खाद्य पदार्थों में मद्य एवं मांस का भी उल्लेख किया गया है। इसका समाधान यह है कि दोनों पदार्थ अभक्ष्य होने के कारण सर्वथा अग्राह्य है। आगमों में जगह-जगह इसका स्पष्ट रूप से निषेध किया गया है। संभव है कि प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त उभय शब्द अन्य अर्थ के संसूचक हो।

वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि मद्य मांस की व्याख्या छेद सूत्र के अनुसार समझनी चाहिए। कोई अत्यधिक प्रमादी साधु पूर्व के संस्कारों के कारण अति गृद्धि एवं स्वाद आसक्ति के कारण इनका सेवन न करे, इसके लिए इसका उल्लेख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। प्रस्तुत सूत्र पाठ में आये हुए "**भिक्खागा**" शब्द से केवल भिक्षा से ही निर्वाह करने वाले गुण रहित साधु को बताया गया है। ये कदाचित् ऐसे पदार्थ ग्रहण भी कर सकते हैं परन्तु संयम निष्ठ मुनियों को तो ये पदार्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये। आगम में मांस के लिए तो एकान्त निषेध किया गया है किन्तु मद्य का एकान्त निषेध नहीं है। ज्ञातासूत्र अध्ययन ५ में आये हुए '**मज्जपाणगं**' शब्द से आसव, अरिष्ट आदि औषधियों को ग्रहण करना बताया है। निशीथ सूत्र के १९ वें अध्ययन में आये हुए '**वियड**' शब्द से भी औषधि आदि में इन द्रव्यों को लेने संबंधी कथन है। परिमाण से अधिक एवं निष्कारण लेने का वहाँ पर प्रायश्चित्त बताया है। ये वस्तुएं मद्य के ही रूपान्तर गिने जाते हैं। प्रसिद्ध मद्य आदि का तो वर्जन ही समझा जाता है। मधु (शहद) को तो औषधि के रूप में लेने की आगम में विधि बताई है।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ २४॥

॥ चउत्थो उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - यही संयम शील साधु साध्वियों का आचार है।

॥ प्रथम अध्ययन का चतुर्थ उद्देशक समाप्त॥

प्रथम अध्ययन का पांचवां उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा- अग्गपिंडं उक्खिप्पमाणं पेहाए अग्गपिंडं णिक्खिप्पमाणं पेहाए, अग्गपिंडं हीरमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभाइज्जमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभुंजमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिट्ठविज्जमाणं पेहाए पुरा असिणाइ वा, अवहाराइ वा, पुरा जत्थ अण्णे समण-माहण-अतिहि-किवण वणीमगा खद्धं खद्धं उवसंकमंति से हंता अहमवि खद्धं खद्धं उवसंकमामि माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा॥ २५॥

कठिन शब्दार्थ - **अग्गपिंडं** - अग्रपिंड को, **उक्खिप्पमाणं** - निकालते हुए को, **णिक्खिप्पमाणं**- अन्य स्थान पर रखते हुए को, **हीरमाणं** - ले जाते हुए को, **परिभाइज्जमाणं**-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बांटते हुए को, **परिभुंजमाणं** - खाते हुए को, **परिठविज्जमाणं** - परिष्ठापन करते, फैंकते हुए को, **पुरा असिणाइ** - पहले खा गये हों, **अवहाराइ** - प्राप्त कर रहे हों, **खद्धं खद्धं** - जल्दी-जल्दी, **उवसंकमंति**-आ रहे हों।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होकर ऐसा जाने कि- गृहस्थ के यहाँ तैयार हुए भोजन में से प्रारंभ में थोड़ा सा आहार देवता आदि के निमित्त निकाला हुआ ऐसे अग्रपिंड नाम के आहार को निकालते हुए, अन्य स्थान पर रखते हुए, ले जाते हुए, बांटते हुए, खाते हुए, इधर-उधर फैंकते हुए को देखकर तथा पहले श्रमणादि खा गए हैं, ग्रहण करके चले गए हैं या ऐसे अग्रपिंड को प्राप्त करने के लिए जल्दी-जल्दी जा रहे हों ऐसा देखकर कोई साधु सोचे कि उस आहार को प्राप्त करने के लिए मैं भी जल्दी-जल्दी जाऊँ तो वह दोषी बनता है, माया कपट का सेवन करता है अतः साधु को ऐसा विचार नहीं करना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु के लिए अग्र पिण्ड ग्रहण करने का निषेध किया गया है। भोजन तैयार हो जाने के बाद उसमें से कुछ हिस्सा पहले देवता, गाय, कुत्ते या कौएँ आदि के निमित्त से निकाला जाता हो, उसे 'अग्रपिंड' कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे अंतरा से वप्पाणि वा फलिहाणि वा पागाराणि वा तोरणाणि वा अग्गलाणि वा अग्गलपासगाणि वा सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमिज्जा णो उज्जुयं गच्छिज्जा। केवली बूया-आयाणमेयं॥

कठिन शब्दार्थ - **वप्पाणि** - टीला-ऊंचा नीचा भू भाग अथवा बीज बोने के लिए खेत में क्यारियाँ बनी हुई हो, **फलिहाणि** - खाई, **पागाराणि** - परकोट, **तोरणाणि** - तोरण, **अग्गलाणि** - अर्गला, **अग्गलपासगाणि वा** - अर्गलपाशक-आगल रखने का स्थान, **सइ परक्कमे** - अन्य मार्ग के होने पर, **परिक्कमिज्जा**-जावे, **उज्जुयं**-सीधे मार्ग से।

भावार्थ - साधु या साध्वी को भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में जाते समय मार्ग में ऊंचा नीचा भू भाग, खाई, परकोट, तोरण, अर्गला और अर्गलपाशक पड़ा हो तो दूसरा मार्ग होने पर साधु उस मार्ग से न जाए भले ही वह सीधा क्यों न हो, क्योंकि ऐसे मार्ग से जाने में गिरने, फिसलने या टकराने की संभावना रहती है और केवली भगवान् ने इसे कर्म बंध का कारण कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से तत्थ परक्कममाणे पयलिज्ज वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलिज्जमाणे वा पक्खलिज्जमाणे वा पवडिज्जमाणे वा तत्थ से काए उच्चारेण वा पासवणेण वा खेलेण वा सिंघाणेण वा वंतेण वा पित्तेण वा पूएण वा सुक्केण वा सोणिएण वा उवलित्ते सिया तहप्पगारं कायं णो अणंतरहियाए पुढवीए, णो ससिणिद्धाए पुढवीए, णो ससरक्खाए पुढवीए, णो चित्तमंताए सिलाए, णो चित्तमंताए लेलूए, कोलावासंसि वा दारुए, जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे जाव ससंताणए णो आमज्जिज्ज वा, पमज्जिज्ज वा, संलिहिज्ज वा, णिलिहिज्ज वा, उव्वलिज्ज वा, उव्वट्टिज्ज वा, आयाविज्ज वा, पयाविज्ज वा। से पुव्वामेव अप्पससरक्खं तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा जाइज्जा जाइत्ता से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे झामथंडिलंसि वा जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा॥ २६॥

कठिन शब्दार्थ - परक्कममाणे - जाता हुआ, **पयलिज्ज** - लडखडा जाय-कंपित हो जाय, **पक्खलिज्ज** - फिसल जाय, **पवडिज्ज** - गिर जाय, **पयलमाणे** - लडखड़ाता हुआ, **पक्खलिज्जमाणे** - फिसलता हुआ, **पवडिज्जमाणे** - गिरता हुआ, **उच्चारेण** - विष्ठा से, **पासवणेण** - मूत्र से, **खेलेण** - कफ से, **सिंघाणेण** - नाक के मेल से, **वंतेण** - वमन से, **पूएण** - राध से (पीव से), **सुक्केण**- शुक्र (वीर्य) से, **सोणिएण** - शोणित (रुधिर) से, **उवलित्ते** - उपलिप्त, **अणंतरहियाए** - सचित्त, **पुढवीए** - पृथ्वी से, **ससिणिद्धाए** - गीली मिट्टी से, **ससरक्खाए** - बारीक रज वाली मिट्टी से, **चित्तमंताए** - चेतना युक्त-सचित्त, **सिलाए** - शिला खंड से, **लेलूए** - ढेले से, **कोलावासंसि** - घुण से युक्त, **दारुए** - लकड़ी से, **जीवपइट्ठिए** - जीव प्रतिष्ठित-सूक्ष्म जीव जंतुओं से युक्त, **आमज्जिज्ज**- घिसे, **पमज्जिज्ज**- बार-बार पौंछे, **संलिहिज्ज** - कुरेदे, **णिलिहिज्ज** - निर्लेप करे, **उव्वलिज्ज**- झाड़े, **उव्वट्टिज्ज** - उखाड़े, उबटन की भांति मले, **आयाविज्ज** - धूप में सुखावें, **पयाविज्ज**- विशेष (पुनः -पुनः) धूप में सुखाए **अप्पससरक्खं** - सचित्त रज आदि से रहित, **तणं** - तृण, **पत्तं** - पत्ते, **कट्ठं** - लकड़ी, **सक्करं** - कंकर, **जाइज्जा** - याचना करे, **झामथंडिलंसि**- दग्ध स्थडिल भूमि में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पूर्वोक्त सीधे मार्ग से जाते हुए साधु कदाचित् फिसल जाय या गिर जाय जिससे उसका शरीर मल-मूत्र, श्लेष्म, नाक के मल, वमन, पित्त राध शुक्र या रुधिर से लिप्त हो जाय तो साधु अपने शरीर को सचित्त मिट्टी से, गीली मिट्टी से, बारीक़ कणों वाली मिट्टी से, सचित्त पत्थर या मिट्टी के ढेले से, अथवा सूक्ष्म जीव जंतुओं से युक्त लकड़ी आदि से शरीर को घिसे नहीं, मसले नहीं, पौंछे नहीं, साफ करे नहीं, कुरेदे नहीं, लेप रहित नहीं करे, धूप आदि से सुखावे नहीं, किन्तु वह साधु पहले सचित्त रज आदि से रहित घास पत्ते लकड़ी या कंकरादि की याचना करे। याचना करके एकान्त स्थान में जाकर के निर्जीव भूमि की प्रतिलेखना प्रमार्जना करके उस शरीर को स्वच्छ करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु विषम मार्ग का त्याग कर सममार्ग में यत्नापूर्वक गमन करे। यदि विवेक रखते हुए भी उसका पैर फिसल जाय और वह गिर पडे तो उसे अशुचि से लिपटे हुए अंगोपांगों को सचित्त मिट्टी आदि से साफ नहीं कर अचित्त काष्ठ कंकर की याचना करके एकान्त में चले जाना चाहिये और वहाँ अचित्त भूमि को देख कर जीव जंतु रहित अचित्त काष्ठ आदि के टुकड़े एवं अचित्त मिट्टी आदि से अशुचि को साफ करके फिर अपने शरीर को धूप में सुखा कर शुद्ध करना चाहिये।

मूल पाठ में '**अणंतरहियाए**' शब्द दिया है इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है -

'अनंतर्+हिता' (अनन्तर्हिता) जिसकी चेतना अन्तर्हित न हो-तिरोहित न हो अर्थात् जीव सहित-सचित्त। अनन्त+रहिता अर्थात् अनन्त निगोद भाव से रहित। क्योंकि पृथ्वीकाय में असंख्यात जीव होते हैं अनन्त नहीं। इसलिए इसका अभिप्राय यह हुआ कि अनन्त जीवों रहित अर्थात् असंख्यात जीवों वाली।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा गोणं वियालं पडिपहे पेहाए, महिसं वियालं पडिपहे पेहाए, एवं मणुस्सं आसं हत्थिं सीहं वग्घं विगं दीवियं अच्छं तरच्छं परिसरं सियालं विरालं सुणयं कोलसुणयं कोकंतियं चित्ताचिल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमिज्जा णो उज्जुयं गच्छिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - गोणं - बैल, **वियालं** - मदोन्मत्त, **महिसं** - भैंसे को, **पडिपहे** - मार्ग में, **आसं** - घोड़ा (अश्व), **हत्थिं** - हाथी को, **सीहं** - सिंह को, **वग्घं** - बाघ को,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विगं - भेड़िये को, **दीवियं** - द्वीपी-चीते को या गैंडे को, **अच्छं** - रींछ को, **तरच्छं** - तेंदुआ को, **परिसरं** - अष्टापद को, **सियालं** -श्रृगाल को, **विरालं** - बिलाव को, **सुणयं** - कुत्ते को, **कोलसुणयं** - सूअर को, **कोकंतियं** - लोमड़ी को, **चित्ताचिल्लडयं** - चित्ताचिल्लड़य-जंगली जानवर विशेष को, **वियालं** - सर्प को।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ जाते हुए मार्ग में मदोन्मत्त बैल, भैंसा, मनुष्य, अश्व, हाथी, सिंह, बाघ, भेड़िया, चीता, रीछ, दीपड़ा, अष्टापद, श्रृगाल, बिलाव, कुत्ता, शूकर, लोमडी या किसी प्रकार का हिंसक जानवर खड़ा देखे और अन्य मार्ग हो तो साधु ऐसे भय युक्त सीधे मार्ग से न जावे।

विवेचन - मदोन्मत्त बैल आदि एवं हिंसक जंतुओं से आत्म विराधना संभव है अतः ऐसे मार्ग से जाने का निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे अंतरा से ओवाए वा, खाणुए वा, कंटए वा, घसी वा, भिलुगा वा, विसमे वा, विज्जले वा परियावज्जिज्जा सइपरक्कमे संजयामेव णो उज्जुयं गच्छिज्जा॥ २७॥

कठिन शब्दार्थ - **ओवाए** - अवपात-खड्डा गड्ढा, **खाणुए** - स्थाणु-ठूंठ, **कंटए** - कांटे, **घसी**- ढलाव, **भिलुगा** - दरार, **विसमे** - विषम भूमि, **विज्जले** - कीचड़, **परियावज्जिज्जा** - छोड़ दे।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ जाते हुए मार्ग में गड्ढा, ठूंठ, कांटे, जमीन का ढलाव ऊंची-नीची भूमि और कीचड़ आदि हो तो अन्य मार्ग के होने पर साधु उस अन्य मार्ग से यत्नापूर्वक जावे किन्तु जो गड्ढे आदि वाला विषम, किन्तु सीधा मार्ग है, उससे न जावे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु को यतना एवं विवेक पूर्वक चलने का आदेश दिया है। गड्ढे आदि से युक्त मार्ग से जाने पर संयम की विराधना हो सकती है अतः मुनि को उस रास्ते से न जाकर अन्य रास्ते से जाना चाहिये, भले ही वह मार्ग लम्बा क्यों न हो?

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलस्स दुवारबाहं कंटगबोंदियाए, परिपिहियं पेहाए तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णविय अपडिलेहिय अप्पमज्जिय णो अवंगुणिज्ज वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुण्णविय पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव अवंगुणिज्ज वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा॥ २८॥

कठिन शब्दार्थ - **दुवारबाहं** - द्वार भाग को, **कंटगबुंदियाए** - कांटों की डालियों से, **परिपिहियं**- ढका हुआ, **उग्गहं** - आज्ञा, **अणणुण्णविय** - अयाचित-बिना आज्ञा मांगे, **अपडिलेहिय** - बिना देखे, **अपमज्जिय** - बिना पूंजे, **णो अवंगुणिज्ज** - उसे उघाडे (खोले) नहीं।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के द्वार को कांटों की डालियों से ढका हुआ देखकर गृहस्थ की आज्ञा लिये बिना, देखे बिना, प्रतिलेखन प्रमार्जन किये बिना उसे न खोले और प्रवेश करे और न ही निकले। पहले गृहस्वामी की आज्ञा लेवे, प्रतिलेखन प्रमार्जन करके यतना पूर्वक खोले, प्रवेश करे अथवा निकले।

विवेचन - गृहस्थ के बन्द द्वार को उसकी आज्ञा के बिना खोल कर अंदर जाने से कई दोष लगने की संभावना रहती है अतः साधु को घर के व्यक्ति की आज्ञा लिए बिना उसके घर के दरवाजे को खोल कर अन्दर नहीं जाना चाहिए और न निकलना चाहिए।

उपर्युक्त सूत्र में कांटे वाले दरवाजे का वर्णन किया गया है। दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशक प्रथम की अट्ठारहवीं गाथा में अन्य भी किसी भी प्रकार के द्वारों (चूलिया वाले एवं जीव विराधना वाले द्वारों को छोड़ कर) को मालिक की आज्ञा लेकर खोलना कल्पनीय बताया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए णो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठिज्जा, केवली बूया आयाणमेयं॥

कठिन शब्दार्थ - **गामपिंडोलगं** - ग्राम के याचक को, **संलोए** - जहाँ दृष्टि पडती हो, **सपडिदुवारे** - बिलकुल ठीक सामने।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ जाते हुए गृहस्थ के घर पर भिक्षु, ब्राह्मण, याचक या अतिथि को पहले से ही प्रवेश किया हुआ देखकर उनके सामने अथवा निर्गम द्वार पर खड़ा नहीं रहे क्योंकि-इस प्रकार खड़े रहने को केवली भगवान् ने कर्म बंध का कारण कहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरा पेहाए तस्सट्ठाए परो असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु दलइज्जा अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पडिण्णा, एस हेउ एस उवएसो जं णो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठिज्जा से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अणावाय मसंलोए चिट्ठिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिण्णा** - प्रतिज्ञा, **हेउ** - हेतु, **उवएसो** - उपदेश, **अणावायं** - जहाँ किसी का आवागमन न हो, **असंलोए** - किसी की दृष्टि न पडती हो, **तं** - उसको, **आयाय** - जान कर।

भावार्थ - वहाँ खड़े उस साधु को देखकर गृहस्थ अशनादि आहार लाकर देगा अतः पूर्वोक्त कथन के अनुसार ऐसी प्रतिज्ञा ऐसा हेतु और ऐसा उपदेश आवश्यक है कि पूर्व में खडे याचकों को जानकर साधु ऐसी जगह खड़ा रहे जहाँ किसी का आवागमन न हो और जहाँ किसी की दृष्टि भी न पड़ती हो।

विवेचन - उन भिक्षुकों के सामने खड़ा रहने पर गृहस्थ साधु को देख कर उसे पहले भिक्षा देगा ऐसी स्थिति में उन भिक्षाचरों के भिक्षा में अन्तराय पडेगी इसलिए उनके सामने खड़ा न रहे।

से परो अणावाय मसंलोए चिट्ठमाणस्स असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहट्टु दलइज्जा से य एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! इमे भे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, सव्वजणाए णिसिट्ठे तं भुंजह वा णं, परिभाएह वा णं, तं चेगइओ पडिग्गाहित्ता तुसिणीओ उवेहिज्जा, अवियाइं एयं ममेव सिया माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा, से तमायाय तत्थ गच्छित्ता गच्छिज्जा से पुव्वामेव आलोइज्जा "आउसंतो समणा ! इमे भे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा सव्वजणाए णिसिट्ठे तं भुंजह वा णं परिभाएह वा णं सेणमेवं वयंतं परो वइज्जा आउसंतो समणा! तुमं चेव णं परिभाएंहि से तत्थ परिभाएमाणे णो अप्पणो खद्धं खद्धं डायं डायं ऊसढं ऊसढं रसियं रसियं मणुण्णं मणुण्णं णिद्धं णिद्धं लुक्खं लुक्खं से तत्थ अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बहुसममेव परिभाइज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आउसंतो समणा!** - हे आयुष्यमंत श्रमणो!, **सव्वजणाए** - सभी के लिए **णिसिट्ठे** - दिया है, **भुंजह** - खाओ, **परिभाएह** - बांट लो, **तुसिणीओ** - मौन रह कर, **उवेहिज्जा** - उत्प्रेक्षा-विचार करे, **ममं** - मेरे, **एव** - ही, **सिया** - होवे, **आलोइज्जा** - आहार दिखाकर कहे, **तुमं** - तुम, **च** - और, **एव** - ही, **परिभाएमाणे** - विभाग करता हुआ, **खद्धं** - प्रचुर, **डायं** - शाक, **णिद्धं** - स्निग्ध, **ऊसढं**- वर्णादि गुणों से युक्त, **रसियं** - रस युक्त, **मणुण्णं** - मनोज्ञ, **लुक्खं** - रूक्ष आहार, **अमुच्छिए** - मूर्छा रहित, **अगिद्धे** - गृद्धि भाव रहित, **अगढिए** - आसक्ति भाव रहित (विशिष्ट गृद्धिपन रहित), **अणज्झोववण्णे** - लोलुपता रहित, **बहुसमं** - बिलकुल समान रूप से, **एव** - ही, **परिभाइज्जा** - विभाग करे।

भावार्थ - ऐसे स्थान पर खड़े साधु को गृहस्थ अशनादिक आहार लाकर देवे और कहे कि - हे आयुष्यमन् श्रमणो! यह आहार मैंने आप सब के लिए दिया है इसे आप सब खा लें या बांट लें। गृहस्थ द्वारा दिये जाने वाले उस आहार को चुपचाप ग्रहण कर साधु मन में विचार करे कि-यह आहार मुझे दिया गया है, मेरे लिए ही है तो उसे माया कपट का स्पर्श होता है अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिये। अपितु ऐसे आहार को लेकर अन्य श्रमणादि के पास जाए और पहले ही इस प्रकार कहे कि- हे आयुष्मन् श्रमणो! यह आहार हम सबको सम्मिलित रूप से मिला है अतः इसे मिल कर खा लो या आपस में बांट लो। ऐसा कहते हुए उस साधु को यदि अन्य भिक्षु इस प्रकार कहे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! तुम स्वयं ही इस आहार का विभाजन कर दो, तो वह साधु भोजन का विभाग करते हुए अपने लिए प्रचुर शाक भाजी स्वादिष्ट या उत्तम-उत्तम, रस युक्त (सरस), मनोज्ञ, स्निग्ध पदार्थ या रूक्ष (चणां पापड़ आदि) आहार न रखे। किन्तु वह साधु मूर्छा आसक्ति, गृद्धिपन और सर्व प्रकार की लोलुपता का त्याग करता हुआ सबके लिए समान विभाग करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र दुर्भिक्ष आदि विषम परिस्थिति जन्य है, ऐसा पूज्य गुरुदेव फरमाते थे। सूत्र में ही श्रमण (निर्ग्रन्थ, बौद्ध, तापस, गेरिक एवं आजीवक इन पाँच प्रकार के साधुओं को श्रमण शब्द से ग्रहण किया जाता है) ब्राह्मण, ग्रामपिण्डोलक और अतिथि शब्द तो आया ही है। अतः एकांत जैन साधु के लिए यह सूत्र समझना कैसे संगत हो सकता है? जैन साधु एवं साम्भोगिक साधु भी इस पाठ में सम्मिलित आ जाते हैं। पाठ से स्पष्ट है कि सभी प्रकार के व्यक्ति वहाँ हो, यह आवश्यक नहीं है। सभी के लिए समान विधि होने से साथ में सभी के नाम बता दिये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधु को अनापात, असंलोक स्थान में खड़ा देख कर बाहर से आने वाले गृह मालिक ने जो उधर से द्वार आदि खोल कर घर में गया तो दूसरे द्वार पर अन्य भिक्षाचर को (श्रमण आदि में से कोई) देख कर इन्हें अनुभवी आदि समझ कर इनको आहार देने के लिए आता है। कुल की मर्यादित भूमि का ध्यान रखते हुए एवं जहाँ खड़े हैं वहाँ से पूर्ण गवेषणा होने से एवं दुर्भिक्ष आदि की स्थिति होने के कारण दाता उन्हें नहीं देकर मुझे ही देना चाहता है, ऐसा समझ कर मुनि ग्रहण कर लेते हैं। बाद में दाता के द्वारा सब के लिए दिया है, ऐसा कहे जाने पर वह भोजन सार्वजनिक हो जाने से अकेला खाने पर अदत्त लगने की स्थिति होने से ही आगमकार विधि बताते हैं। यदि दूसरे साम्भोगिक या समनोज्ञ साधु हो तो उनसे निवेदन करे कि यह भोजन दाता ने अपन सब को दिया है। अतः आप चाहे तो बांट ले अथवा साथ में ही करे, आगे आगमकार बांटने एवं साथ खाने की विधि बताते हैं। "**बहुसममेव**" अर्थात् बांटने में या खाने में "बराबर" का पूरा ध्यान रखे। अन्यथा अविधि होकर संयम में दोष लग सकता है। यदि पार्श्वस्थादि एवं अन्यतीर्थिक होने पर खुद की आचार विधि नहीं होने से वह बांटने का ही निवेदन करता है, साथ में खाने का नहीं, क्योंकि साथ में खाना तो दोनों की इच्छा पर ही निर्भर रहता है। एक की भी इच्छा नहीं होने पर साथ में नहीं खाया जाता है। उनके द्वारा साथ में खाने का कहे जाने पर भी वह ना दे देता है।

अपना विभाग अन्यतीर्थिक एवं अन्य साम्भोगिकों को देने की विधि नहीं होने से एवं उन्हें बिना बताये अदत्त लगने से आगमकारों ने यह विधि बताई है। इस सूत्र का ऐसा विवेचन पूज्य गुरुदेव फरमाते थे।

से णं परिभाएमाणं परो वइज्जा-आउसंतो समणा! मा णं तुमं परिभाएहि सव्वे वेगइया ठिया उ भुक्खामो वा पाहामो वा से तत्थ भुंजमाणे णो अप्पणा खद्धं खद्धं जाव लुक्खं लुक्खं से तत्थ अमुच्छिए, अगिद्धे, अगढिए, अणज्झोववण्णे बहुसममेव भुंजिज्जा वा पाइज्जा वा॥ २९॥

भावार्थ- यदि विभाग करते हुए कोई परिव्राजक आदि इस प्रकार कहे कि - हे आयुष्मन् श्रमण! तुम इस आहार का विभाजन मत करो, अपन सब एक ही स्थान पर बैठकर इसे खा लेंगे और पी लेंगे तब वह साधु वहां आहार करता हुआ स्वादिष्ट-स्वादिष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या उत्तम-उत्तम भोजन स्वयं नहीं खाता हुआ गृद्धि, मूर्छा और आसक्ति भाव का त्याग करता हुआ समभाव से, सामान्य रूप से खावे और पीवे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा-समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए णो ते उवाइकम्म पविसिज्ज वा ओभासिज्ज वा से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा-पडिसेहिए वा दिण्णे वा तओ तंमि णियट्टिए संजयामेव पविसिज्ज वा ओभासिज्ज वा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ३०॥

॥ पंचमो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ - **उवाइकम्म** - अतिक्रम (उल्लंघन) करके, लांघ करके, **ओभासिज्ज**- याचना करे, **पडिसेहिए** - प्रतिषेध कर दिया हो, आहार आदि दिये बिना घर से निकाल दिया हो **णियट्टिए** - लौट जाने के बाद।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रवेश करते हुए, अपने से पूर्व प्रविष्ट श्रमण, ब्राह्मण, भिखारी या अतिथि को खड़ा देखकर उन्हें लांघकर (उल्लंघन कर) घर में प्रवेश न करे और न ही दाता से आहारादि की याचना करे किन्तु गमनागमन रहित एकान्त स्थान में जाकर खड़ा हो जाय। जब वह यह जान ले कि गृहस्थ ने भिक्षा देकर या बिना दिये ही उनको घर से निकाल दिया है तो उनके निकल जाने पर साधु साध्वी यतनापूर्वक उस घर में प्रवेश कर सकता है और आहारादि की याचना कर सकता है।

यही संयमशील साधु साध्वियों का समग्र आचार है। ऐसा मैं कहता हूं।

॥ प्रथम अध्ययन का पांचवां उद्देशक समाप्त॥

प्रथम अध्ययन का छठा उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा-रसेसिणो बहवे पाणा घासेसणाए संथडे सण्णिवइए पेहाए तं जहा-कुक्कुडजाइयं वा, सूयरजाइयं वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अग्गपिंडंसि वा वायसा संथडा सण्णिवइया पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमिज्जा णो उज्जुयं गच्छिज्जा॥ ३१॥

कठिन शब्दार्थ - **रसेसिणो** - रस की गवेषणा करने वाले, आहार के अभिलाषी, **घासेसणाए** - आहार के लिए, **संथडे** - एकत्रित हुए, **सण्णिवइए** - मार्ग में बैठे हुए, **कुक्कुडजाइयं** - कुक्कुट जाति के जीव, **सूयरजाइयं** - सूअर जाति के जीव, **अग्गपिंडंसि**- अग्र पिंड पर, **वायसा** - कौएं।

भावार्थ - साधु साध्वी को भिक्षार्थ जाते हुए मार्ग में आहार प्राप्ति की अभिलाषा से बहुत से प्राणी जैसे कुक्कुट जाति के द्विपद पक्षी या सूअर जाति के चतुष्पद पशु। अग्रपिंड को खाने के लिए कौएं आदि एकत्रित होकर बैठे हुए हों तो साधु साध्वी उन्हें देखकर अन्य मार्ग के होते हुए, प्राणियों को भय और अंतराय उत्पन्न करने वाले ऐसे सीधे मार्ग से न जाय।

विवेचन - ऐसे मार्ग से जाने पर मुनि को देखकर वे पशु पक्षी भय के कारण इधर उधर भाग जाएंगे या उड़ जाएंगे। इससे उन्हें प्राप्त होने वाले भोजन में अंतराय पडेगी और साधु के निमित्त उनके उड़ने या भागने से वायुकायिक जीवों एवं अन्य प्राणियों की अयतना (हिंसा) होगी। अतः साधु को अन्य मार्ग के होते हुए ऐसे मार्ग से नहीं जाना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे णो गाहावइकुलस्स वा दुवारसाहं अवलंबिय अवलंबिय चिट्ठिज्जा, णो गाहावइकुलस्स दगच्छडुणमत्तए चिट्ठिज्जा, णो गाहावइकुलस्स चंदणिउयए चिट्ठिज्जा, णो गाहावइकुलस्स सिणाणस्स वा, वच्चस्स वा, संलोए सपडिदुवारे चिट्ठिज्जा णो गाहावइकुलस्स आलोयं वा, थिग्गलं वा, संधिं वा, दगभवणं वा, बाहाउ पगिज्झिय पगिज्झिय अंगुलियाए वा उद्दिसिय उद्दिसिय उण्णमिय उण्णमिय अवणमिय अवणमिय णिज्झाइज्जा णो गाहावइं अंगुलियाए उद्दिसिय उद्दिसिय जाइज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए चालिय चालिय जाइज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए तज्जिय तज्जिय जाइज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए उक्खुलंपिय उक्खुलंपिय जाइज्जा, णो गाहावइं वंदिय वंदिय जाइज्जा, णो वयणं फरुसं वइज्जा॥ ३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अवलंबिय** - सहारा लेकर, **दगच्छड्डुणमत्तए** - बर्तन धोने का पानी डालने के स्थान पर, **चंदणिउयए** - कुल्ला करने के स्थान पर, **सिणाणस्स** - स्नानगृह के, **वच्चस्स** - पाखाना के, **आलोयं** - खिडकी गवाक्ष छिद्र आदि को, **थिग्गलं** - गिरे हुए और फिर मरम्मत किये हुए भाग को, **संधिं** - सेंध को, **दगभवणं** - जलगृह को, **बाहाउ** - भुजाओं को, **पगिज्झिय** - पसार कर (फैला कर), **अंगुलियाए** - अंगुली से, **उद्दिसिय** - उद्देश कर, ईशारा करके **उण्णमिय** - शरीर को ऊंचा कर **अवणमिय** - नीचा करके, **णो णिज्झाइज्जा** - न तो देखे और न दिखाए, **णो जाइज्जा** - याचना न करे, **चालिय** - बता कर, **तज्जिय** - तर्जना करके, **उक्खुलंपिय** - स्पर्श करके-खुजाकर, **फरुसं**- कठोर, **वयणं** - वचन।

भावार्थ - भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु साध्वी घर के द्वार को पकड कर, सहारा लेकर खड़ा नहीं रहे, जहां बर्तनों को धोकर पानी गिराया जाता हो ऐसे स्थान पर खड़ा न हो, कुल्ला करने के स्थान पर खड़ा न रहे, जहां स्नानघर, पाखाना (शौचालय) हो वहां एवं उसके सामने खड़ा नहीं रहे और गृहस्थ के घर की खिड़कियों को, झरोखों को, गिरे हुए और फिर मरम्मत कराये हुए भाग को, सेंध को तथा जलगृह को हाथ फैलाकर या उंगली आदि से इशारा करके अथवा शरीर को ऊंचा-नीचा करके न तो स्वयं देखे और न ही किसी को दिखावे। गृहस्थ को बार-बार अंगुली से निर्देश करके, अंगुली चलाकर (बताकर), तर्जना करके (भय दिखाकर) शरीर का स्पर्श करके अंगों को खुजलाकर या गृहस्थ की प्रशंसा आदि करके आहारादि की याचना न करे। यदि कदाचित् गृहस्थ आहार न देवे तो भी उसे कठोर वचन नहीं कहे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट मुनि को चंचलता एवं चपलता का त्याग करके स्थिर दृष्टि से खडे रहना चाहिये और भिक्षा ग्रहण करते समय रस लोलुपता के कारण किसी भी तरह की शारीरिक चेष्टाएं एवं संकेत नहीं करने चाहिए। यदि कोई गृहस्थ आहार नहीं दे तो साधु को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिये और न ही उसे कटु एवं कठोर वचन कहना चाहिये।

अह तत्थ कंचि भुंजमाणं पेहाए गाहावइं वा जाव कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसो त्ति वा, भइणि त्ति वा, दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं भोयण जायं? से सेवं वयंतस्स परो हत्थं वा, मत्तं वा, दव्विं वा, भायणं वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलिज्ज वा, पहोइज्ज वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसो त्ति वा, भइणि त्ति वा मा एयं तुमं हत्थं वा, मत्तं वा, दव्विं वा, भायणं वा, सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेहि वा, पहोएहि वा अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलाहि। से सेवं वयंतस्स परो हत्थं वा मत्तं वा, दव्विं वा, भायणं वा, सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलित्ता पहोइत्ता आहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारेण पुरेकम्मएणं हत्थेण वा, मत्तेणं वा, दव्विएण वा, भायणेण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहिज्जा।

अह पुण एवं जाणिज्जा णो पुरेकम्मएणं उदउल्लेणं तहप्पगारेणं वा उदउल्लेण (ससिणिद्धेण) वा हत्थेण वा मत्तेणं वा, दव्विएण वा, भायणेण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा - णो उदउल्लेण ससिणिद्धेण सेसं तं चेव। एवं ससरक्खे उदउल्ले मट्टिया ऊसे। हरियाले हिंगुलए मणोसिला अंजणे लोणे॥ १॥ गेरुय वण्णिय सेढिय सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस उक्किट्ठसंसट्ठेण। अह पुण एवं जाणिज्जा णो असंसट्ठे संसट्ठे तहप्पगारेण संसट्ठेण हत्थेण वा मत्तेणं वा, दव्विएण वा, भायणेण वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा फासुयं जाव पडिगाहिज्जा॥ ३३॥

कठिन शब्दार्थ - **हत्थं** - हाथ को, **मत्तं** - पात्र को, **दव्विं** - दर्वी-कुड़छी को, **भायणं** - भाजन को, **सीओदगवियडेण** - ठंडे जल से, **उसिणोदगवियडेण** - गर्म जल से, **उच्छोलिज्ज** - धोवे, **पहोइज्ज** - बार-बार धोवे, **मे** - मुझे, **दाउं** - देना, **अभिकंखसि**- चाहते हो तो **पुरेकम्मएणं** - पूर्व कर्म से, **उदउल्लेण** - जल से गीले, **ससिणिद्धेण** - स्निग्ध हाथ आदि से **ससरक्खे**- सचित्त रज कण युक्त, **मट्टिया** - सचित्त मिट्टी, **हरियाले** - हडताल, **ऊसे** - क्षार, **हिंगुलए** - हिंगलु (शिंगरफ), **मणोसिला** - मैनसिल (मनःशिला), **अंजणे** - अंजन, **लोणे** - लवण (नमक), **गेरुए** - गेरु, **वण्णिय**- पीली मिट्टी, **सेढिय** - खडिया-सफेद मिट्टी, **सोरट्ठिय** - फिटकरी, **पिट्ठ** - बिना छाना हुआ चूर्ण ताजा आटा या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताजा कूटा हुआ चावलादि का आटा **कुक्कुस** - कुक्कुस-चूर्ण, **उक्किट्ठसंसट्ठेण** - गीली सचित्त वनस्पति के चूर्ण या फलों के बारीक टुकडों से भरे हुए हाथों से, **असंसट्ठे** - सचित्त पदार्थों से हाथ भरे हुए नहीं है **संसट्ठे** - संस्पृष्ट-अचित्त पदार्थ से हाथ भरे हुए हैं।

भावार्थ - भिक्षार्थ गया हुआ साधु साध्वी यदि किसी व्यक्ति को भोजन करते हुए देखकर मन में सोच विचार कर पहले इस प्रकार कहे - हे आयुष्मन् या आयुष्यमति ! तुम इस भोजन में से कुछ आहार मुझे दोगे? इस प्रकार कहते हुए मुनि को जानकर गृहस्थ अपने हाथ को, पात्र (थाली आदि) को अथवा कुडछी आदि अन्य किसी बर्तन विशेष को सचित्त ठंडे या हल्के गर्म जल से धोने लगे तो ऐसा करने से पूर्व ही साधु उसे देखकर कहे कि हे आयुष्मन् ! तुम अपने हाथ बर्तन आदि को इस तरह मत धोओ। यदि तुम मुझे देना चाहो तो यों ही दे दो। साधु के ऐसा कहने पर भी वह गृहस्थ हाथ पात्रादि को ठंडे या गर्म जल से धोकर या विशेष रूप से धोकर आहार देने लगे तो इस प्रकार के पूर्वकर्म वाले गीले हाथ, पात्रादि से अशनादि लेना अप्रासुक और अनेषणीय है, ऐसा जानकर प्राप्त होते हुए आहार को भी ग्रहण न करे।

कदाचित् साधु ऐसा जाने कि गृहस्थ ने भिक्षा देने के लिए नहीं परन्तु किसी अन्य कारण से हाथ पात्रादि को धोया है जिससे दाता के हाथ पात्रादि पानी से गीले हैं फिर भी इस प्रकार लाकर दिये जाने वाले आहार को साधु अप्रासुक होने से ग्रहण न करे और यदि गृहस्थ के हाथ पात्रादि पानी से गीले नहीं हो अर्थात् उनसे पानी की बूंदे न गिर रही हो किन्तु जल से कुछ गीले हो, सचित्त रज, जल, सचित्त मिट्टी, क्षार, हडताल हिंगलु, मैनसिल, अंजन, नमक, गेरु पीली मिट्टी, सफेद मिट्टी, फिटकड़ी, ताजा आटा या बिना छाना हुआ चावलादि का आटा, कुक्कुस चूर्ण, सचित्त पत्तों आदि के चूर्ण से हाथ पात्रादि भरे हुए हों (स्पर्शित हों) तो भी इस प्रकार से दिया जाने वाला आहार आदि को अप्रासुक और अनेषणीय समझ कर ग्रहण न करे।

साधु अगर ऐसा जाने कि गृहस्थ के हाथ पात्रादि सचित्त पदार्थों से स्पर्शित नहीं है किन्तु जो आहार साधु को देना चाहता है उन्हीं अचित पदार्थों से हाथ पात्रादि भरे हुए हैं, अचित्त पदार्थों से ही स्पर्श हो रहा है तो ऐसे हाथ पात्र आदि से दिये जाने वाले अशनादि आहार को साधु प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि गीले हाथों से या गीले पात्र से दिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने वाला आहार अप्रासुक होने के कारण साधु साध्वी ग्रहण न करे। इसी प्रकार सचित्त रज, मिट्टी, खार आदि से हाथ या पात्र भरे हों तो भी उन हाथों से या पात्र से साधु आहार ग्रहण न करे। यदि किसी गृहस्थ ने सचित्त जल से हाथ या पात्र नहीं धोए हैं और उसके हाथ या पात्र गीले भी नहीं है या अन्य सचित्त पदार्थों से संस्पृष्ट नहीं है तो ऐसे प्रासुक एवं एषणीय आहार को साधु ग्रहण कर सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा पिहुयं वा बहुरयं वा जाव चाउलपलंबं वा असंजए भिक्खुपडियाए चित्तमंताए सिलाए जाव ससंताणाए कुट्टिंसु वा, कुट्टंति वा, कुट्टिस्संति वा, उप्फणिंसु वा, उप्फणंति वा, उप्फणिस्संति वा तहप्पगारं पिहुयं वा चाउलपलंबं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ३४॥

कठिन शब्दार्थ - **कुट्टिंसु** - कूटा है, **उप्फणिंसु** - हवा में उफना है, **उप्फणंति** - उफनते हैं, **उप्फणिस्संति** - उफनेंगे।

भावार्थ - साधु या साध्वी ऐसा जाने कि असंयमी गृहस्थ ने साधु के निमित्त से पौहा, मुरमुरा, पहुंक और चावलों के दानों आदि को सचित्त या बीज वाली, वनस्पति वाली, कीडी, मकोडी, ओस वाली सचित्त जल या मिट्टी वाली सूक्ष्म जीव जंतु वाली, शिला पर कूटा है, कूट रहा है या कूटेगा अथवा भूसे को पृथक् करने के लिए हवा में उफना है, उफन रहा है या उफनेगा तो साधु ऐसे चावल पोहे आदि को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र का तात्पर्य यह है कि सचित्त अनाज एवं वनस्पति आदि तो साधु को किसी भी स्थिति में ग्रहण नहीं करनी चाहिये चाहे वह सचित्त शिला पर कूट-पीस कर या वायु में झटक कर दी जाय या कूटने झटकने की क्रिया किए बिना ही दी जाए। इसके अलावा यदि अचित्त अन्न के दाने, वनस्पति या बीज सचित्त शिला पर कूट-पीस कर या वायु में झटक कर दिए जाएं तो भी साधु ग्रहण नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा-बिलं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं, असंजए भिक्खुपडियाए चित्तमंताए सिलाए जाव संताणाए भिंदिंसु वा भिंदंति वा भिंदिस्संति वा रुचिंसु वा रुचंति वा रुचिस्संति वा बिलं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **बिलं लोणं** - खान से निकलने वाले नमक को, **उब्भियं लोणं** - खारे पानी से बनाये हुए नमक को, **भिंदिंसु** - भेदन किया है (फोडा है) **भिंदंति** - भेदन करते हैं, **भिंदिस्संति** - भेदन करेंगे, **रुचिंसु** - पीसा है, **रुचंति** - पीसते हैं, **रुचिस्संति** - पीसेंगे।

भावार्थ - साधु या साध्वी अगर ऐसा जाने कि-असंयमी गृहस्थ ने साधु के निमित्त से खान से निकलने वाले नमक, खारे पानी से तैयार किये जाने वाले नमक या अन्य किसी प्रकार के नमक को सचित्त यावत् जीव जंतुओं से युक्त शिला पर फोड़ा है, फोडता है या फोडेगा, पीसा है, पीसता है या पीसेगा तो साधु ऐसे दिये जाने वाले पदार्थ को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि आहार ग्रहण करते समय साधु को पृथ्वीकायिक जीवों की किस प्रकार यतना करनी चाहिये? साधु किसी भी प्रकार का सचित्त नमक (लवण) ग्रहण नहीं करे। 'लवण' शब्द से यहाँ उपलक्षण से समस्त सचित्त पृथ्वीकाय का ग्रहण किया गया है। अतः संयमशील साधु को पृथ्वीकायिक जीवों की विराधना हो, ऐसे पदार्थ ग्रहण नहीं करने चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र में आये हुए दोनों प्रकार के नमक को अचित्त नमक समझना चाहिये। दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन में इन दोनों प्रकार के नमक की सन्निधि करने का निषेध किया है, ग्रहण करने का नहीं। दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन की आठवीं गाथा में आये हुए नमक के प्रकारों को सचित्त नमक समझा जाता है। आचारांग सूत्र के इसी अध्ययन के दसवें उद्देशक में इन्हीं दो अचित्त नमक को भूल से ग्रहण हो जाने पर खाने आदि की विधि बताई है। यहाँ पर ये दोनों नमक अचित्त होने पर भी भेदन, पीसना आदि करके देने से अयतना होने के कारण ग्रहण करने का निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अगणिणिक्खत्तं तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा। केवली बूया-आयाणमेयं असंजए भिक्खुपडियाए उस्सिंचमाणे णिस्सिंचमाणे वा आमज्जमाणे वा पमज्जमाणे वा ओयारेमाणे वा उव्वत्तमाणे वा अगणिजीवे हिंसिज्जा अह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अगणिणिक्खत्तं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ३६॥

॥ छट्ठो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **अगणिणिक्खत्तं** - अग्नि पर रखा हुआ, **उस्सिंचमाणे** - निकालता हुआ, **णिस्सिंचमाणे** - डालता हुआ, **आमज्जमाणे** - साफ करता हुआ, हाथ आदि से पौंछता हुआ, **पमज्जमाणे**- विशेष रूप से साफ करता हुआ, **ओयारेमाणे** - उतारता हुआ, **उव्वत्तमाणे** - बर्त्तन को आड़ा टेढ़ा करता हुआ, **अगणिजीवे** - अग्नि काय के जीवों की, **हिंसिज्जा** - हिंसा होती है।

भावार्थ - भिक्षार्थ गया हुआ साधु साध्वी यह जाने कि अशनादि आहार अग्नि पर रखा हुआ है तो ऐसे आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे। क्योंकि केवली भगवान् ने इसको कर्मबंध का कारण कहा है। असंयमी गृहस्थ साधु के निमित्त से अग्नि पर पडे हुए आहार में से कुछ आहार निकालता हो, डालता हो, पात्रादि को साफ करता हो हाथ से पौंछता हो, विशेष रूप से साफ करता हो, पात्र को अग्नि से नीचा उतारता हो या आडा-टेढा करता हो तो ऐसी क्रियाओं से अग्नि काय के जीवों की हिंसा होती है। अतः संयमी मुनियों की यह प्रतिज्ञा है, यही हेतु है, यही कारण है और यह उपदेश है कि अग्नि पर रक्खे हुए अशनादि आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

यही संयमी निर्ग्रन्थों का पवित्र आचार है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आहार ग्रहण करते समय अग्निकायिक जीवों की किस प्रकार यतना करनी चाहिये, इसका उल्लेख किया गया है। अग्निकाय के जीवों का आरंभ करके दिया जाने वाला आहार अप्रासुक और अनेषणीय होने के कारण साधु ग्रहण नहीं करे।

॥ प्रथम अध्ययन का छठा उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन का सातवाँ उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, खंधंसि वा थंभंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मियतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि उवणिक्खित्त सिया तहप्पगारं मालोहडं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा, केवली बूया-आयाणमेयं।

असंजए भिक्खुपडियाए पीढं वा फलगं वा णिस्सेणिं वा उदूहलं वा आहट्टु उस्सविय दुरुहिज्जा, से तत्थ दुरुहमाणे पयलिज्ज वा पवडिज्ज वा से तत्थ पयलमाणे वा पवडेमाणे वा हत्थं वा पायं वा बाहुं वा उरुं वा उदरं वा सीसं वा अण्णयरं वा कायंसि इंदियजालं लूसिज्ज वा पाणाणि वा जाव सत्ताणि वा अभिहणिज्ज वा वत्तिज्ज वा लेसिज्ज वा संघसिज्ज वा संघट्टिज्ज वा परियाविज्ज वा किलामिज्ज वा ठाणाओ ठाणं संकामिज्ज वा तं तहप्पगारं मालोहडं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥ ३७॥

कठिन शब्दार्थ - **खंधंसि** - दीवार पर, **थंभंसि** - स्तंभ-खंभे पर, **मंचंसि**- मचान पर, **मालंसि** - माले पर, **पासायंसि** - महल पर रखा हुआ, **हम्मियतलंसि** - हवेली की छत पर, **अंतलिक्खजायंसि** - अंतरिक्षजात में ऐसा ऊँचा स्थान जहाँ पर सीढ़ी आदि लगाकर चढ़ा या उतरा जाता हो, **मालोहडं** - ऊंचे स्थानों से उतार कर दिये जाने वाला, **उवणिक्खित्तं** - रखा हुआ, **पीढं** - पीठ चौकी बाजौट आदि को, **फलगं** - पटिया आदि, **णिस्सेणिं** - निसरणी को, **उदूहलं** - ऊखल को, **उस्सविय** - ऊंचा करके, **दुरुहिज्जा** - चढे, **पयलिज्ज** - फिसल जाय, **पवडिज्ज**- गिर पडे, **हत्थं** - हाथ, **पायं** - पैर, **बाहुं** - भुजा, **उरुं** - साथल-जांघ, **उदरं** - पेट, **सीसं** - सिर, **अण्णयरंसि वा कायंसि** - अथवा शरीर के किसी अन्य **इंदिय जालं** - इन्द्रिय विशेष को, **लूसिज्ज** - चोट पहुँचे या टूट जाय, **अभिहणिज्ज** - हनन हो, **वत्तिज्ज** - त्रास दे, **लेसिज्ज** - संश्लिष्ट करे, **संघसिज्ज** - संघर्षित करे, **संघट्टिज्ज** - संघट्टा करे, **परियाविज्ज** - परितापना दे, **किलामिज्ज** - कष्ट पहुंचावें।

भावार्थ - गृहस्थ के घर भिक्षार्थ गये हुए साधु या साध्वी को ऐसा मालूम हो कि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अशनादि आहार दीवार पर, खंभे पर, मचान पर, माले पर, प्रासाद पर, हवेली की छत पर, ऊँची मंजिल पर या इसी तरह के किसी अन्य ऊँचे स्थान पर रखा हुआ है और वहाँ से लाकर गृहस्थ देने लगे तो ऐसे आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर साधु ग्रहण नहीं करे क्योंकि केवली भगवान् ने इसे कर्म बंध का कारण कहा है।

असंयमी गृहस्थ साधु के निमित्त से पाट बाजौट पटिया निसरणी या ऊखल को लाकर और उसे ऊंचा करके ऊपर चढ़े और चढते हुए वहाँ से फिसल जाय या गिर पडे तो उसके हाथ, पांव, बाहु (भुजाएं) जांघ, उदर मस्तक या शरीर का कोई भी अंग भंग हो जायगा या गिरने से प्राण, भूत, जीव सत्त्वादि का हनन होगा, उन्हें त्रास उत्पन्न होगा, उनके अंगोपांगों का छेदन भेदन होगा, उन्हें परिताप होगा, कष्ट होगा अथवा वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन करेंगे। अतः ऐसे ऊँचे स्थानों से लाकर दिये जाने वाले उस अशनादि आहार को प्राप्त होते हुए भी साधु ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, कोट्ठियाओ वा कोलेज्जाओ वा असंजए भिक्खुपडियाए उक्कुज्जिय अवउज्जिय ओहरिय आहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥ ३७॥

कठिन शब्दार्थ - कोट्ठियाओ - कोठी से, **कोलेज्जाओ** - विशेष प्रकार की कोठी में से, **उक्कुज्जिय** - ऊँचा हो कर, **अवउज्जिय** - नीचे झुक कर, **ओहरिय** - तिरछा होकर।

भावार्थ - साधु या साध्वी के निमित्त से गृहस्थ कोठी से या विशेष प्रकार की कोठी में से ऊंचा-नीचा होकर या आड़ा टेढा होकर अशनादिक आहार लाकर दे तो साधु या साध्वी इस तरह प्राप्त होते हुए आहार को भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र से स्पष्ट होता है कि जिससे आत्म विराधना, संयम विराधना, गृहस्थ की विराधना एवं जीवों की विराधना हो या गृहस्थ को किसी तरह का कष्ट होता हो तो ऐसे स्थान पर स्थित पदार्थ को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, मट्ठिओलित्तं तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा। केवली बूया-आयाणमेयं। असंजए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्खुपडियाए मट्टिओलित्तं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, उब्भिंदमाणे पुढविकायं समारंभिज्जा तहा आऊ तेउ वाऊ वणस्सइ तसकायं समारंभिज्जा पुणरवि उल्लिंपमाणे पच्छाकम्मं करिज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा जाव जं तहप्पगारं मट्टिओलित्तं असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - मट्टिओलित्तं - मिट्टी से लिप्त, **उब्भिंदमाणे** - उघाडता हुआ-लेप हटाता हुआ, **समारंभिज्जा** - समारंभ करता है, **उल्लिंपमाणे** - वापस बंद करते हुए पुनः लेपन करता हुआ।

भावार्थ - भिक्षार्थ गृहस्थ के घर प्रवेश किये हुए मुनि को यह जान पड़े कि आहार मिट्टी आदि का लेप करके बर्तन में बंद रखा हुआ है तो ऐसे आहार को मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे। क्योंकि केवली भगवान् ने ऐसा आहार ग्रहण करने को कर्म बन्ध का कारण कहा है। असंयमी गृहस्थ साधु के निमित्त से मिट्टी आदि के लेप को हटाता हुआ पृथ्वीकाय का समारंभ करता है तथा अप्काय तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय के जीवों का भी समारंभ करता है फिर शेष रहे पदार्थों के सुरक्षा के लिए उस बर्तन का पुनः लेपन करके पश्चात् कर्म करता है। अतः साधु साध्वियों का आचार है कि इस तरह मिट्टी से लिप्त बर्तन में रखे हुए अशनादि आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मिलते हुए भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि मिट्टी के लेप से बन्द किये गए खाद्य पदार्थ के बर्तन में से उक्त लेप को तोड़ कर यदि कोई गृहस्थ कोई पदार्थ दे तो साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे पृथ्वीकाय अप्काय आदि जीवों की हिंसा होने एवं पश्चात् कर्म दोष लगने की संभावना रहती है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, पुढवीकाय पइट्ठियं तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - पुढवीकाय पइट्ठियं - पृथ्वीकाय पर रखा हुआ।

भावार्थ - जो अशनादिक आहार सचित्त पृथ्वीकाय ऊपर रखा हुआ हो तो साधु साध्वी ऐसे आहार को अप्रासुक और अनेषणीय अयोग्य जान कर ग्रहण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, आउकायपइट्ठियं तह चेव एवं अगणिकायपइट्ठियं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा, केवली बूया आयाणमेयं। असंजए भिक्खुपडियाए अगणिं उस्सक्किय उस्सक्किय णिस्सक्किय णिस्सक्किय ओहरिय ओहरिय आहट्टु दलइज्जा अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ३८॥

कठिन शब्दार्थ - **पइट्ठियं** - रखा हुआ, **अगणिं** - अग्नि को, **उस्सक्किय** - अग्नि को तेज अर्थात् ईंधन डाल कर, **णिस्सक्किय** - अग्नि में से ईंधन निकाल कर, **ओहरिय** - अग्नि पर रखे बर्तन को उतार कर या बर्तन को आगे पीछे करके।

भावार्थ - इसी प्रकार साधु या साध्वी अप्काय तथा अग्निकाय पर रखे हुए अशनादिक आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे क्योंकि केवली भगवान् ने इसे कर्म बंध का कारण कहा है। असंयमी गृहस्थ साधु के निमित्त से ईंधन डालकर अग्नि को ओर अधिक प्रज्वलित करेगा अथवा जलती अग्नि में से लकड़ी आदि बाहर निकालेगा या अग्नि पर से पात्र को उतार कर अथवा अग्नि पर से पात्र को आगे-पीछे करके आहार देगा। अतः इस प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर लाभ होने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि सचित्त पृथ्वी, पानी एवं अग्नि पर रखा हुआ आहार अप्रासुक और अनेषणीय होने के कारण साधु साध्वी को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अच्चुसिणं असंजए भिक्खुपडियाए सुप्पेण वा, वियणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकण्णेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, फुमिज्ज वा वीइज्ज वा, से पुव्वामेव आलोएज्जा-आउसो त्ति भइणि त्ति वा! मा एयं तुमं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अच्चुसिणं सुप्पेण वा जाव फुमाहि वा वीयाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि। से सेवं वयंतस्स परो सुप्पेण वा जाव वीइत्ता आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अच्चुसिणं** - अति उष्ण, **सुप्पेण** - सूप (छाज) से, **वियणेण** - पंखे से, **तालियंटेण** - ताल पत्र के पंखे से, **पत्तेण** - पत्र से, **पत्तभंगेण** - पत्ते के टुकड़ों से, **साहाए** - शाखा से, **साहाभंगेण** - शाखा के खण्ड से, **पिहुणेण** - मयूर पंख से, **पिहुणहत्थेण** - मयूर पिच्छी से, **चेलेण**- वस्त्र से, **चेलकण्णेण** - वस्त्र खण्ड से, **हत्थेण** - हाथ से, **मुहेण** - मुंह से, **फुमिज्ज**- फूंक देवे, **वीइज्ज**- हवा करे।

भावार्थ-आहार-पानी के अत्यंत उष्ण होने पर गृहस्थ साधु के निमित्त से सूप से, पंखे से, ताड़ पत्र के पंखे से, अन्य पत्तों से, पत्ते के खण्ड से, शाखा से, शाखा खण्ड से, मयूरपंख से, मयूर पिच्छी से, वस्त्र से, वस्त्र के टुकड़े से, हाथ से या मुख से फूंक देकर हवा करके शीतल करने लगे तो मुनि पहले ही उसे देख कर गृहस्थ को कहे कि- हे आयुष्मन् या हे बहिन! तुम इस आहार को पंखे आदि से ठंडा मत करो, यदि तुम मुझे देना चाहते हो ऐसा ही दे दो। साधु के इस प्रकार कहने पर भी गृहस्थ सूप, पंख आदि से ठंडा करके आहार लाकर दे तो साधु उस आहार पानी को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वायुकायिक जीवों की यतना के संबंध में उल्लेख किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, वणस्सइकाय पइट्ठियं तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा वणस्सइकायपइट्ठियं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा। एवं तसकाए वि॥

भावार्थ - जो अशनादिक आहार वनस्पति या त्रस काय पर रखा हुआ हो तो ऐसे आहार को साधु साध्वी अप्रासुक और अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - साधु के निमित्त त्रस या स्थावर किसी भी प्राणी को कष्ट होता हो तो साधु को ऐसा आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये। त्रसकाय प्रतिष्ठित में पंचेन्द्रिय प्राणियों को भी समझा जाता है। जैसे गाय, ऊँट आदि पशुओं के ऊपर रखी हुई वस्तु लेने से उसका संतुलन बिगड़ जाने से उनको पीड़ा होती है। मनुष्य के भी सिर या कंधे आदि पर रखी हुई वस्तु उतारने आदि से यदि उसको कष्ट होता हो तो उसे भी नहीं लेना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजायं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणिज्जा तंजहा-उस्सेइमं वा संसेइमं वा चाउलोदगं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं अहुणाधोयं अणंबिलं अव्वुक्कंतं अपरिणयं अविद्धत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

अह पुण एवं जाणिज्जा-चिराधोयं अंबिलं वुक्कंतं परिणयं विद्धत्थं फासुयं जाव पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उस्सेइमं** - उत्स्वेदिम-जिस बर्तन में आटा मसला जाता है उसे कठौती कहते हैं उस कठौती आदि को धोया हुआ धोवन, **संसेइमं** - तिलों को धोया हुआ धोवन, **चाउलोदगं** - चावलों का धोया हुआ धोवन, **पाणगजायं** - पानक जात-पानी के भेदों (प्रकारों) को, **अहुणाधोयं** - तुरन्त का धोया हुआ (तत्काल का बनाया हुआ हो), **अणंबिलं** - जिसका स्वाद न बदला हो, **अव्वुक्कंतं** - रस अतिक्रांत न हुआ हो, अचित्त न हुआ हो, **अपरिणयं** - शस्त्र परिणत न हुआ हो, **अविद्धत्थं** - जो पूर्ण रूप से अचित्त न बना हो, योनि ध्वंश नहीं हुआ हो, **चिराधोयं** - चिरकाल का धोया हुआ हो, **अंबिलं** - स्वाद बदल गया हो, **वुक्कंतं**-अचित्त हो गया हो, **परिणयं**-शस्त्र परिणत हो चुका हो, **विद्धत्थं**-योनि रहित हो गया हो।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी पीने योग्य जल-धोवन आदि के बारे में ऐसा जाने कि-आटा मसलने की कठौती का धोवन तिलों का धोया हुआ धोवन, चावलों का धोया हुआ धोवन या ऐसा ही अन्य कोई धोवन जो तत्काल किया हुआ हो, जिसका स्वाद चलित नहीं हुआ हो, वर्ण, रसादि का परिणमन न हुआ हो, शस्त्र परिणत नहीं हुआ हो, जो पूर्ण रूप से अचित्त न बना हो तो ऐसे पानी को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी साधु ग्रहण न करे।

यदि पुनः ऐसा जाने कि धोवन लम्बे समय का धोया हुआ है, उसका स्वाद बदल गया है, वह अचित्त हो गया है, शस्त्र परिणत हो चुका है, योनि रहित हो गया है तो ऐसे धोवन को प्रासुक और एषणीय जानकर साधु साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा तंजहा - तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं वा पाणगजायं पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसो त्ति वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भइणि त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं पाणगजायं? से सेवं वयंतस्स परो वइज्जा-आउसंतो समणा! तुमं चेवेयं पाणगजायं पडिग्गहेण वा उस्सिंचियाणं उयत्तियाणं गिण्हाहि तहप्पगारं पाणगजायं सयं वा गिण्हिज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं लाभे संते पडिगाहिज्जा॥ ४१॥

कठिन शब्दार्थ - **तिलोदगं** - तिलों का धोया हुआ धोवन, **तुसोदगं** - तुषों का धोया हुआ धोवन, **जवोदगं** - जौ का धोया हुआ धोवन, **आयामं** - ओसामण-उबले हुए चावलों पर से उतारा हुआ पानी, **सोवीरं** - आंछ-छाछ के ऊपर का पानी, **सुद्धवियडं** - उष्ण पानी (अचित्त जल) **तुमं चेवेयं** - तुम स्वयं ही, **पडिग्गहेण** - अपने पात्र से, **उस्सिंचियाणं** - उलीच कर, **उयत्तियाणं** - नितार कर।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घर तिलों का धोया हुआ धोवन, तुषों का धोया हुआ धोवन, जौ का धोया हुआ धोवन, चावलों पर से उतारा हुआ धोवन (ओसामण), छाछ के ऊपर का पानी, उष्ण पानी या इसी प्रकार का अन्य कोई प्रासुक अचित्त जल देखकर पूर्व में ही गृहपति को कहे कि हे आयुष्मन्! या हे बहिन! इस प्रकार के पानी में से थोड़ा पानी मुझे दोगे? ऐसा कहने वाले साधु को कदाचित् गृहस्थ इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण! तुम स्वयं ही अपने पात्र से या पानी के पात्र को उलीच कर, उल्टा कर पानी ले लो। इस प्रकार का प्रासुक जल मिलने पर साधु स्वयं ले ले या अन्य कोई दे तो भी ले ले।

विवेचन - आहार की तरह पानी भी जीवन के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि - साधु साध्वी किस प्रकार का पानी ग्रहण करे? प्रस्तुत सूत्र में नौ तरह के पानी का नामोल्लेख किया गया है - १. आटे के कठौती आदि बर्तनों का धोया हुआ धोवन २. तिलों का धोया हुआ पानी ३. चावलों का धोया हुआ पानी ४. जिस पानी में उष्ण पदार्थ-शाक आदि ठंडे किये हुए हो वह पानी ५. तुषों का धोया हुआ पानी ६. यवों का धोया हुआ पानी ७. उबले हुए चावलों पर से निकाला हुआ पानी ८. कांजी के बर्तनों का धोया हुआ पानी ९. उष्ण-गर्म पानी। इसके आगे '**अण्णयरं वा तहप्पगारं**' शब्द से यह सूचित किया गया है कि इसी प्रकार के अन्य धोवन पानी जो पूर्णतया शस्त्र परिणत हो गये हों, जिनका वर्ण, गंध, रस बदल गया हो ऐसे निर्दोष और एषणीय प्रासुक जल साधु साध्वी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण कर सकते हैं। जैसे राख से मांजे हुए बर्तनों का धोया हुआ पानी, द्राक्षा का पानी आदि यदि किसी कारण से गृहस्थ पानी का भरा हुआ बर्तन उठाने में असमर्थ है और वह आज्ञा देता है तो साधु उस प्रासुक एवं एषणीय पानी को स्वयं ले सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा-अणंतरहियाए पुढवीए जाव संताणए ओहट्टु णिक्खित्ते सिया असंजए भिक्खुपडियाए उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा सकसाएण वा मत्तेण वा सीओदएण वा संभोएत्ता आहट्टु दलएज्जा तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - अणंतरहियाए पुढवीए - सचित्त पृथ्वी पर, **ओहट्टु** - एक पात्र से अन्य पात्र में निकाल कर (लेकर), **णिक्खित्ते** - रक्खा हो, **उदउल्लेण** - जल टपकते हाथों से, **ससिणिद्धेण** - गीले हाथों से, **सकसाएण** - सचित्त पृथ्वीकाय आदि से संसृष्ट, **मत्तेण** - पात्र से, **सीओदएण**- सचित्त जल से, **संभोइत्ता** - मिला कर।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुआ साधु-साध्वी यह जाने कि-अचित्त जल, सचित्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति, लीलन-फूलन पर या सूक्ष्म जीव जंतुओं पर रखा हुआ है या सचित्त जल आदि वाले पात्र से अन्य पात्र में निकाल कर रखा हुआ है अथवा असंयति गृहस्थ साधु के निमित्त से सचित्त पानी की बूंदे टपकते हुए या गीले पात्र अथवा हाथों से अथवा सचित्त पृथ्वी आदि से संसृष्ट पात्र से अथवा अचित्त जल में सचित्त जल मिलाकर देवे तो साधु इस प्रकार के जल को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को वही प्रासुक पानी ग्रहण करना चाहिये जो सचित्त पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि पर नहीं रखा हुआ हो गृहस्थ भी इन पदार्थों से युक्त न हो।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं त्ति बेमि॥ ४२॥

॥ सत्तमो उद्देसो समत्तो॥

भावार्थ - यह संयति साधु-साध्वियों का शुद्ध आचार है। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम अध्ययन का सातवां उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन का आठवाँ उद्देशक

सातवें उद्देशक के अन्त में प्रासुक पानी के विषय में बताया गया है उसी विषय का यहाँ आठवें उद्देशक में विस्तार से विवेचन किया गया है। सूत्रकार फरमाते हैं कि -

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा तं जहा-अंबपाणगं वा, अंबाडगपाणगं वा, कविट्ठपाणगं वा, माउलिंगपाणगं वा, मुद्दियापाणगं वा, दाडिमपाणगं वा, खज्जूरपाणगं वा, णालिएरपाणगं वा, करीरपाणगं वा, कोलपाणगं वा, आमलगपाणगं वा, चिंचापाणगं वा, अण्णयरं वा, तहप्पगारं पाणगजायं सअट्ठियं सकणुयं सबीयगं असंजए भिक्खुपडियाए छब्बेण वा दूसेण वा वालगेण वा, आवीलियाण वा, पवीलियाण परिसाइयाण आहट्टु दलएज्जा तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा ॥ ४३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अंबपाणगं** - आम का धोवन, **अंबाडगपाणगं** - अंबाडग का धोवन, **कविट्ठपाणगं** - कपित्थ का धोवन, **माउलिंगपाणगं**- बिजौरे का धोवन, **मुद्दियापाणगं**- दाखों को धोया हुआ धोवन, **दाडिमपाणगं** - दाड़म का धोवन, **खज्जूरपाणगं**- खजूर का धोवन, **णालिएरपाणगं**- नारियल का धोवन, **करीरपाणगं** - केर का धोवन, **कोलपाणगं**- बोर का धोवन, **आमलगपाणगं** - आंवले का धोवन, **चिंचापाणगं** - इमली का धोवन, **सअट्ठियं** - गुठली सहित, **सकणुयं** - छाल वाला, छिलके सहित, **सबीयं** - बीज युक्त, **छब्बेण** - छलनी से, **दूसेण** - वस्त्र से, **वालगेण** - बालों वाली छलनी से, **आविलियाण**- मसल कर दाब कर, **पवीलियाण** - छानकर, बार-बार मसलकर, **परिसाइयाण** - गुठली आदि निकाल कर, छान कर।

भावार्थ - आम का धोवन, अम्बाडग का धोवन, कबीठ-कैथ का धोवन, बिजौरे का धोवन, दाखों का धोया हुआ धोवन, अनार का धोवन, खारक का धोवन, नारियल (खोपरा) का धोया हुआ धोवन, कैर का धोवन, बेर का धोवन, आंवले का धोवन, इमली का धोवन या इसी प्रकार का अन्य कोई धोवन जो सचित्त गुठली, छिलके या बीज से युक्त हो और असंयति गृहस्थ साधु के निमित्त से-छलनी द्वारा, वस्त्र से या बालों की चालनी या छिद्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले घोंसलों से छानकर, मसलकर उसमें रहे हुए गुठली बीजादि छिलके आदि को अलग करके लाकर उसे दे तो साधु या साध्वी ऐसे धोवन को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बीस प्रकार का धोवन और एक गरम पानी इस प्रकार इक्कीस प्रकार के प्रासुक धोवन पानी का उल्लेख किया गया है। सूत्रकार का तात्पर्य यह है कि आम्र आदि फलों का धोया हुआ पानी यदि गुठली बीज आदि से युक्त है और गृहस्थ छलनी या वस्त्र आदि से एक बार या अधिक बार छान कर तथा उसमें से गुठली बीज आदि निकाल कर दे तो वह पानी साधु के लिए अग्राह्य है। क्योंकि इस तरह का पानी उद्गम आदि दोषों से युक्त होता है अतः अनेषणीय होने के कारण ऐसा पानी साधु ग्रहण नहीं करे।

प्रस्तुत सूत्र में आगमकार साधुओं को नहीं कल्पने योग्य वस्तुओं की निषेधविधि बताते हैं। उसमें सर्वप्रथम अकल्पनीय जलों के नामोल्लेख हैं। इस उद्देशक में वर्णित-आम्र, आम्रातक, द्राक्षा, कैर, बोर आदि सचित्त पदार्थ हैं। इनको धोने से यद्यपि पानी तो अचित्त बन जाता है किन्तु उसमें इन वनस्पतियों के बीज, बींट, छाल आदि रह जाने की संभावना रहती है। साधुओं के निमित्त उसे छाना जाए तो भी वह जल साधुओं के लिए अकल्पनीय हो जाता है और बिना छाने तो वनस्पतियों के अवयव पड़े हुए होने से वह जल अकल्पनीय ही माना जाता है। अतः आगम में इस जल को ग्रहण करने का निषेध ही किया है। अन्यत्र **"अह पुण एवं जाणिज्जा"** आदि वाक्यों के द्वारा ग्रहण की विधि भी बताई जाती है। वह भी यहाँ पर नहीं बताई गई है। क्योंकि ये जल अधिकतर निर्दोष मिलने कम ही संभव होते हैं। इस प्रकार आगम में तो सातवें उद्देशक में बताए हुए नव प्रकार के जलों को ग्रहण करने की विधि बतलाई गई है।

सुघरी (सुघरिका)-वया - एक प्रकार की चिड़िया जो अपना घोंसला जाली दार बनाती है, जब वह उसे छोड़ देती है, तब लोग उसे ले आते हैं। वह जालीदार होने के कारण लोग उसमें घी, पानी आदि छानते हैं। उसमें छना हुआ पानी बिलकुल साफ होता है।

यहाँ जो बीस प्रकार का धोवन बतलाया गया है वह उन चीजों को धोया हुआ धोवन समझना चाहिए। जैसे कि आम फलों का धोया हुआ पानी, इसी प्रकार दाखों को धोया हुआ पानी, नारियल अर्थात् खोपरों को धोया हुआ पानी समझना चाहिए। किन्तु नारियल में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से निकला हुआ पानी नहीं समझना चाहिए। इसी प्रकार दाखों अर्थात् अङ्गुरों का रस तथा दाखों एवं अङ्गुरों को मसला हुआ रस भी नहीं समझना चाहिए। उपरोक्त बीसों प्रकार की चीजों को धोया हुआ पानी ही समझना चाहिए।

नारियल जब बहुत कच्चा होता है तब उसमें पानी की मात्रा अधिक होती है और गिरी (गूदा) बहुत कम होती है टोपसी के भीतरी भाग में चिपी रहती है उस समय का पानी और गिरी सचित्त तो है ही परन्तु अनन्तकाय की शङ्का एवं सम्भावना भी रहती है। जोटी वाला सूखा नारियल भी जब तक पूरा गोला रहता है तब तक भी सचित्त ही रहता है। बाहर निकले हुए गोले में से बीज का भाग दूर हो जाता है तब वह अचित्त हो जाता है, उसके पहले वह सचित्त ही रहता है ऐसा समझना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जाव पविट्ठे समाणे आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अण्णगंधाणि वा, पाणगंधाणि वा, सुरभिगंधाणि वा आघाय आघाय से तत्थ आसायपडियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे 'अहो गंधो अहो गंधो' णो गंधमाघाइज्जा॥ ४४॥

कठिन शब्दार्थ - **आगंतारेसु** - धर्मशालाओं (सरायों) में, **आरामागारेसु** - उद्यान गृहों (बंगलों) में, **परियावसहेसु** - परिव्राजकों के मठों में, **आघाय** - सूंघ कर, **आसायपडियाए** - गंध के आस्वादन की प्रतिज्ञा से, **मुच्छिए** - मूर्च्छित, **गिद्धे** - गृद्ध, **गढिए** - ग्रस्त, **अज्झोववण्णे** - आसक्त, **णो** - नहीं, **गंधं** - गंध को, **आघाइज्जा** - सूंघे।

भावार्थ - साधु या साध्वी धर्मशालाओं में, बंगलों में, गृहस्थों के घरों में या परिव्राजकों आदि के मठों में, अन्न एवं पानी की तथा सुगंधित पदार्थों की सुगंध को सूंघ सूंघ कर उस गंध में मूर्च्छित, गृद्धित और लोलुपी होकर 'अहा! कैसी सुंदर गंध है' इस प्रकार का विचार कर उस गंध को नहीं सूंघे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने साधु को भौतिक पदार्थों में किस तरह अनासक्त रहना चाहिए, इसका उल्लेख किया है। साधु को सुवासित पदार्थों की गंध की ओर आकर्षित नहीं हो कर अपने मन आदि योगों को अपनी साधना में लगाना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा सालुयं वा, विरालियं वा, सासवणालियं वा, अण्णयरं वा, तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - सालुयं - सालुक, जलजकंद-जल से उत्पन्न होने वाला कंद विशेष, **विरालियं**- विरालिक-स्थलकंद, **सासवणालियं** - सर्षप नालिका, सरसौ की कांदल, **आमगं** - कच्चा (सचित्त)।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी जल में उत्पन्न होने वाले कंद, स्थल पर होने वाले कंद, सर्षप नालिका कंद या इसी प्रकार के अन्य कंद विशेष जो कच्चे (सचित्त) हैं, शस्त्र परिणत नहीं हुए हैं उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा पिप्पलिं वा, पिप्पलिचुण्णं वा, मिरियं वा, मिरियचुण्णं वा, सिंगबेरं वा, सिंगबेरचुण्णं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमगं वा असत्थपरिणयं अफासुयं जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - पिप्पलिं - पीपल को, **पिप्पलिचुण्णं** - पीपल का चूर्ण, **मिरियं** - कालीमिर्च, **मिरियचुण्णं** - कालीमिर्च का चूर्ण, **सिंगबेरं** - अदरक, **सिंगबेरचुण्णं** - अदरक का चूर्ण।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिये प्रविष्ट साधु या साध्वी पीपल, पीपल का चूर्ण, कालीमिर्च, कालीमिर्च का चूर्ण, अदरक या अदरक का चूर्ण तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ जो कच्ची और शस्त्र परिणत न हुई हो अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण पलंबजायं जाणिज्जा तं जहा-अंबपलंबं वा, अंबाडगपलंबं वा, तालपलंबं वा, झिज्झिरिपलंबं वा, सुरभिपलंबं वा, सल्लइपलंबं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं पलंबजायं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - पलंबजायं - प्रलम्ब-फलों की जाति को, **तालपलंब** - ताड़ के फल को **झिज्झिरिपलंबं** - वल्ली विशेष का फल (लताओं के फल को) **सुरभिपलंबं** - शतद्रु (जायफल) सुरभि फल, **सल्लइपलंबं** - सल्लकी का फल।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिये प्रविष्ट साधु या साध्वी आम्रफल, अम्बाडग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फल, ताडफल, वल्ली का फल, शतद्रुफल, सल्लकी का फल तथा इसी प्रकार के अन्य फल जो सचित्त हों, शस्त्र परिणत न हुए हों उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण पवालजायं जाणिज्जा तं जहा-आसोत्थपवालं वा, णग्गोहपवालं वा, पिलुंखुपवालं वा, णिपूरपवालं वा, सल्लइपवालं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं पवालजायं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पवालजायं** - प्रवाल जात (कौंपल) को, **आसोत्थपवालं** - पीपल की कौंपल, **णग्गोहपवालं** - वट वृक्ष की कौंपल, **पिलुंखुपवालं** - पिप्पली की कौंपल, **णिपूरपवालं** - नंदी वृक्ष की कोंपल, **सल्लइ पवालं** - सल्लकी (शल्यकी) की कौंपल।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिये प्रविष्ट साधु या साध्वी पीपल की कोंपल, वट वृक्ष की कोंपल, पिप्पली की कोंपल, नंदी वृक्ष की कोंपल, शल्यकी की कोंपल तथा इसी प्रकार की अन्य कोई भी कोंपल जो सचित्त हो, शस्त्र परिणत न हुई हों तो उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण सरडुयजायं जाणिज्जा तं जहा - अंबसरडुयं वा, कविट्ठसरडुयं वा, दाडिमसरडुयं वा, बिल्लसरडुयं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं सरडुयजायं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **सरडुयजायं** - अबद्धास्थिफल-ऐसे कोमल फल जिनमें अभी तक गुठली नहीं बन्धी हो **बिल्लसरडुयं** - बिल्व का कोमल फल।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी आम का कोमल फल, कबीठ का कोमल फल, अनार या बिल्व का कोमल फल तथा इसी प्रकार के अन्य कोमल फल जो कि कच्चा और शस्त्र परिणत न हुआ हो तो उसे मिलने पर भी अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण मंथुजायं जाणिज्जा तंजहा - उंबरमंथुं वा, णग्गोहमंथुं वा, पिलंक्खुमंथुं वा, आसोत्थमंथुं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं मंथुजायं आमयं दुरुक्कं साणुबीयं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा ॥

कठिन शब्दार्थ - मंथुजायं - मन्थु जात-चूर्ण, **उंबरमंथुं** - उंबर का चूर्ण, **दुरुक्कं** - थोड़ा पीसा हुआ हो, **साणुबीयं** - सबीज (योनि सहित)।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी उंबर का चूर्ण, बड़ का चूर्ण, पीपल का चूर्ण, पीपली का चूर्ण तथा इसी प्रकार का अन्य चूर्ण जो थोड़ा पीसा हो और सबीज (योनि सहित) दिखाई दे तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को सचित्त वनस्पति ग्रहण नहीं करना चाहिये। कन्द-मूल वनस्पति और फल आदि जब तक शस्त्र परिणत नहीं हुए हों तब तक सचित्त ही रहते हैं अतः साधु के लिये अग्राह्य है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा आमडागं वा, पूइपिण्णागं वा, महुं वा, मज्जं वा, सप्पिं वा, खोलं वा, पुराणं एत्थ पाणा अणुप्पसूया, एत्थ पाणा जाया, एत्थ पाणा संवुड्ढा, एत्थ पाणा अवुक्कंता, एत्थ पाणा अपरिणया, एत्थ पाणा अविद्धत्था, जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - आमडागं - भाजी के कच्चे पत्ते या अर्द्धपक्व शाक, **पूइपिण्णागं**- सड़ी हुई खल, **सप्पिं** - घृत, **खोलं** - मद्य आदि के नीचे जमा हुआ कचरा, **पुराणं** - पुराने, **अणुप्पसूया** - उत्पन्न हो गये हैं, **जाया** - जन्म गये हैं, जीव उत्पन्न हो गये हैं, **संवुड्ढा** - वृद्धि पा गये हैं, **अवुक्कंता** - व्युत्क्रांत-अचित्त नहीं हुए हैं, **अपरिणया** - अपरिणत-परिणमन नहीं हुआ है, **अविद्धत्था** - अविध्वस्त-जिनकी योनि नष्ट न हुई है।

भावार्थ - साधु या साध्वी भिक्षार्थ गये हुए भाजी के कच्चे पत्ते या अर्द्धपक्व शाक-भाजी, सड़ी हुई खल, पुराना मधु, मद्य, घृत या मद्य आदि के नीचे जमा हुआ कचरा हो ऐसे पुराने पदार्थों को ग्रहण न करे, क्योंकि ये पदार्थ पुराने होने से उनमें जीव जंतु उत्पन्न हो जाते हैं, उनमें वृद्धि पाते हैं, उनका रस चलित हो जाता है वे अचित्त नहीं हुए हैं शस्त्र परिणत नहीं हुए हैं, जिनकी योनि नष्ट नहीं हुई हैं सचित्त हैं अतः उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में **'महुं वा, मज्जं वा, सप्पिं वा, खोलं वा'** पाठ आया है। उसमें मधु, मद्य, घी आदि के नीचे जमा हुआ कचरा। ये पदार्थ पुराने हो गए हों एवं उनमें जीव उत्पन्न हो गए हों तो उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए। जीव रहित होने पर उन्हें ग्रहण किया जा सकता है। पुराने मधु (शहद), मद्य, घृत आदि औषधियों में काम आते हैं। साधु-साध्वी भी औषधि के रूप में जीव रहित बने हुए इन पदार्थों को ग्रहण कर सकते हैं। आयुर्वेदिक औषधियों में अनेक प्रकार के आसव एवं अरिष्ट को अनेक रोगों में औषधि के रूप में लिया जाता है। ये पदार्थ मद्य के ही रूपान्तर हैं। औषधि के रूप में इन्हें ग्रहण करना कल्पनीय समझा जाता है। स्थानांग सूत्र उद्देशक २ में एवं निशीथ सूत्र के उद्देशक १९ में भी इस संबंधी वर्णन मिलता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा-उच्छुमेरगं वा, अंककरेलुयं वा, कसेरुगं वा, सिंघाडगं वा, पूइआलुयं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - उच्छुमेरगं - ईख का टुकड़ा, **अंककरेलुयं** - अंक करेला, **कसेरुगं**- कसेरु, **सिंघाडगं** - श्रृंगाटक, सिंघाडे, **पूइआलुयं** - पूतिआलुक।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी इक्षुखंड-गंडेरी, अंक करेला, कसेरु, सिंघाडा या पूतिआलुक आदि तथा जल में होने वाली अन्य वनस्पति विशेष जो कच्ची और शस्त्र परिणत न हो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा-उप्पलं वा, उप्पलणालं वा, भिसं वा, भिसमुणालं वा, पुक्खलं वा, पुक्खलविभंगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं जाव णो पडिगाहिज्जा ।। ४७॥

कठिन शब्दार्थ - उप्पलं - उत्पल-सूर्य विकासी कमल, **उप्पलणालं** - उत्पल नाल, **भिसं** - पद्मकंद मूल, **भिसमुणालं** - पद्म कंद के ऊपर की बेल, **पुक्खलं** - पद्म केसर, **पुक्खलविभंगं** - पद्म कंद।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु साध्वी उत्पल-सूर्य विकासी कमल, उत्पलनाल, पद्म कंदमूल, पद्म कंद के ऊपर की लता, पद्म केसर अथवा पद्मकंद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा इसी प्रकार के अन्य कमल जो कच्चे हों शस्त्र परिणत न हुए हों, उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्णित वनस्पति सचित्त होने से साधु के लिए अग्राह्य है। इन उपरोक्त वनस्पतियों में कसेरु, पूतिआलुक, पद्मकन्द, पद्मलता आदि कुछ वनस्पतियों के नाम अप्रसिद्ध है किसी देश विदेश में प्रसिद्ध हो सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा-अग्ग बीयाणि वा, मूल बीयाणि वा, खंध बीयाणि वा, पोर बीयाणि वा, अग्ग जायाणि वा, खंध जायाणि वा, पोर जायाणि वा, णण्णत्थ तक्कलिमत्थएण वा, तक्कलिसीसेण वा, णालिएरमत्थएण वा, खज्जूरिमत्थएण वा, तालमत्थएण वा, अण्णयरं वा, तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - बीयाणि - बीज, **जायाणि** - जात, **अग्ग** - अग्र, **मूल** - मूल, **खंध** - स्कन्ध, **पोर** - पर्व, **णण्णत्थ** - अन्यत्र नहीं, अर्थात् इनके सिवाय **तक्कलिमत्थएण**- कंदली गर्भ, **तक्कलिसीसेण** - कंदली का अग्रभाग (स्तबक-गुच्छा), **णालिएरमत्थएण** - नारियल का गर्भ, **खज्जूरिमत्थएण** - खजूर का गर्भ।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी जपा कुसुमादिक अग्रबीज, जात्यादिक मूल बीज, सल्लकी आदि स्कंध बीज वनस्पति, इक्षु खंडादि पर्व बीज वनस्पति अथवा अग्रजात, मूल जात, स्कंध जात, पर्वजात तथा अन्यत्र नहीं किंतु इन्हीं वृक्षों पर उत्पन्न हुआ कंदली गर्भ (गूदा) या कंदली समूह, नारियल गर्भ, खजूर का गर्भ, ताड गर्भ तथा इसी प्रकार की अन्य कोई कच्ची और शस्त्र परिणत न हुई वनस्पति है, उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि अग्र बीज, मूल बीज, स्कंध बीज, पर्व बीज, अग्रजात, मूलजात, पर्वजात, कंद का, खजूर का एवं ताड का मध्य भाग आदि सभी तरह की वनस्पति जो सचित्त है, अपक्व है शस्त्र परिणत नहीं हुई है तो अप्रासुक और अनेषणीयं जान कर साधु को उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये।

अग्रबीज और अग्रजात में यह अंतर है कि अग्रबीज को भूमि में बो देने पर उस वनस्पति के बढ़ने के बाद उसके अग्रभाग में बीज उत्पन्न होता है जबकि अग्रजात अग्रभाग में ही उत्पन्न होता है अन्यत्र नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'णण्णत्थ.....तालमत्थएण वा' सूत्र पाठ का आशय इस प्रकार समझना चाहिये। ये अग्रजात आदि वही पर उत्पन्न हुए समझना चाहिए, अन्य कलम आदि लगाए हुए नहीं समझना चाहिए। टीकाकार ने इसके दो अर्थ किये हैं - १.अग्र आदि से अन्यत्र प्ररोहित (उगे हुए) नहीं है, किन्तु उसी अग्र आदि में उत्पन्न हुए हैं ऐसे कंदली के मध्यवर्ती गर्भादि २. अथवा कंदली मस्तक के सरीखा अन्य भी जो काटने के तुरन्त बाद नष्ट हो जाता है। उस प्रकार के तक्कली मस्तक आदि कच्चे हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए। इस सूत्र में बताए हुए पाँचों नाम 'वलय वनस्पति' के हैं। जिनके ऊपर की सूई (सूचि) के नष्ट होने से यह वृक्ष भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के 'तक्कली' आदि वृक्षों के जो मस्तक भाग होते हैं उनके तोड़ने से संख्यात-जीवी होने के कारण वे अचित्त हो जाते हैं। इसलिए इन पाँच वृक्षों को छोड़कर बाकी वनस्पतियों का अशस्त्र परिणत होने से निषेध किया है। यहाँ पर 'केला' का नामोल्लेख भी नहीं है। भगवती सूत्र शतक २२ को देखते हुए केला का फल 'बहुबीजी' वाला लगता है - इसलिए इस (केले) के खण्ड भी ग्रहण करना संभव नहीं लगता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणिज्जा - उच्छुं वा, काणगं वा, अंगारियं वा, सम्मिस्सं विगदूमियं वित्तगं वा, कंदली ऊसुगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - उच्छुं - ईख, **काणगं** - सछिद्र वनस्पति, **अंगारियं** - जिसका वर्ण बदल गया हो, **सम्मिस्सं** - फटी हुई छाल वाला, **विगदुमियं** - श्रृंगाल आदि द्वारा कुछ खाया हुआ, **वित्तगं** - बैंत का अग्र भाग, **कंदलीऊसुगं** - कंदली गर्भ।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी ईख, छेदवाली ईख, रोग के कारण जिसका वर्ण बदल गया है, फटी छाल (छिलके) वाला एवं श्रृगालादि के द्वारा कुछ खाया हुआ फल अथवा बैंत का अग्रभाग, कंदली का गर्भ (मध्य भाग) तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं जो सचित्त हों, शस्त्र परिणत न हुई हों तो उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा - लसुणं वा, लसुणपत्तं वा, लसुणणालं वा, लसुणकंदं वा, लसुणचोयं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहिज्जा।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **लसुणं** - लहसुन, **लसुणपत्तं** - लहसुन के पत्ते, **लसुणणालं** - लहसुन नाल (लहसुन की डंडी), **लसुणकंदं** - लहसुन का कंद, **लसुणचोयं** - लहसुन का छिलका।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी लहसुन, लहसुन के पत्ते, लहसुन की डंडी, लहसुन का कंद, लहसुन के बाहर का छिलका तथा इसी प्रकार के अन्य कंद जो कच्चे और शस्त्र परिणत न हुए हैं उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा - अत्थियं वा, कुंभिपक्कं वा, तिंदुगं वा, वेलुयं वा, कासवणालियं वा, अण्णयरं वा, तहप्पगारं आमं असत्थ परिणयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अत्थियं** - अस्थिक फल, **कुंभिपक्कं** - भट्टी या तथा प्रकार की कोठी में **पक्कं** - पकाया हुआ फल, **तिंदुगं** - तिन्दुक फल, **वेलुयं** - बिल्व फल, **कासवणालियं** - श्री पर्णी फल।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी अस्थिक फल, गर्त (खड्डा) आदि में रखकर पकाया गया फल, तिंदुक फल, बिल्व फल या श्रीपर्णी फल तथा इसी प्रकार के अन्य फल विशेष जो कच्चे और शस्त्र परिणत न हों उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा - कणं वा, कणकुंडगं वा, कणपूयलियं वा, चाउलं वा, चाउलपिट्ठं वा, तिलं वा, तिलपिट्ठं वा, तिलपप्पडगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **कणं** - धान्य के दाने, **कणकुंडगं** - कणों (दानों) से मिश्रित कुक्कुस (छानस) **कणपूयलियं** - दाने वाली रोटी, **चाउलं** - चावल, **चाउलपिट्ठं** - चावलों का आटा (ताजा) **तिलं** - तिल, **तिलपिट्ठं** - तिल का आटा, **तिलपप्पडगं** - कच्चे तिलों की तिल पापड़ी।

भावार्थ - भिक्षा के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु या साध्वी धान्य-शाल्यादि के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाने, दानों से मिश्रित कुक्कुस (छानस), दानों वाली रोटी, चावल अथवा चावलों का ताजा आटा, तिल या तिल का आटा, तिल पापड़ी तथा इसी प्रकार की अन्य कोई वस्तु जो कच्ची और शस्त्र परिणत न हुई हो, तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आए हुए **'कणं वा कणकुंडगं वा कणपूयलियं वा'** का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - जहाँ पर चावल (शालि) का वपन होता है। वहाँ लोग हरी शालि को (छिलके सहित चावल को) कूट करके इसमें से कणकी (चावल के टुकड़े) को अलग करके इसकी रोटी बनाते हैं। अत: यहाँ पर **'कणं'** शब्द से 'हरे चावल के कण' ग्रहण किये हैं - जो कच्चे होने से असंख्यजीवी होते हैं। इसलिए इसकी 'अर्धपरिपक्व रोटी' **(कणपूयलियं)** भी पूर्ण अचित्त नहीं होती है - फोंतरे (छिलके) भी पूर्ण अचित्त नहीं होते हैं - इसलिए उनका ताजा आटा **(कणकुंडगं)** भी अचित्त नहीं होता है। अत: **'कणं' वा**.....इन सभी में सचित्त की शंका से ग्रहण का निषेध है।

अहिंसा महाव्रत के निर्दोष पालन के लिये यह आवश्यक है कि साधु अप्रासुक और अनेषणीय फल, सब्जी या अन्य कोई वस्तु ग्रहण नहीं करे। लहसुन आदि जमीकन्द का शाक, चटनी आदि चाहे शस्त्र परिणत होकर अचित्त हो गयी हो तो भी व्यवहार की दृष्टि से उसे साधु-साध्वी को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।। ४८ ॥

भावार्थ - यह संयमशील साधु-साध्वियों का सम्पूर्ण आचार है।

।। अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥

।। प्रथम अध्ययन का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

प्रथम अध्ययन का नववाँ उद्देशक

इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा, संतेगइया सड्ढा भवंति - गाहावई वा जाव कम्मकरी वा, तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ - जे इमे भवंति समणा भगवंता, सीलमंता, वयमंता, गुणमंता, संजया, संवुड्ढा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंभयारी, उवरया मेहुणाओ धम्माओ णो खलु एएसिं कप्पइ आहाकम्मिए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा भुत्तए वा पायए वा से जं पुण इमं अम्हं अप्पणो अट्ठाए णिट्ठियं, तंजहा- असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा सव्वमेयं समणाणं णिसिरामो अवियाइं वयं पच्छावि अप्पणो अट्ठाए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा चेइस्सामो एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा अफासुयं अणेसणिज्जं जाव लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पाईणं** - पूर्व दिशा में, **पडीणं** - पश्चिम दिशा में, **दाहिणं** - दक्षिण दिशा में, **उदीणं** - उत्तर दिशा में, **सड्ढा** - श्रद्धावान्, **वुत्तपुव्वं** - पहले कहा हुआ, **समणा** - श्रमण, **भगवंता** - भगवान्, भाग्यवान, **सीलमंता** - शीलवंत, **वयमंता** - व्रती, **गुणमंता** - गुणी, **संजया** - संयमवंत, **संवुड्ढा**- संवरवंत, **बंभयारी** - ब्रह्मचारी, **मेहुणाओ धम्माओ** - मैथुन रूपी पाप कर्म से, **उवरया** - उपरत-निवृत्त, **आहाकम्मिए** - आधाकर्मिक, **अम्हं अप्पणो अट्ठाए** - हमने अपने लिए, **णिट्ठियं** - बनाया है, **णिसिरामो** - दे दें, **अवियाइं** - और फिर, **चेइस्सामो** - बना लेंगे, **णिग्घोसं** - निर्घोष-शब्द को।

भावार्थ - इस जगत में पूर्व में, पश्चिम में, दक्षिण में या उत्तर दिशा में कई सद्गृहस्थ उनकी गृहपत्नियाँ यावत् उनके दास दासी नौकर नौकरानियाँ श्रद्धावान् अथवा भद्र स्वभाव वाले होते हैं वे इस प्रकार कहते हैं - "जो मुनि ज्ञानवंत, शीलवंत, व्रती, गुणी, संयमवंत, संवरवंत, ब्रह्मचारी और मैथुन रूपी पाप कर्म के त्यागी होते हैं उनको आधाकर्मादि दोषों से युक्त आहार लेना कल्पता नहीं है अतः यह आहार जो हमने अपने लिए बनाया है ये सब इन्हें दे दें और अपने लिए फिर से आहार-पानी बना लेंगे।" उनके इस प्रकार के शब्द सुन कर साधु या साध्वी उस आहार-पानी को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण नहीं करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी को अपने घर आया हुआ देख कर कोई श्रद्धालु गृहस्थ यह सोचे कि ये आधाकर्म आदि दोषों से युक्त आहार नहीं लेते हैं अतः अपने लिये जो आहार बनाया है वह सब आहार इन्हें दे दें और अपने लिए फिर से आहार बना लेंगे इस तरह के शब्द सुन कर साधु या साध्वी उक्त आहार पानी को ग्रहण न करे क्योंकि इससे साधु साध्वी को पश्चात् कर्म दोष लगता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे से जं पुण जाणिज्जा-गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संतेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसंति तंजहा-गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा तहप्पगाराइं कुलाइं णो पुव्वामेव भत्ताए वा पाणाए वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा, केवली बूया-आयाणमेयं। पुरा पेहाए तस्स परो अट्ठाए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, उवकरिज्ज वा, उवक्खडिज्ज वा, अह भिक्खुणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा, एस हेऊ, एस कारणे एस उवएसे जं णो तहप्पगाराइं कुलाइं पुव्वामेव भत्ताए वा पाणाए वा पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा, से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अणावायमंसलोए चिट्ठिज्जा। से तत्थ कालेणं अणुपविसिज्जा अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं एसित्ता आहारं आहारिज्जा॥

सिया से परो कालेण अणुपविट्ठस्स आहाकम्मियं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, उवकरिज्ज वा उवक्खडिज्ज वा तं चेगइओ तुसिणीओ उवेहिज्जा आहडमेव पच्चाइक्खिस्सामि माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा 'आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा! णो खलु मे कप्पइ आहाकम्मियं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, भोत्तए वा पायए वा मा उवकरेहि मा उवक्खडेहि। से सेवं वयंतस्स परो आहाकम्मियं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा उवकरित्ता उवक्खडेत्ता आहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ५०॥

कठिन शब्दार्थ - **उवकरिज्ज** - करेगा-पकायेगा, **उवक्खडिज्ज** - संस्कारित करेगा, **पच्चाइक्खिस्सामि** - मैं मना कर दूंगा।

भावार्थ - साधु या साध्वी किसी ग्राम आदि में स्थिरवास रहे हुए हैं अथवा मासकल्प रहे हुए हैं, वहाँ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए दूसरे साधु साध्वी आवें तब वहाँ पहले से रहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए किसी साधु या साध्वी के पूर्व परिचित माता पिता आदि तथा पश्चात् परिचित सासु-ससुर आदि पारावारिक या सम्बन्धीजन निवास करते हैं तो ऐसे कुलों में साधु भिक्षा काल से पहले ही आहार-पानी के लिए नहीं जावे और न ही निकले। केवली भगवान् ने इसे कर्म बंध का कारण कहा है। क्योंकि भिक्षा काल से पूर्व साधु को अपने यहाँ आया देख कर गृहस्थ उसके लिए भोजन बनाएगा या बने हुए भोजन को संस्कारित करेगा। अतः साधु या साध्वी के लिए यह तीर्थंकरों द्वारा पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह ऐसे परिचित कुलों में आहार-पानी के लिए भिक्षा काल से पूर्व न जाय और न निकले। कदाचित् पहले चला जाय और आहार आदि का समय न हुआ जाने तो तुरन्त लौटकर किसी की दृष्टि न पड़े, ऐसे एकान्त स्थान में खड़ा रहे और जब भिक्षा का समय हो तब भिन्न-भिन्न कुलों से सामुदानिक भिक्षा से निर्दोष आहार ग्रहण कर उसका उपभोग करे।

साधु या साध्वी भिक्षा के समय पर ही ऐसे घरों में पहुँचे और गृहस्थ को आधाकर्मिक आहार की तैयारी करते हुए या पकाते हुए देखकर उस समय उपेक्षा करके विचार करे कि-'जब ये मुझे देंगे तब मना कर दूंगा' तो वह मुनि मातृ स्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है अतः साधु ऐसा न करे और पूर्व में ही देख कर कह दे कि-'हे आयुष्मन् अथवा बहिन! मुझे इस प्रकार का आधाकर्मिक आहार-पानी खाना या पीना नहीं कल्पता है। अतः मेरे लिए भोजन मत पकाओ, पकाये हुए को संस्कारित मत करो। साधु के ऐसा कह देने पर भी गृहस्थ आधाकर्मिक आहार-पानी तैयार करके लाकर देवे तो ऐसे अशनादिक को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मुनि ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु आहार का समय होने से पहले अपने पारिवारिक व्यक्तियों के घरों में आहार के लिए नहीं जाए क्योंकि उन्हें अपने यहाँ आया जान कर वे स्नेह व भक्ति के वश सदोष आहार तैयार कर देंगे। इससे साधु को पूर्व कर्म दोष लगेगा। यदि कोई गृहस्थ साधु के लिये आधाकर्मी आहार बना रहा हो तो उसे देख कर साधु को पहले ही स्पष्ट कह देना चाहिए कि ऐसा आहार-पानी मेरे लिए ग्राह्य नहीं है। यदि इस बात को जानते हुए भी साधु उस गृहस्थ को आधाकर्म आदि दोष युक्त आहार बनाने से नहीं रोकता है तो वह माया कपट का सेवन करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। साधु के मना करने पर भी कोई आधाकर्मी आहार बनाता रहे और वह सदोष आहार साधु को लाकर देवे तो साधु उसे ग्रहण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधु को उद्गम के १६, उत्पादन के १६ और एषणा के १० इन ४२ दोषों को टाल कर निर्दोष आहार ग्रहण करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा मंसं वा मच्छं वा भज्जिज्जमाणं पेहाए तेल्लपूयं वा आएसाए उवक्खडिज्जमाणं पेहाए णो खद्धं-खद्धं उवसंकमित्तु ओभासिज्जा णण्णत्थ गिलाणणीसाए॥

कठिन शब्दार्थ - **भज्जिज्जमाणं** - भूंजा जाता हुआ, **तेल्लपूयं** - तेल के पूड़े, **आएसाए** - पाहुनों (अतिथियों) के लिए, **उवक्खडिज्जमाणं** - बनाये जाते हुए, **उवसंकमित्तु**- पास जाकर, **णो ओभासिज्जा** - याचना न करे, **गिलाणणीसाए** - रोगी साधु के लिए।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी मेहमानों के लिए मांस या मत्स्य को भूंजा जाता हुआ देखकर अथवा तेल के पूवे (पूडियाँ आदि) बनते हुए देख कर वह शीघ्रता से वहाँ जाकर ऐसे आहार की याचना न करे। यदि बीमार साधु के लिए अति आवश्यक हो तो याचना कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अपवाद मार्ग का कथन किया है। अतिथि के लिए बनाए हुए आहार में से उसके भोजन करने के पूर्व नहीं लाना यह उत्सर्ग मार्ग है परन्तु बीमार साधु के लिए आवश्यकता पडने पर अतिथि के भोजन करने से पहले भी आहार लाना अपवाद मार्ग है। यहाँ मूल पाठ में तेल के पूडों के साथ मांस एवं मत्स्य शब्द का प्रयोग हुआ है, उन शब्दों का आशय इस प्रकार हैं - मांसाहारी उच्च कुलों में मांसाहार बनाने के बर्तन बिल्कुल अलग होने से साधु को उन कुलों में भिक्षाचरी के लिए जाने का साधारणतया निषेध नहीं है। तथापि मांस, मत्स्य एवं तेल के पूए पक रहे हों, वहाँ रोगी साधु के सिवाय साधुओं के लिए आहार लाने का जो निषेध किया गया है, उसका कारण सरस आहार की आसक्ति की दृष्टि से एवं जीमनवार जैसी स्थिति होने के कारण किया गया है। रोगी साधु के लिए भी मांसाहार वाला भोजन ग्रहण नहीं किया जाता है। पूए आदि सरस एवं मिष्टान्न भोजन को देख कर या सुन कर वहाँ जाने पर साधु की भोजन के प्रति आसक्ति देखी जाती है, इससे प्रवचन की लघुता लगती है, इत्यादि कारणों से नीरोग साधुओं के लिए वहाँ से आहार ग्रहण का निषेध किया गया है। रोगी साधु के लिए कारण बता कर लाने से प्रवचन की लघुता नहीं होने से रोगी के लिए निषेध नहीं किया है। ऐसी स्थिति नहीं होने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् मिष्टान्न भोजन की स्थिति नहीं होने पर आसक्ति का कारण नहीं होने से नीरोग साधुओं के लिए भी उन कुलों में जाने का निषेध नहीं है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे अण्णयरं भोयणजायं पडिगाहित्ता, सुब्भिं सुब्भिं भुच्चा दुब्भिं दुब्भिं परिट्ठवेइ, माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा। सुब्भिं वा दुब्भिं वा सव्वं भुंजे णो छड्डुए णो किंचिवि परिट्ठविज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - सुब्भिं सुब्भिं - अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट सुगंधित पदार्थ, **दुब्भिं दुब्भिं**- खराब खराब निःस्वाद दुर्गंध युक्त पदार्थ, **परिट्ठवेइ** - परठ दे, **णो छड्डुए** - छोडे नहीं, **णो किंचिवि परिट्ठविज्जा**- किंचित् मात्र भी नहीं परठे।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घरों से आहार लेकर सुगंध युक्त स्वादिष्ट - पदार्थ खाकर दुर्गंध युक्त निकृष्ट पदार्थ परठ दे तो वह मातृ स्थान का स्पर्श करता है (दोष का पात्र होता है) अतः साधु को ऐसा नहीं करना चाहिये किन्तु सुगंधित या दुर्गंधित सरस या नीरस, जैसा भी आहार हो सब का समभाव पूर्वक उपभोग करना चाहिये न तो कुछ छोड़ना चाहिये और न ही परठना चाहिये।

विवेचन - साधु का आहार स्वाद के लिए नहीं संयम पालन के लिए होता है अतः सरस नीरस जैसा भी आहार प्राप्त हो उसे अच्छे बुरे का भेद नहीं करते हुए समभाव से उपभोग करना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णयरं पाणगजायं पडिगाहित्ता पुप्फं पुप्फं आविइत्ता कसायं कसायं परिट्ठवेइ माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करिज्जा। पुप्फं पुप्फेइ वा कसायं कसाए ति वा सव्वमेयं भुंजिज्जा णो किंचिवि परिट्ठविज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - पुप्फं पुप्फं - मनोज्ञ (अच्छे) वर्ण गंध युक्त, **आविइत्ता** - पीकर, **कसायं कसायं** - वर्ण गंध रहित (अमनोज्ञ)।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घरों से जल ग्रहण करके उसमें से मनोज्ञ वर्ण गंध युक्त जल (मीठे और स्वाद युक्त पानी) को पीकर कषायैले-अमनोज्ञ वर्ण गंध वाले पानी को परठ दे तो वह मातृ स्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। अतः साधु ऐसा नहीं करे अपितु मीठा या कषायैला, मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ वर्ण गंध वाला जैसा भी पानी हो सब को पी जाय उसमें से किंचित् मात्र भी नहीं परठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी पानी को भी आहार की तरह अनासक्त भाव से ग्रहण करे। दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशक १ गाथा ७५ से ८१ तक में बताया गया है कि मधुर या खट्टा जैसा भी प्रासुक पानी आ जाय साधु को बिना खेद उसे ग्रहण कर लेना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुपरियावण्णं भोयणजायं पडिगाहित्ता बहवे साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया अदूरगया तेसिं अणालोइय अणामंतिय परिट्ठवेइ, माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा - से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा गच्छित्ता से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसंतो समणा ! इमे मे असणं वा पाणं वा खाइमं वा, साइमं वा बहुपरियावण्णं तं भुंजह णं से सेव वयंतं परो वइज्जा-आउसंतो समणा! आहारमेयं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा जावइयं जावइयं सरइ तावइयं तावइयं भोक्खामो वा पाहामो वा सव्वमेयं परिसडइ सव्वमेयं भोक्खामो वा पाहामो वा॥ ५४॥

कठिन शब्दार्थ - परियावण्णं - प्राप्त हुए, **बहु** - बहुत, **भोयणजायं** - भोजन जात, **साहम्मिया** - साधर्मिक (समान धर्मी), **संभोइया** - सांभोगिक, **समणुण्णा** - समनोज्ञ-अपने समान मूलोत्तर गुणों के धारक-समान आचार वाले, **अपरिहारिया** - अपारिहारिक-शुद्ध आचार वाले हैं, **अदूरगया** - दूर नहीं गये हुए अर्थात् नजदीक में, **अणालोइय** - दिखाये बिना, **अणामंतिय** - निमंत्रित किये बिना, **जावइयं** - जितना, **तावइयं** - उतना, **सरइ** - उपभोग कर सकेंगे, **भोक्खामो** - खा लेंगे, **पाहामो** - पी लेंगे, **परिसडइ**- खाया जा सकेगा।

भावार्थ - साधु या साध्वी प्राप्त हुए बहुत से अशनादि को ग्रहण करके लाये हैं और वह अपनी आवश्यकता से अधिक हो गया है अर्थात् नहीं खाया जा सका है तो साधर्मिक समान धर्मी समान आचार वाले या सांभोगिक साधु वहीं नजदीक विराजते हो तो उनको बिना पूछे, बिना आहार बताये और बिना आमंत्रित किये मुनि उस बढ़े हुए (शेष) आहार को परठ दे तो, मातृ स्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। अतएव साधु ऐसा न करे किन्तु बचे हुए आहार को लेकर उन साधर्मिक मुनियों के पास जाये और जाकर पहले उस आहार को दिखाकर इस प्रकार कहे कि "हे आयुष्मन् श्रमणो!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह अशनादिक आहार हमारे लिए ज्यादा है अतः इसका आप उपभोग कीजिये।" इस प्रकार कहने पर वे मुनि कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण! इस आहार में से हम जितना खा सकेंगे उतना उपभोग कर लेंगे। अथवा हम यह पूरा आहार खा-पी सकेंगे तो हम सारा काम में ले लेंगे। अन्यथा बचा हुआ आहार आपको वापिस दे देंगे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र पाठ से स्पष्ट होता है कि बचा हुआ आहार समान धर्मी, समान आचार विचार वाले और सांभोगिक साधु को ही देने का विधान है, अन्य को नहीं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा परं समुद्दिस्स बहिया णीहडं तं परेहिं असमणुण्णायं अणिसिट्ठं अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा तं परेहिं समणुण्णायं संणिसिट्ठं फासुयं लाभे संते जाव पडिगाहिज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ५५॥

॥ णवमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **णीहडं** - निकाला गया है, **असमणुण्णायं** - अनुज्ञा-अनुमति नहीं दी है, **अणिसिट्ठं** - सौंपा नहीं गया है-आहार को समर्पित नहीं किया है, **परेहिं** - गृहस्थों ने।

भावार्थ - भिक्षार्थ गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुए साधु या साध्वी यह जाने कि गृहस्थ ने यह आहार अन्य भाट आदि को उद्देश करके बनाया है, उस आहार को किसी नौकर आदि के साथ उसके घर भेज रहा है। यदि वह नौकर बीच में ही वह आहार साधु साध्वी को देने लगे तो साधु साध्वी उसे ग्रहण न करे क्योंकि गृहस्थ ने उस नौकर को ऐसी आज्ञा नहीं दी है कि तुम्हारी इच्छानुसार तुम इस आहार को किसी साधु साध्वी या अन्य किसी को दे सकते हो तथा जिसके लिये भेजा है उसको समर्पित नहीं किया है तथा उसको स्वीकार भी नहीं किया है तब तक उस आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण नहीं करे। किन्तु जिसके लिये भेजा है, नौकर ने ले जाकर उसे दे दिया है और उसने स्वीकार कर लिया है यदि उस आहार में से वह दाता देता है तो उसे प्रासुक और एषणीय समझकर साधु साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

यही संयमशील साधु साध्वी का सम्पूर्ण आचार है।

।। प्रथम अध्ययन का नववां उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्ययन का दसवाँ उद्देशक

से एगइओ साहारणं वा पिंडवायं पडिगाहित्ता ते साहम्मिए अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं खद्धं दलयइ, माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करिज्जा। से तमायाय तत्थ गच्छिज्जा तत्थ गच्छित्ता एवं वइज्जा - "आउसंतो समणा! संति मम पुरेसंथुया वा, पच्छा संथुया वा, तं जहा-आयरिए वा, उवज्झाए वा, पवित्ती वा, थेरे वा, गणी वा, गणहरे वा, गणावच्छेइए वा अवियाइं एएसिं खद्धं खद्धं दाहामि" से सेवं वयंतं परो वएज्जा - कामं खलु आउसो! अहापज्जत्तं णिसिराहि जावइयं जावइयं परो वयइ तावइयं तावइयं णिसिरिज्जा, सव्वमेयं परो वयइ सव्वमेयं णिसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **साहारणं** - साधारण, **पुरेसंथुया** - पूर्व परिचित-जिनके पास दीक्षा ग्रहण की हो, **पच्छासंथुया** - पश्चात् परिचित-जिनके पास ज्ञानादि सीखा हो, **पवित्ती** - प्रवर्त्तक, **थेरे** - स्थविर, **गणी** - गणी, **गणहरे** - गणधर, **गणावच्छेइए** - गणावच्छेदक, **अवियाइं** - ओर भी इत्यादि, **दाहामि**- देता हूँ, **अहापज्जत्तं** - यथा पर्याप्त, **णिसिराहि** - दे दो, **णिसिरिज्जा** - दे दे।

भावार्थ - कोई साधु समस्त मुनियों के लिए साधारण अर्थात् सम्मिलित आहार लाया हो परन्तु उन सब को पूछे बिना अपनी इच्छानुसार जिसे जैसा चाहे उसे वैसा आहार शीघ्र शीघ्र दे देता हैं तो वह मातृ स्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। अतः साधु को ऐसा नहीं करना चाहिये किन्तु ऐसे आहार को लेकर अपने गुरुजन आदि समस्त मुनियों के पास जाकर इस प्रकार कहे कि - "हे आयुष्मन् श्रमणो! मेरे पूर्व परिचित या पश्चात् परिचित आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर या गणावच्छेदक आदि को आपकी आज्ञा हो तो मैं उनको उत्तम और पर्याप्त आहार दे दूं?" ऐसा सुनकर वे उस साधु से इस प्रकार कहे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! जितना उन्हें आवश्यक हो उतना आहार दे दो। अगर वे सारा आहार देने की आज्ञा दें तो सारा आहार उनको दे दें।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि साधु को प्रत्येक कार्य आचार्य आदि की आज्ञा से करना चाहिये। उन्हें बिना बताए या उन्हें बिना पूछे न तो स्वयं आहार करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये और न ही अन्य साधुओं को देना चाहिए। आहार आदि कार्यों में माया छल कपट आदि का त्याग करके सरल भावों से साधना में संलग्न रहना चाहिये।

प्रस्तुत सूत्र में गण, संघ की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए सात पदवियों का उल्लेख किया है - १. आचार्य २. उपाध्याय ३. प्रवर्त्तक ४. स्थविर ५. गणी ६. गणधर और ७. गणावच्छेदक। मूल पाठ में आये **पुरेसंथुया** और **पच्छासंथुया** शब्दों का तात्पर्य दीक्षाचार्य एवं वाचनाचार्य से है। इसके सिवाय मंत्री, महामंत्री आदि पदवियाँ साधु को देना और लेना उचित नहीं है क्योंकि मंत्री, महामंत्री, राष्ट्र सन्त आदि पदवियाँ राजनैतिक और सांसारिक है। ठाणाङ्ग आदि अन्य आगमों में भी उपरोक्त सात पदवियों का ही उल्लेख मिलता है।

से एगइओ मणुण्णं भोयणजायं पडिगाहित्ता पंतेण भोयणेण पलिच्छाएइ 'मा मेयं दाइयं संतं दट्ठुणं सयमाइए, आयरिए वा जाव गणावच्छेइए वा णो खलु मे कस्सइ किंचि वि दायव्वं सिया', माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा। से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा गच्छित्ता पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे पडिग्गहं कट्टु इमं खलु इमं खलु त्ति आलोएज्जा णो किंचि वि णिगूहिज्जा॥

से एगइओ अण्णयरं भोयणजायं पडिगाहित्ता भद्दयं भद्दयं भुच्चा विवण्णं विरसमाहरइ, माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा॥ ५७॥

कठिन शब्दार्थ - मणुण्णं - मनोज्ञ, **पंतेण** - प्रान्त-नीरस (रूखा-सूखा), **पलिच्छाएइ**- आच्छादित कर देता है, **दाइमं संतं** - दिखाने पर, **दट्ठूणं** - देखकर, **सयं** - स्वयं, **आइए** - ले लेवे, **किंचि**- कुछ भी, **कस्सवि (इ)** - किसी को भी, **णो** - नहीं, **दायव्वं** - देना पडे, **उत्ताणए** - ऊंचा करके, **णिगूहिज्जा** - छिपावे, **भद्दयं** - अच्छा, **विवण्णं** - विवर्ण, **विरसं** - विरस।

भावार्थ - यदि कोई साधु भिक्षा में मनोज्ञ स्वादिष्ट और सरस आहार लाकर मन में विचार करे कि इस मनोज्ञ आहार को आचार्यादि , या अन्य साधु ले लेंगे परन्तु मेरे को तो किसी को भी इसमें से कुछ भी नहीं देना है ऐसा सोचकर वह उस आहार को रूखे-सूखे आहार से छिपा कर (ढंक कर) फिर आचार्यादि को बताता है तो वह मातृ स्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। अतः साधु को ऐसा नहीं करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। किन्तु मुनि उस आहार को लेकर आचार्य आदि के समीप जाये और पात्र को ऊँचा हाथ में खुला रख करके 'यह है, यह है' ऐसा कह कर सब पदार्थ दिखलावे और कुछ भी छिपाकर नहीं रखे।

यदि कोई साधु प्राप्त हुए आहार में से अच्छा-अच्छा (स्वादिष्ट) आहार खा कर और शेष बचे विरस-नीरस आहार को गुरु आदि को बतलावे तो वह दोष पात्र होता है (माया का सेवन करता है) अतः साधु को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु अपनी रसनेन्द्रिय के वश होकर सरस आहार को नीरस आहार से छिपा कर भी नहीं रखे और उसे गृहस्थ के घर में या मार्ग में खावे भी नहीं अपितु गृहस्थ के घर से जो भी आहार प्राप्त हुआ है उसे लोलुपता रहित होकर आचार्य आदि को दिखाए और उनके आदेशानुसार करे। अपने स्वाद एवं स्वार्थ के लिए किसी भी वस्तु को छिपा कर रखना मातृ स्थान का स्पर्श करना है यानी मायाचार का सेवन है। साधु को कपट का त्याग कर सदा सरल एवं निष्कपट जीवन जीना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा अंतरुच्छुयं वा, उच्छुगंडियं वा, उच्छुचोयगं वा, उच्छुमेरगं वा, उच्छुसालगं वा, उच्छुडालगं वा, सिंबलिं वा, सिंबलिथालगं वा, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे सिया भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए तहप्पगारं अंतरुच्छयं वा जाव सिंबलिथालगं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतरुच्छुयं** - ईख (इक्षु) के पर्व का मध्य भाग **उच्छुगंडियं** - गांठ वाला इक्षु खण्ड (गंडेरी), **उच्छुचोयगं** - पीले ईख के छिलके, **उच्छुमेरगं** - छिले हुए इक्षु की गंडेरी, **उच्छुसालगं** - ईख की शाखा, **उच्छुडालगं** - ईख का एक भाग अथवा पूरा ईख, **सिंबलिं** - मूंग आदि की भूनी हुई अचित्त फलियां, **सिंबलिथालगं** - वाल आदि की फली, **अस्सिं पडिग्गहियंसि** - इस पदार्थ को ग्रहण कर लेने पर, **अप्पे** - अल्प, **भोयणजाए**- भोजन योग्य (खाद्य पदार्थ) हो, **बहुउज्झिय धम्मिए** - बहुउज्झित धर्मा-फैकने योग्य अंश ज्यादा हो।

भावार्थ - गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट साधु या साध्वी ईख के पर्व का मध्य भाग, इक्षुखंड, पीले ईख के छिलके, छिले हुए इक्षु की गंडेरी, ईख की शाखा, छिले हुए ईख का अग्रभाग या एक भाग अथवा पूरा पूरा ईख तथा मूंग, वाल आदि की फलियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अन्य इसी प्रकार के पदार्थ जिनमें खाने योग्य अंश कम और फैंकने योग्य अंश ज्यादा हो अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु को ऐसे पदार्थ ग्रहण नहीं करने चाहिये जिनमें खाने योग्य भाग थोडा हो और फैंकने योग्य अधिक हो जैसे-ईक्षु खंड, मूंग, वाल आदि की फली जो आग आदि के प्रयोग से अचित्त हो चुकी है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा बहु अट्ठियं वा मंसं वा मच्छं वा बहुकंटगं अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे सिया भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए तहप्पगारं बहु अट्ठियं वा मंसं वा मच्छं वा बहुकंटगं लाभे संते जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **बहु अट्ठियं** - बहुत बीजों वाले, **मंसं** - जिन फलों में गुठलियां ज्यादा और गूदा कम हो, **बहुकंटगं** - बहुत कांटों वाली, **मच्छं** - मत्स्य जाति की वनस्पति विशेष।

भावार्थ - साधु या साध्वी बहुत बीजों (गुठलियों) युक्त फल के गूदे को और बहुत कांटों वाली मत्स्य नामक वनस्पति-जिसमें खाने योग्य भाग कम और फैंकने योग्य अंश ज्यादा है उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त '**बहुअट्ठियं मंसं**' और '**मच्छं वा बहुकंटगं**' शब्द का कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि बहुत हड्डियों वाला माँस और बहुत काँटों वाला मत्स्य। परन्तु यह अर्थ करना यहां बिल्कुल अप्रासंगिक और अनुचित हैं क्योंकि जैनागमों में मांसाहार का सर्वथा निषेध है और इसे नरक गति में जाने का कारण बताया है। इसलिए प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त मांस एवं मत्स्य शब्द सामिष आहार से नहीं अपितु फलों से संबंधित है। अतः उक्त शब्दों का वनस्पति विशेष अर्थ करना ही उचित है। आगमों एवं वैद्यक आदि कई शास्त्रों में कई स्थानों पर बीज (गुठली) के लिये '**अस्थि**' शब्द का प्रयोग हुआ है जैसे प्रज्ञापना सूत्र में कहा है - '**एगट्ठिया बहुबीयगा**' यानी एक अस्थि (बीज) वाले हरड आदि और बहुत अस्थि (बीज) वाले जैसे अनार, अमरूद आदि। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त शब्दों का वनस्पति अर्थ में प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत सूत्र के पूर्व भाग में वनस्पति का स्पष्ट निर्देश है और उत्तर भाग में मंस शब्द का उल्लेख है। इस तरह पूर्व एवं उत्तर भाग का परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होता है। एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही प्रकरण में वनस्पति एवं मांस का संबंध घटित नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि यहाँ अस्थि एवं मांस शब्द का प्रयोग गुठली एवं गूदा अर्थ में किया गया है।

पूज्य श्री आत्माराम जी म. सा. के द्वारा अनुवाद किये हुए आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पृष्ठ नं. ९२० से ९३३ तक में इस विषय को बहुत स्पष्ट किया है और अनेक वैद्यक ग्रन्थों में आए हुए वनस्पति वाचक शब्द दिये हैं जो ऊपर से तो (शब्दार्थ रूप से) माँस वाची दिखते हैं परन्तु वे सब शब्द वनस्पति वाचक हैं। विशेष जानने के लिये जिज्ञासुओं को वह स्थल देखना चाहिए।

इस विषय में प्रसिद्ध टब्बाकार उपाध्याय पण्डित रत्न श्री पार्श्व चन्द्र जी सूरि ने भी इस पाठ में आए हुए माँस और मत्स्य शब्द का अर्थ वनस्पति वाचक ही किया है जो सर्वथा उचित और आगमानुकूल हैं क्योंकि जैन साधु-साध्वी माँस और मदिरा के सर्वथा त्यागी होते हैं वे छह काय जीवों के रक्षक होते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे सिया णं परो बहुअट्ठिएणं मंसेण वा बहुकंटएणं मच्छेण वा उवणिमंतिज्जा-आउसंतो समणा! अभिकंखसि बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहित्तए? एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा आउसो त्ति वा भइणित्ति वा णो खलु मे कप्पइ से बहु अट्ठियं मंसं वा बहुकंटगं मच्छगं पडिगाहित्तए। अभिकंखसि मे दाउं जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि, मा य अट्ठियाइं से सेवं वयंतस्स परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहयंसि बहुअट्ठियं मंसं परिभाइत्ता णिहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहयं परहत्थंसि वा पर पायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उवणिमंतिज्जा** - निमंत्रित करे, **परहत्थंसि** - गृहस्थ के हाथ में, **परपायंसि** - गृहस्थ के पात्र में।

भावार्थ - कदाचित् साधु अथवा साध्वी को गृहस्थ निमंत्रित करें कि हे आयुष्मन् श्रमण! क्या आप यह बहुत गुठली वाला गूदेदार फल या बहुकंटक मत्स्य वनस्पति लेना चाहते हैं? तो ऐसे शब्दों को सुनकर और उन पर विचार कर कहे कि - हे आयुष्मन् ! या भगिनी! मुझे बहुत गुठलियों वाला गूदेदार फल और बहुकंटक वनस्पति लेना नहीं कल्पता है। यदि तुम मुझे देना चाहते हो तो इसमें जितना गूदा है (गुठली रहित खाद्य पदार्थ है)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उतना मुझे दे दो, गुठली मत दो। ऐसा कहने पर भी गृहस्थ अपने पात्र में से बहुत गुठलियों वाले गूदे को लाकर देने लगे तो वह मुनि उस पदार्थ को गृहस्थ के हाथ या पात्र में ही रहने दे और अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से आहच्च पडिगाहिए सिया तं णो हि त्ति वइज्जा, णो अणिहित्ति वइज्जा से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अप्पंडे जाव संताणए मंसगं मच्छगं भुच्चा अट्ठियाइं कंटए गहाय से तमायाय एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे झामथंडिलंसि वा जाव पमज्जिय पमज्जिय परिट्ठविज्जा॥ ५८॥

कठिन शब्दार्थ - णो हि त्ति वइज्जा - अच्छा न कहे, **णो अणिहित्ति वइज्जा** - न ही बुरा कहे।

भावार्थ - कदाचित् अगर कोई गृहस्थ भावुकतावश शीघ्रता से उक्त पदार्थ मुनि के पात्र में डाल दे तो साधु उसे भला-बुरा कुछ भी नहीं कहे किन्तु उस आहार को लेकर एकान्त स्थान में जाये और जाकर उद्यान या उपाश्रय में अंडों से यावत् मकडी के जालों से रहित भूमि देखकर प्रर्माजन कर गूदा फल के खाने योग्य सार भाग और मत्स्य वनस्पति (खाने योग्य पदार्थ) का उपभोग करें और फैंकने योग्य गुठलियों और कांटों को एकान्त स्थान में जाकर और प्रासुक अचित्त भूमि का प्रतिलेखन प्रर्माजन कर के परठ दे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कंटक आदि को एकान्त स्थान में परठने का विधान किया है इससे यह स्पष्ट होता है कि अस्थि एवं कन्टक आदि फलों में से निकलने वाले बीज (गुठली) या कांटे आदि ही हो सकते हैं। फलों में गुठली ही होती है न कि हड्डी। अतः यहाँ 'अट्ठि' शब्द गुठली के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अतः स्पष्ट है प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त मांस एवं मत्स्य शब्द वनस्पति वाचक है न कि मांस और मछली के वाचक है। इसलिए उक्त शब्दों के आधार पर जैन मुनियों को मांस मछली खाने वाला कहना नितान्त गलत है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे सिया से परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहए बिलं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं, परिभाइत्ता णिहट्टु दलइज्जा तहप्पगारं पडिग्गहयं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिगाहिज्जा। से आहच्च पडिगाहिए सिया तं च णाइदूरगए जाणिज्जा, से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा गच्छित्ता पुव्वामेव आलोइज्जा - आउसो त्ति वा भइणि-त्ति वा इमं किं ते जाणया दिण्णं, उदाहु अजाणया? से य भणिज्जा णो खलु मे जाणया दिण्णं, अजाणया दिण्णं, कामं खलु आउसो! इयाणिं णिसिरामि तं भुंजह वा णं परिभाएह वा णं तं परेहि समणुण्णायं समणुसिट्ठं तओ संजयामेव भुंजिज्ज वा पीइज्ज वा, जं च णो संचाएइ भोत्तए वा पायए वा साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया अदूरगया तेसिं अणुप्पदायव्वं सिया णो जत्थ साहम्मिया जहेव बहुपरियावण्णे कीरइ तहेव कायव्वं सिया॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ५९॥

॥ दसमोद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **बिलं** - खान का, **लोणं** - लवण-नमक, **उब्भियं** - झील में उत्पन्न हुआ (उद्भिज), **णाइदूरगए** - बहुत दूर नहीं, **समणुण्णायं**-आज्ञा मिलने पर, **समणुसिट्ठं**-सम्यक् प्रकार से।

भावार्थ - यदि कोई गृहस्थ भिक्षार्थ आए साधु या साध्वी को भीतर से अपने पात्र में रखे बिड का नमक या उद्भिज नमक लाकर उसमें से कुछ साधु को देने लगे तो इस प्रकार के लवणादि को गृहस्थ के पात्र या हाथ में रहे हुए ही को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करें।

अगर अकस्मात् ग्रहण कर लिया हो और गृहस्थ को समीपस्थ ही जानकर लवणादि को लेकर वहाँ जाय और गृहस्थ को दिखलाकर कहे कि - हे आयुष्मन् अथवा भगिनि! तुमने यह पदार्थ जान बूझ कर दिया है या अनजाने में दिया है? गृहस्थ कहे कि - मैं ने जानबूझ कर नहीं दिया है किन्तु अनजान से दे दिया है परन्तु अब मैं यह पदार्थ आपको देता हूँ अतः आप इसका उपभोग करें अथवा बांट लें। इस तरह गृहस्थ से आज्ञा प्राप्त कर साधु यतनापूर्वक उसे खाए अथवा पीवे। अगर स्वयं खाने पीने में असमर्थ हो तो समीपस्थ स्थित अन्य साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ अपारिहारिक साधुओं को दे देवे। यदि साधर्मी आदि साधु नजदीक न हो तो अधिक आहार परठने की विधि के अनुसार एकान्त निरवद्य स्थान में जाकर उसे यतना पूर्वक परठ दे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यही संयमशील साधु साध्वियों का समग्र आचार है।

विवेचन - शंका - नमक सचित्त होता है और उसके लिये अप्रासुक शब्द का प्रयोग भी हुआ है। फिर उसे खाने एवं सांभोगिक साधुओं में बांटने की आज्ञा कैसे दी गई है?

समाधान - आगम में जो खाने का आदेश दिया गया है, वह अचित्त नमक की अपेक्षा से दिया गया है। किसी शस्त्र के प्रयोग से जो नमक अचित्त हो गया है और वह भूल से दे दिया गया है तो गृहस्थ को पूछ कर उसके कहने (आज्ञा होने) पर साधु खा सकता है।

गृहस्थ के घर में पीसी हुई शक्कर और पीसा हुआ नमक दोनों होते हैं दोनों पास-पास रखे हुए हों और गृहस्थ शक्कर देना चाहता हो किन्तु भूल से नमक का पात्र उठाकर नमक दे दिया हो तो वैसी स्थिति में वापिस गृहस्थ को पूछकर उसकी आज्ञा लेकर उस अचित्त नमक को साधु-साध्वी काम में ले सकने की विधि यहां पर बतलाई गयी है।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त '**अफासुयं**' (अप्रासुक) शब्द सचित्त के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है अपितु अकल्पनीय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आगम की एक शैली रही है कि एक शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है।

समर्थ समाधान भाग १ के प्रश्न संख्या ११२ के उत्तर में इसके संबंध में अच्छी तरह से समझाया गया है। जिज्ञासुओं को वह स्थल देखना चाहिए।

।। प्रथम अध्ययन का दसवां उद्देशक समाप्त ।।

प्रथम अध्ययन का ग्यारहवां उद्देशक

भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे मणुण्णं भोयणजायं लभित्ता से य भिक्खू गिलाइ, से हंदह णं तस्साहरह, से य भिक्खू णो भुंजिज्जा तुमं चेव णं भुंजिज्जासि, से एगइओ भोक्खामि त्ति कट्टु पलिउंचिय पलिउंचिय आलोइज्जा तंजहा - इमे पिंडे, इमे लोए, इमे तित्तए, इमे कडुए, इमे कसाए, इमे अंबिले, इमे महुरे, णो खलु इत्तो किंचि गिलाणस्स सयइ त्ति माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा तहाठियं आलोइज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहाठियं गिलाणस्स सयइ त्ति तं जहा-तित्तयं तित्तएत्ति वा कडुयं कडुएत्ति कसायं कसायं अंबिलं अंबिलं महुरं महुरं॥ ६०॥

कठिन शब्दार्थ - **हंदह** - ले लो, **तस्स** - उसे, **आहरह** - दे दो, **पलिउंचिय** - छिपा कर, **इमे** - यह, **पिंडे** - पिण्ड-आहार, **लोए** - रूक्ष, **तित्तए** - तिक्त, **कडुए** - कटु, **कसाए** - कसैला, **अंबिले** - अम्ल-खट्टा, **महुरे** - मधुर-मीठा, **सयइत्ति** - उपयोगी, **तहाठियं**- तथावस्थित (वैसा), **जहाठियं** - यथावस्थित (जैसा)।

भावार्थ - भिक्षार्थी मुनि संभोगी या एक स्थान पर ठहरे हुए अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले मुनियों से इस प्रकार कहे कि- यह आहार आप ले लीजिये और आपके साथ वाले रुग्ण मुनि को दे दीजिये। यदि वह रोगी साधु नहीं खाये तो आप खा लेना। ऐसे आहार को प्राप्त करने वाला साधु मन में उस मनोज्ञ आहार को खाने का विचार कर आहार को छिपाते हुए उस मुनि से कहे कि- यह लाया हुआ भोजन आपके लिए पथ्य नहीं है, रूक्ष है, तिक्त है, कटु है, कसैला है, खट्टा है, मीठा है, यह आपके लिए उपयुक्त (उपयोगी) नहीं है तो ऐसा करने वाला साधु मातृ स्थान (माया कपट) का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। अतः साधु को इस प्रकार नहीं करना चाहिये। किन्तु जैसा भी आहार हो उसे वैसा ही दिखलावे और वैसा ही कहे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में रोगी साधु की निष्कपट भाव से सेवा-सुश्रूषा करने का आदेश दिया गया है। यदि स्वाद लोलुपता के वश साधु सरस आहार को छिपा कर उस रोगी साधु को दूसरे पदार्थ दिखाता है और उसके संबंध में गलत बातें बताता है तो वह माया-कपट का सेवन करता है।

भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा मणुण्णं भोयणजायं लभित्ता से य भिक्खू गिलाइ, से हंदह णं तस्साहरह, से य भिक्खू णो भुंजिज्जा आहारिज्जा से णं णो खलु मे अंतराए आहरिस्सामि, इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम्म॥ ६१॥

भावार्थ - भिक्षार्थी साधु साध्वी मनोज्ञ आहार प्राप्त करके संभोगी या एक स्थान पर ठहरे हुए अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले मुनियों से इस प्रकार कहे कि-यह आहार आप ले लो और आपके साथ रहने वाले रुग्ण साधु को दे दो। यदि वे रोगी साधु नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खाये तो यह आहार हमारे पास ले आना। इस प्रकार सुन कर आहार लेने वाला मुनि उत्तर दे कि-यदि मुझे कोई अंतराय (विघ्न) न हुआ तो मैं इस आहार को वापिस लाकर दे दूंगा। ऐसा कह कर वह मुनि आहार लाकर रोगी साधु को न दे और स्वयं खा जाये अथवा रोगी साधु को वह आहार बतावे और रोगी साधु उसे न खावे तब पूर्व कथनानुसार उस आहार को उन मुनियों को वापिस देने के लिये न जावे या बहाना बना दे तो ऐसा रस लोलुपी साधु मातृस्थान का स्पर्श करता है अर्थात् साधु आचार का उल्लंघन करता है। इसे कर्म बंध का कारण जानकर साधु साध्वी को ऐसा नहीं करना चाहिये।

विवेचन - पूर्व सूत्र में कथित विषय को प्रस्तुत सूत्र में विशेष स्पष्टता के साथ बताया गया है।

अह भिक्खू जाणिज्जा सत्त पिंडेसणाओ सत्त पाणेसणाओ। तत्थ खलु इमा पढमा पिंडेसणा-असंसट्ठे हत्थे असंसट्ठे मत्ते-तहप्पगारेण असंसट्ठेण हत्थेण वा मत्तेण वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा, फासुयं पडिग्गाहिज्जा। पढमा पिंडेसणा॥

कठिन शब्दार्थ - **पिंडेसणाओ** - पिंडैषणा-आहार लेने की प्रतिज्ञा, **पाणेसणाओ** - पानैषणा-पानी लेने की प्रतिज्ञा, **असंसट्ठे** - अलिप्त, **सयं** - स्वयं, **हत्थे** - हाथ, **मत्ते** - पात्र।

भावार्थ - साधु को सात पिंडैषणाएँ और सात पाणैषणाएँ जाननी चाहिये। उनमें से पहली पिंडैषणा यह है कि किसी भी वस्तु से हाथ और पात्र भरा हुआ (लिप्त) न हो। ऐसे अलिप्त हाथ और पात्र से मिलते हुए आहार की स्वयं याचना करे अथवा अन्य कोई गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक और एषणीय जान कर ग्रहण करे। यह प्रथम पिंडैषणा है।

अहावरा दोच्चा पिंडेसणा-संसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते तहेव दुच्चा पिंडेसणा॥

भावार्थ - दूसरी पिंडैषणा यह है कि अचित्त वस्तु से हाथ और पात्र लिप्त हों तो पूर्ववत् प्रासुक और एषणीय जान कर आहार ग्रहण करे। यह द्वितीय पिंडैषणा है।

अहावरा तच्चा पिंडेसणा-इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति-गाहावई वा जाव कम्मकरी वा तेसिं च णं अण्णयरेसु विरूवरूवेसु भायणजाएसु उवणिक्खित्त-पुव्वे सिया तंजहा - थालंसि वा, पिढरंसि वा, सरगंसि वा, परगंसि वा, वरगंसि वा, अह पुण एवं जाणिज्जा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते संसट्ठे वा हत्थे असंसट्ठे मत्ते से य पडिग्गहधारी सिया पाणिपडिग्गहिए वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-"आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा। एएणं तुमं असंसट्ठेण हत्थेण संसट्ठेण मत्तेण संसट्ठेण वा हत्थेण असंसट्ठेण मत्तेण अस्सिं पडिग्गहगंसि वा पाणिंसि वा णिहट्टु उचित्तु दलयाहि" तहप्पगारं भोयणजायं सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं जाव पडिगाहिज्जा। तइया पिंडेसणा॥

कठिन शब्दार्थ - विरूवरूवेसु - विभिन्न प्रकार के, **भायणजाएसु** - पात्रों में, **उवणिक्खित्त** - रखा हुआ (पडा हुआ) हो, **थालंसि** - थाल में, **पिढरंसि** - हांडी, तपेली में , **सरगंसि** - सूप छाज आदि में, **परगंसि** - बांस की टोकरी में, **वरगंसि** - बहु मूल्य पात्रों में, **पडिग्गहधारी** - पात्र धारी (स्थविर कल्पी), **पाणिपडिग्गहिए** - कर पात्री (जिनकल्पी), **उचित्तु दलयाहि** - ऊपर से हमें दे दो।

भावार्थ - तीसरी पिंडैषणा यह है कि-इस संसार में पूर्वादि चारों दिशा में कितने ही गृहस्थ गृहपत्नी यावत् दास दासी श्रद्धालु जीव होते हैं। उनके यहाँ थाल, हांडी, सूप, छाब (बांस की टोकरी) अथवा बहुमूल्य नाना प्रकार के पात्रों में अशनादिक आहार रखा हुआ होता है। साधु ऐसा जाने कि गृहस्थ के हाथ अलिप्त है और पात्र लिप्त है अथवा लिप्त हाथ है और अलिप्त पात्र है तो ऐसे समय पात्रधारी अथवा कर-पात्री साधु पूर्व में ही देख कर उसे ऐसा कहे कि - 'हे आयुष्मन् अथवा हे बहिन! तुम अलिप्त हाथ और लिप्त पात्र से हमारे पात्र या हाथ में आहार ऊपर से दे दो। इस प्रकार के भोजन की स्वयं याचना करे या अन्य कोई गृहस्थ बिना मांगे लाकर देवे तो प्रासुक और एषणीय जान कर ग्रहण करे। यह तीसरी पिंडैषणा है।

अहावरा चउत्था पिंडेसणा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा-पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे अप्पे पज्जवजाए तहप्पगारं पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा सयं वा णं जाइज्जा जाव पडिगाहिज्जा। चउत्था पिंडेसणा॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पे - अल्प-अभाव (रहित), **पच्छाकम्मे** - पश्चात् कर्म, **पज्जवजाए** - पर्यव जात।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - चौथी पिण्डैषणा इस प्रकार है- साधु या साध्वी पौवा, मुरमुरा, तुष रहित शाल्यादि यावत् भुग्न शाल्यादि के चावल को-जिसमें पश्चात् कर्म न हो और पर्यवजात भी न हो स्वयं मांग ले अथवा अन्य कोई गृहस्थ बिना मांगे ही दे तो प्रासुक एवं एषणीय जान कर ग्रहण कर ले। यह चौथी पिंडैषणा है।

अहावरा पंचमा पिंडेसणा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उग्गहियमेव भोयणजायं जाणिज्जा तंजहा-सरावंसि वा, डिंडिमंसि वा, कोसगंसि वा, अह पुण एवं जाणिज्जा बहुपरियावण्णे पाणीसु दगलेवे, तहप्पगारं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, सयं वा जाइज्जा जाव पडिगाहिज्जा, पंचमा पिंडेसणा॥

कठिन शब्दार्थ - उग्गहियमेव - खाने के लिये पात्र में निकाला हुआ, **भोयणजायं**- आहार, **सरावंसि** - सराव अर्थात् मिट्टी के सकोरे में, **डिंडिमंसि** - कांसी के बर्तन में, **कोसगंसि** - कोशक में, **पाणीसु दगलेवे** - हाथ-पात्र आदि में पानी का लेप सूख गया हो।

भावार्थ - साधु या साध्वी ऐसी प्रतिज्ञा करे कि जो भोजन गृहस्थ ने स्वयं के खाने के लिए सकोरे में, कांसी की थाली में अथवा मिट्टी के किसी पात्र विशेष में निकाला हुआ रखा हो और उस गृहस्थ के हाथ अचित्त हो चुके हो वही आहार ग्रहण करूंगा। तथाप्रकार के आहार को प्रासुक जानकर साधु स्वयं मांग ले अथवा गृहस्थ स्वयं देने लगे तो ग्रहण कर ले। यह पांचवी पिंडैषणा है।

अहावरा छट्ठा पिंडेसणा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पग्गहियमेव भोयणजायं जाणिज्जा-जं च सयट्ठाए पग्गहियं जं च परट्ठाए पग्गहियं तं पायपरियावण्णं तं पाणिपरियावण्णं फासुयं जाव पडिगाहिज्जा-छट्ठा पिंडेसणा॥

कठिन शब्दार्थ - सयट्ठाए - अपने लिए, **पग्गहियं** - निकाला हुआ, **परट्ठाए** - दूसरों के लिए।

भावार्थ - साधु या साध्वी प्रतिज्ञा करे कि जो भोजन गृहस्थ ने अपने लिये अथवा दूसरों के लिये पात्र में से निकाला है परन्तु किसी ने उसका उपभोग नहीं किया है तो वह भोजन गृहस्थ के पात्र में हो या हाथ में हो उसे प्रासुक और एषणीय जान कर ग्रहण करना-यह छट्ठी पिंडैषणा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहावरा सत्तमा पिंडेसणा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे बहुउज्झियधम्मियं भोयणजायं जाणिज्जा जं च अण्णे बहवे दुपय चउप्पय समण-माहण-अतिहि-किवण वणीमगा णावकंखंति तहप्पगारं उज्झियधम्मियं भोयणजायं सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा जाव फासुयं पडिगाहिज्जा। सत्तमा पिंडेसणा। इच्चेयाओ सत्त पिंडेसणाओ॥

भावार्थ - इसके अनन्तर सातवीं पिण्डैषणा इस प्रकार है साधु या साध्वी जो आहार फैंकने योग्य हो, जिसको बहुत से पशु, पक्षी, श्रमण, ब्राह्मण भिखारी आदि भी नहीं चाहते ऐसे उज्झित धर्म वाले आहार की स्वयं याचना करे अथवा अन्य कोई गृहस्थ दे तो प्रासुक एवं एषणीय जानकर ग्रहण करे। इस प्रकार की प्रतिज्ञा सातवीं पिंडैषणा है। ये सब सात पिंडैषणाएं हैं।

विवेचन - जो खुरचन (बर्तन में नीचे रहा हुआ) तथा बढा हुआ आहार तथा सुख गया हो और ठण्डा हो गया हो-जिसको अच्छा आहार मिलते हुए कोई भी उस निम्न आहार की इच्छा नहीं करे ऐसे आहार को 'उज्झित आहार' कहते हैं।

अहावराओ सत्त पाणेसणाओ-तत्थ खलु इमा पढमा पाणेसणा, असंसट्ठे हत्थे असंसट्ठे मत्ते तं चेव भाणियव्वं। णवरं चउत्थाए णाणत्तं-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणिज्जा तं जहा-तिलोदगं वा, तुसोदगं वा, जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे तहेव पडिगाहिज्जा॥ ६२॥

कठिन शब्दार्थ - **तं** - वह, **च** - और, **एव** - ही, **भाणियव्वं** - कहना चाहिए, **णवरं** - इतना विशेष, **चउत्थाए** - चौथी में, **णाणत्तं** - नानात्व-फर्क (विशेषता)।

भावार्थ - इसके पश्चात् सात पानैषणाएँ कही गयी हैं उनमें से पहली पानैषणा यह है - हाथ और पात्र अलिप्त हो-इत्यादि सब पिंडैषणा के समान समझना चाहिए परन्तु चौथी पानैषणा में विशेषता यह है कि साधु या साध्वी तिल का धोवन, तुष का धोवन, जौ का धोवन, चावल का पानी (ओसामन) आदि धोवनों के विषय में जाने और वही प्रासुक और एषणीय धोवन ग्रहण करे जिसमें पश्चात् कर्म नहीं लगता हो अर्थात् पात्र में लेप आदि नहीं लगता हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विशिष्ट अभिग्रहधारी मुनियों के लिये सात पिंडैषणा और सात पानैषणा का वर्णन किया गया है। ये अभिग्रह जिनकल्प एवं स्थविरकल्प दोनों तरह के मुनियों के लिए है।

सात पिण्डैषणाओं के नाम इस प्रकार हैं - १. असंसृष्टा २. संसृष्टा ३. उद्धृता ४. अल्पलेपा (अलेपा-लेप रहित) ५. उपस्थिता या उद्गृहीता ६. प्रगृहीता और ७. उज्झितधर्मिका। तथा इसी प्रकार संक्षेप में सात पानैषणाएँ इस प्रकार हैं - १. असंसृष्टा २. संसृष्टा ३. उद्धता ४. अल्पलेपा (लेप रहित) ५. उद्गृहीता ६. प्रगृहीता और ७. उज्झित धर्मिका।

अलिप्त हाथ व अलिप्त पात्र एवं अल्प लेप तथा अल्प पश्चात्कर्म का आशय इस प्रकार है - जिस पानी से हाथ-पात्रादि स्निग्ध (चिकने) अथवा खराब होवे और जिस पानी से खरड़ा (भरा) हुआ पात्र दूसरे पानी से धोये बिना रात्रि में नहीं रख सकते इसलिए इनको सलेप कहा जाता है। परन्तु जो उष्ण पानी, राख का पानी (वासण धोया हुआ पानी), तिल, तुष (फोंतरा-छिलके), जव, चावलादि से धोये हुए पानी का लेप पात्र के नहीं लगता है। इन पानी से खरडे हुए पात्रों को दूसरे पानी से धोये बिना-मात्र पोंछ कर रात्रि में रख सकते हैं। इसलिए आगमकारों ने 'अल्पलेप वाला पानी' कहाहै। इस पानी को लेने से '**अप्पे पच्छाकमे**' अर्थात् पात्र को दूसरे पानी से धोने रूप पश्चात्कर्म नहीं करना पड़ता है, ऐसे पानी को अलिप्त पात्र वाला समझना चाहिए। ऐसा पानी चौथी पाणैषणा में ग्रहण किया जाता है।

दो प्रकार के मुनि होते हैं यथा - १. गच्छान्तर्गत अर्थात् गच्छ में रहे हुए स्थविर कल्पी। २. गच्छविनिर्गत - अर्थात् आचार्य की आज्ञा लेकर गच्छ से निकल कर जिनकल्प अङ्गीकार करने वाले जिनकल्पी। इन सात पिण्डैषणाओं में से जिनकल्पी पांच पिण्डैषणाओं से आहार ग्रहण कर सकता है। पहली और दूसरी दो पडिमाओं से नहीं। पहली पडिमा इस प्रकार है - असंसृष्ट हाथ, असंसृष्ट पात्र और सावशेष द्रव्य। दूसरी पडिमा इस प्रकार है - संसृष्ट हाथ, संसृष्ट पात्र, सावशेष द्रव्य। गृहस्थ के यहाँ सावशेष द्रव्य नहीं होने (रहने) पर भी गच्छ वालों को बाल, ग्लान आदि साधुओं से युक्त होने से लेना कल्पता है। स्थविर कल्पी मुनि सातों पडिमाओं में से किसी भी पडिमा में आहार पानी ग्रहण कर सकता है।

सातवीं पानैषणा में 'उज्झित पानी' का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - गुड़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वगैरह के घड़े का धोया हुआ पानी आदि जिसको कोई भी पीने की इच्छा नहीं करे। वह 'उज्झित पानी' गिना जाता है

इच्चेयासिं सत्तण्हं पिंडेसणाणं सत्तण्हं पाणेसणाणं अण्णयरं पडिमं पडिवज्जमाणे णो एवं वइज्जा-मिच्छा पडिवण्णा खलु एए भयंतारो अहमेगे सम्मं पडिवण्णे। जे एए भयंतारो एयाओ पडिमाओ पडिवज्जित्ता णं विहरंति जो य अहमंसि एयं पडिमं पडिवज्जित्ताणं विहरामि सव्वे वि ते उ जिणाणाए उवट्ठिया अण्णुण्णसमाहीए एवं च णं विहरंति॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ६३॥

कठिन शब्दार्थ - पडिमं - प्रतिमा, **पडिवज्जमाणे** - ग्रहण करते हुए, **मिच्छा** - मिथ्या, **पडिवण्णा** - प्रतिपन्न-सम्यक् प्रकार से प्रतिज्ञा ग्रहण की है, **भयंतारो** - भय से रक्षा करने वाले-साधु, **सम्मं** - सम्यक्, **पडिवण्णे** - प्रतिपन्न, **जिणाणाए** - जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा में, **उवट्ठिया** - उपस्थित, **अणुण्णसमाहीए** - परस्पर समाधि में।

भावार्थ - इस प्रकार इन सात पिंडैषणाओं और सात पानैषणाओं में से किसी भी एक प्रतिमा को धारण करने वाला साधु इस प्रकार नहीं कहे कि- "ये सब अन्य साधु साध्वी सम्यक् प्रकार से प्रतिमाओं को वहन करने वाले नहीं है केवल मैं अकेला ही सम्यक् प्रकार से प्रतिमा धारण करने वाला हूँ" परन्तु इस प्रकार कहे कि-ये सब विचरण करने वाले प्रतिमाधारी साधु साध्वी (और मैं स्वयं भी प्रतिमा धारण करके) जिनाज्ञानुसार संयम में उद्यत हैं और परस्पर समाधि पूर्वक विचरते हैं, इस तरह अहंकार भाव का त्याग करे।

यही साधु साध्वियों का समग्र आचार है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु या साध्वी को अपने त्याग का अपने अभिग्रह आदि का गर्व नहीं करना चाहिए और अन्य साधुओं को अपने से हीन नहीं समझना चाहिये। उसे तो गुण सम्पन्न साधकों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना चाहिये और उनके गुणों की प्रशंसा करनी चाहिये, इसी से आत्मा का विकास होता है।

॥ प्रथम अध्ययन का ग्यारहवां उद्देशक समाप्त॥

❀ पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शय्यैषणा नामक द्वितीय अध्ययन

प्रथम उद्देशक

पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन में यह बताया गया है कि साधु को कैसा आहार किस तरह से ग्रहण करना चाहिये। आहार ग्रहण करने के पश्चात् यह प्रश्न पैदा होता है कि आहार किस स्थान में किया जाय? कहां ठहरा जाय? उक्त प्रश्नों का समाधान इस दूसरे शय्यैषणा नामक अध्ययन में किया गया है। शय्या चार प्रकार की कही है-१. द्रव्य शय्या २. क्षेत्र शय्या ३. काल शय्या और ४. भाव शय्या। प्रस्तुत अध्ययन में द्रव्य शय्या का वर्णन करते हुए शय्या के गुण दोषों का वर्णन किया गया है-

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा उवस्सयं एसित्तए, अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा। से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणयं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **ठाणं** - स्थान-कायोत्सर्ग, **उवस्सयं** - उपाश्रय की, **एसित्तए** - गवेषणा करना, **सेज्जं** - शय्या-संस्तारक-संथारे का स्थान, **णिसीहियं** - निषीधिका-स्वाध्याय भूमि।

भावार्थ - साधु या साध्वी उपाश्रय की गवेषणा के लिए ग्राम यावत् राजधानी में जाकर उपाश्रय को जाने, जो उपाश्रय अंडों, यावत् मकड़ी के जालों आदि से युक्त हो वहां कायोत्सर्ग शय्या-संस्तारक और स्वाध्याय न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणयं तहप्पगारे उवस्सए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता, तओ संजयामेव ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥

भावार्थ - साधु या साध्वी जिस उपाश्रय को अण्डों, जीव जंतुओ मकड़ी के जालों आदि से रहित जाने, वैसे उपाश्रय में प्रतिलेखना एवं प्रमार्जना करके यतना पूर्वक ठहरे, बैठे या स्वाध्याय करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु या साध्वी को ऐसे निर्दोष एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव जंतुओं से रहित उपाश्रय (ठहरने के स्थान) की गवेषणा करनी चाहिये जिससे संयम की विराधना न हो।

से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा अस्सिंपडियाए (अस्संपडियाए) एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ तहप्पगारे उवस्सए पुरिसंतरकडे वा अपुरिसंतरकडे वा जाव आसेविए वा अणासेविए वा णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा। एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं बहवे साहम्मिणीओ। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा बहवे समण माहण-अतिहि-किवण वणीमए पगणिय पगणिय समुद्दिस्स तं चेव भाणियव्वं॥

भावार्थ - जो उपाश्रय किसी एक साधु के उद्देश्य से प्राण, भूत, जीव, सत्त्व आदि का आरंभ करके बनाया गया है, साधु के लिए खरीदा गया है, उधार लिया गया है, निर्बल से छीन कर लिया गया है, मालिक की आज्ञा लिये बिना प्राप्त किया गया है, ऐसा उपाश्रय चाहे उसके स्वामी ने दूसरे को सौप दिया हो (पुरुषान्तर कृत हो या न हो) सेवन किया हुआ हो या अनासेवित हो, उसमें साधु स्थान (कायोत्सर्ग), शय्या और स्वाध्याय न करे। अर्थात् उस उपाश्रय में नहीं ठहरे।

इसी प्रकार जो उपाश्रय बहुत साधुओं को उद्देश्य करके अथवा एक साध्वी या बहुत सी साध्वियों को उद्देश्य करके बनाया या खरीदा आदि गया हो उसमें भी साधु या साध्वी स्थान-कायोत्सर्ग, शय्या आदि न करे। अर्थात् उस उपाश्रय में नहीं ठहरे।

जो उपाश्रय बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, भिखारियों आदि के निमित्त से षट्काय जीवों का आरंभ करके बनाया गया है खरीदा आदि गया है वह पुरुषान्तर कृत हो या अपुरुषान्तर कृत हो तो ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग, शय्या संस्तारक एवं स्वाध्याय न करे। अर्थात् उस उपाश्रय में नहीं ठहरे।

विवेचन - श्रमण शब्द से पांच प्रकार के श्रमणों का ग्रहण होता है। यथा - १. निर्ग्रन्थ (जैन मुनि) २. शाक्य (बौद्ध भिक्षु) ३. तापस ४. गैरुक और ५. आजीविक (गोशालक के अनुयायी)। इन पांचों के साथ जब '**पगणिय पगणिय**' शब्द आता है तब जैन साधु भी इन के साथ हैं, ऐसा समझना चाहिए। इस आलापक में **पगणिय पगणिय**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः इसमें जैन श्रमण भी सम्मिलित है अतः ऐसा उपाश्रय चाहे पुरुषान्तर कृत यावत् आसेवित भी हो तो भी जैन साधु-साध्वी को उसमें नहीं ठहरना चाहिए क्योंकि वह आधाकर्म दोष युक्त है।

यहाँ मूल पाठ में '**अस्सिंपडियाए**' शब्द दिया है जिसकी संस्कृत छाया 'एतत्प्रतिज्ञया' की है। जिसका अर्थ है 'साधु के निमित्त'। परन्तु इसी आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के प्रथम उद्देशक में ऐसा पाठ आया है - '**अस्संपडियाए**' जिसकी संस्कृत छाया है - 'अस्वप्रतिज्ञया'। स्व शब्द के चार अर्थ होते हैं - १. आत्मा २. आत्मीय ३. ज्ञाति-जाति ४. धन। यहाँ पर स्व शब्द का अर्थ धन लिया गया है 'अ' का अर्थ है नहीं। अर्थात् जिसके पास धन नहीं है ऐसा निर्ग्रन्थ साधु। यहाँ **अस्संपडियाए** शब्द आगमानुकूल और उचित प्रतित होता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा बहवे समण-माहण-अतिहि किवण-वणीमए समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं जाव चेएइ तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडे जाव आसेविए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥

भावार्थ - जो उपाश्रय बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, भिखारी आदि को उद्देश्य करके षट्काय के जीवों का समारंभ करके बनाया गया है, पुरुषान्तर कृत नहीं हुआ है और अभी तक उसका सेवन नहीं किया गया हो अर्थात् मकान मालिक अथवा जिनके लिये बनाया गया है वे ब्राह्मण अतिथि आदि नहीं ठहर गये हो तो जैन साधु साध्वी उसमें नहीं ठहरे। यदि ऐसा जाने कि वह उपाश्रय पुरुषान्तर कृत है, उसके मालिक द्वारा अधिकृत है, परिभुक्त तथा आसेवित-दूसरों ने काम में ले लिया गया है तो साधु या साध्वी भलीभांति देखकर, पूंजकर यतना के साथ वहां कायोत्सर्ग, शय्या और स्वाध्याय आदि करे। अर्थात् ऐसे उपाश्रय में साधु साध्वी ठहर सकते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र से स्पष्ट है कि साधु साध्वी के निमित्त छह काय जीवों की हिंसा करके जो मकान बनाया गया है तथा जो उद्गम आदि दोषों से युक्त है तो साधु साध्वी को उस मकान में नहीं ठहरना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा असंजए भिक्खुपडियाए कडिए वा उक्कंबिए वा छण्णे वा लित्ते वा घट्ठे वा मट्ठे वा संमट्ठे वा संपधूमिए वा तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा-पुरिसंतरकडे जाव आसेविए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव चेइज्जा॥ ६४॥

कठिन शब्दार्थ - **कडिए** - लकड़ी आदि से बनाया हो, **उक्कंबिए** - बांस की खपच्चियों से बांधा हो (बनाया हो), **छण्णे** - घास आदि से आच्छादित किया हो, **लित्ते** - गोबर आदि से लींपा (लिप्त) हो, **घट्ठे** - संवारा हो, पोता हो, **मट्ठे** - घिस कर स्वच्छ किया हो, **संमट्ठे** - झाड बुहार कर साफ किया हो, **संपधूमिए** - धूप से सुगंधित किया हो।

भावार्थ - जो उपाश्रय असंयत (गृहस्थ) ने साधु साध्वी के निमित्त से बनाया हो, लकड़ी के पट्टियों या बांस की खपच्चियों से बनाया गया हो, घास आदि से आच्छादित किया हो, गोबर आदि से लींपा हो, संवारा हो, घिसा हो, झाड बुहार कर साफ किया हो, धूप आदि से सुगंधित किया हो, स्वामी के द्वारा उपयोग में न लिया गया हो, अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो वहां मुनि शय्या स्थान या स्वाध्याय न करे। यदि ऐसा ज्ञात हो कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित काम में लिया जा चुका है तो यतना पूर्वक प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके वहां ठहरे, शय्या संस्तारक और स्वाध्याय आदि करे।

विवेचन - जो मकान साधु साध्वी के लिए तो नहीं बनाया गया है परन्तु उसमें साधु के निमित्त फर्श आदि को लीपा पोता गया है या उसमें सफेदी आदि कराई गई है तो साधु को उस मकान में तब तक नहीं ठहरना चाहिये जब तक वह पुरुषान्तरकृत नहीं हो गया हो। इसी प्रकार जो मकान अन्य श्रमणों (शाक्य, तापस, गैरुक, आजीविक आदि) के लिए अथवा अन्य गृहस्थों के ठहरने के लिए बनाया गया है जैसे धर्मशाला आदि। ऐसे स्थानों में उनके ठहरने के पश्चात् पुरुषान्तरकृत होने पर साधु साध्वी उसमें ठहर सकते हैं।

गृहस्थ स्वयं के लिए मकानादि बनावे तब तो पुरुषान्तरकृत होने के पूर्व नहीं उतरना चाहिए। साधारणतया छादन, लेपन प्रमार्जनादि गृहस्थ ने अपने लिए किया हो तो उसके लिए पुरुषान्तरकृत का उल्लेख देखने में नहीं आया है। तथापि गृहस्थ के काम में आ जाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के बाद आशंका का कारण नहीं रहता है। गृहस्थ के लिए बने हुए नये मकान में उतरने से गृहस्थ के शकुनादि समझने की संभावना रहती है। अतः नहीं उतरना चाहिए। इस प्रकार मकान में लीपना, पोतना, छपरा बनाना, वस्तुएं इधर-उधर रखना, कचरा निकालना आदि कार्य साधु के लिए गृहस्थ के द्वारा किए जाने पर बिना पुरुषान्तरकृत नहीं ठहरना चाहिए और गृहस्थ कचरादि निकालता हो तो मना कर देना और नहीं माने तो नहीं ठहरना चाहिए। पुरुषान्तरकृत होने के बाद ठहर सकते हैं। साधु के लिए नींव से बनाया हुआ मकान सदोष है या नीचे का मकान तो निर्दोष है परन्तु ऊपर का मंजिल साधु के लिए बनाया या कोई एकाध कमरा बनाया है तो जो भाग निर्दोष है, वहाँ ठहर सकता है तथा साधु के लिए बनाए हुए भाग को आधाकर्मी समझ कर हमेशा के लिए वर्जन करना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा - असंजए भिक्खुपडियाए खुड्डियाओ दुवारियाओ महल्लियाओ कुज्जा, जहा पिंडेसणाए जाव संथारगं संथारिज्जा बहिया वा णिण्णक्खू तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडे जाव आसेविए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव जाव चेइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - खुड्डियाओ दुवारियाओ - छोटे द्वार को, **महल्लियाओ कुज्जा** - बडा करे, **संथारगं संथारिज्जा** - बिछौना बिछावे, **णिण्णक्खू** - निकाले।

भावार्थ - असंयत (गृहस्थ) ने साधु के निमित्त से उपाश्रय के छोटे द्वार को बड़ा अथवा बड़े द्वार को छोटा बनाया हो, कांटे आदि को दूर कर ठहरने योग्य बनाया हो शय्या संस्तारक भीतर से बाहर या बाहर से भीतर रखा हो ऐसा उपाश्रय जो अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो साधु या साध्वी वहां नहीं रहे। यदि ऐसा जाने कि उपाश्रय दूसरे को दे दिया है उसका उपयोग किया जा चुका है तो यतना पूर्वक प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके वहां निवास, शय्या और स्वाध्याय आदि कर सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा - असंजए भिक्खुपडियाए उदगप्पसूयाणि वा कंदाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा ठाणाओ ठाणं साहरइ बहिया वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिण्णक्खू तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडे जाव चेइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उदगप्पसूयाणि** - उदक प्रसूत-जल से उत्पन्न हुए, **साहरइ** - ले जाता है। **णिण्णक्खू** - निकालता है।

भावार्थ - यदि कोई गृहस्थ साधु के निमित्त से जल से उत्पन्न होने वाले कंद, मूल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अथवा अन्य किसी हरी वनस्पति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है अथवा अंदर से बाहर निकालता है तो ऐसा उपाश्रय जो अपुरुषान्तरकृत एवं अनासेवित हो साधु के लिए अकल्पनीय है। यदि ऐसा जाने कि वह पुरुषान्तरकृत एवं सेवन किया हुआ है तो प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर वहां यतना पूर्वक कायोत्सर्ग, शय्या और स्वाध्याय आदि कर सकता है अर्थात् वहाँ ठहर सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-असंजए भिक्खुपडियाए पीढं वा फलगं वा णिस्सेणिं वा उदूखलं वा ठाणाओ ठाणं साहरइ, बहिया वा णिण्णक्खू तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव णो ठाणं वा चेइज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडे जाव चेइज्जा॥ ६५॥

कठिन शब्दार्थ - उदूखलं - ऊखल को।

भावार्थ - असंयत (गृहस्थ) साधु साध्वी के निमित्त से पीठ, फलक, निसैनी (निसरणी) या ऊखल आदि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है अथवा बाहर निकालता है तो इस प्रकार का उपाश्रय जो अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो, साधु साध्वी के लिए कल्पनीय नहीं है। अगर ऐसा जाने कि वह पुरुषान्तरकृत और अन्य के उपयोग में आ चुका है तो प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उसमें निवास, शय्या एवं स्वाध्याय आदि कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थ ने साधु के निमित्त उपाश्रय के दरवाजे छोटे बड़े किए हैं या कन्द, मूल, वनस्पति आदि को दूसरे स्थान पर रखा है उपाश्रय को ठहरने योग्य बनाया है तथा उसमें स्थित पीठ फलक आदि को भीतर से बाहर या बाहर से भीतर रखा है उस स्थान में गृहस्थ ने निवास किया या सामायिक संवर आदि धार्मिक क्रियाएं करने के काम में लिया हो तो साधु उस मकान में ठहर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त सूत्र में गृहस्थ के द्वारा पीठ, फलक आदि वस्तुओं को उठाने पर उस उपाश्रय में रहना अकल्पनीय बताया है। स्वयं साधु के द्वारा इधर-उधर बिखरे सामान को एक तरफ रखने में बाधा नहीं समझी जाती है परन्तु बिस्तर आदि अलग रखना शोभनिक नहीं दिखता है। कुर्सी आदि स्वयं इधर-उधर कर सकते हैं। गृहस्थ के द्वारा अयतना पूर्वक सामान इधर-उधर किए जाने पर उस समय तो वर्जन करना ही उचित है एवं वह घर भी असूझता करना ही ध्यान में आता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा तंजहा - खंधंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि णण्णत्थ आगाढागाढेहिं कारणेहिं, ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा णो चेइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतलिक्खजायंसि** - अंतरिक्षजात-आकाश-ऊंचे स्थान में, **हम्मियतलंसि** - हर्म्यतल - ऊपर की अट्टालिका, **आगाढागाढेहिं**- गाढागाढ-किसी विशेष या प्रगाढ।

भावार्थ - साधु या साध्वी स्तंभ पर, मचान पर, माले पर, प्रासाद (दूसरी मंजिल) पर, महल पर या अन्य किसी ऊंचे स्थान पर निर्मित उपाश्रय में बिना किसी कारण विशेष के निवास, शय्या और स्वाध्याय आदि न करे।

से आहच्च चेइए सिया णो तत्थ सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा हत्थाणि वा, पायाणि वा, अच्छीणि वा, दंताणि वा, मुहं वा, उच्छोलिज्ज वा, पहोइज्ज वा, णो तत्थ ऊसढं पकरेज्जा तं जहा - उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा, वंतं वा, पित्तं वा, पूयं वा, सोणियं वा, अण्णयरं वा, सरीरावयवं वा, केवली बूया-आयाणमेयं, से तत्थ ऊसढं पकरेमाणे पयलिज्ज वा पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलेमाणे वा पवडेमाणे वा हत्थं वा जाव सीसं वा अण्णयरं वा कायंसि इंदियजायं लूसिज्ज वा पाणाणि वा, भूयाणि वा, जीवाणि वा, सत्ताणि वा, अभिहणिज्ज वा जाव ववरोविज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा, एस हेऊ, एस कारणे, एस उवएसे जाव जं तहप्पगारे उवस्सए अंतलिक्खजाए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **हत्थाणि** - हाथ, **पायाणि** - पांव, **अच्छीणि** - आंख, **दंताणि** - दांत, **ऊसढं**- मल-मूत्र आदि का त्याग, **वंतं** - वमन, **पित्तं** - पित्त, **पूयं** - पीप, **सोणियं**- शोणित-रुधिर, **सरीरावयवं**- शरीर संबंधी अशुचि, **अभिहणिज्ज** - विराधना हो, **ववरोविज्ज**- प्राण रहित हो जाय, **अंतलिक्खजाए**- आकाशवर्ती-ऊंचे स्थान में स्थित।

भावार्थ - कदाचित् कारणवश ऐसे स्थानों पर रहना पडे तो वहां शीत या उष्ण (प्रासुक) जल से हाथ, पांव, आंख, दांत, मुंह आदि एक बार या अधिक बार नहीं धोए। वहां उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) कफ, नाक का मैल (श्लेष्म) वमन, पित्त, मवाद, रक्त अथवा शरीर संबंधी किसी प्रकार की अशुचि का त्याग न करे क्योंकि केवली भगवान् ने इसे कर्म-बंध का कारण कहा है। इस प्रकार अशुचि का त्याग करते हुए कदाचित् साधु फिसल जाय, गिर जाय तो उसके हाथ-पैर मस्तक आदि शरीर के अवयव भंग हो सकते हैं, चोट पहुंच सकती है और उसके गिरने से जीव जंतुओं की विराधना हो सकती है अथवा वे प्राण रहित हो सकते हैं। अतः साधु और साध्वियों का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वे ऐसे आकाशवर्ती (ऊंचे स्थानों पर स्थित) उपाश्रयों में उपरोक्त क्रिया नहीं करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विषम स्थान पर रहने आदि का निषेध किया है इसका कारण यह है कि ऐसे ऊंचे स्थान से गिरने से शरीर पर चोट लगने की व अन्य प्राणियों की हिंसा होने की संभावना रहती है। अतः ऐसे स्थानों पर साधु को नहीं ठहरना चाहिये।

आगमों में विभूषा की दृष्टि से हाथ पैर धोने एवं दांत आदि साफ करने का स्पष्ट निषेध किया गया है। निशीथ सूत्र उद्देशक १५ सूत्र १४१ में स्पष्ट कहा है कि जो साधु विभूषा के लिए दांतों आदि का प्रक्षालन करते हैं उन्हें प्रायश्चित्त आता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा सइत्थियं सखुड्डं सपसुभत्तपाणं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा, आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइकुलेण सद्धिं संवसमाणस्स अलसए वा विसूइया वा छड्डी वा णं उब्बाहिज्जा अण्णयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जिज्जा असंजए कलुणपडियाए तं भिक्खुस्स गायं तिल्लेण वा घएण वा णवणीएण वसाए वा अब्भंगिज्ज वा मक्खिज्ज वा सिणाणेण वा कक्केण वा लुद्धेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा पउमेण वा आघंसिज्ज वा पघंसिज्ज वा उव्वलिज्ज वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उव्वट्टिज्ज वा सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पक्खालिज्ज वा सिणाविज्ज वा सिंचिज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालिज्ज वा पज्जालिज्ज वा उज्जालित्ता पज्जालित्ता कायं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा अहभिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ६७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सइत्थियं** - स्त्रियों से युक्त, **सखुड्डं** - बालकों और बिल्ली-कुत्ता आदि क्षुद्र जीवों से युक्त, **सागारिए** - गृहस्थों के संसर्ग से युक्त, **सपसुभत्तपाणं** - पशुओं से तथा उनके खान-पान की सामग्री से युक्त, **संवसमाणस्स** - निवास करते हुए, **अलसए**- हाथ पैर आदि का स्तम्भन होना, सूजन आ जाना, **विसूइया** - विशूचिका-हैजा, **छड्डी** - वमन, **उब्बाहिज्जा** - पीडित करे, **रोगायंके**- रोगांतक-ज्वरादि रोग अथवा शूल आदि प्राणनाशक रोग, **कलुणपडियाए** - करुणा से प्रेरित होकर, **गायं** - शरीर को, **तेल्लेण** - तेल से, **घएण** - घृत से, **णावणीएण** - नवनीत (मक्खन) से, **वसाए** - चर्बी से, **अब्भंगिज्ज** - मालिश करे, **मक्खिज्ज** - मर्दन या लेप करे, **सिणाणेण** - सुगंधित द्रव्य मिश्रित जल से स्नान करावे, **कक्केण** - कल्क कषाय द्रव्य से मिश्रित जल से, **लुद्धेण** - लोध से, **वण्णेण**- वर्ण से, **चुण्णेण** - चूर्ण से, **पउमेण** - पद्म से, **आघंसिज्ज** - घिसे, **पघंसिज्ज** - बार-बार घर्षण करे, **उव्वलिज्ज** - मसले, **उव्वट्टिज्ज** - उबटन करे, **सिणाविज्ज** - नहलाए, **सिंचिज्ज** - सिंचित करे, **दारुणा**- लकड़ी से, **दारुपरिणामं** - लकड़ी से लकड़ी का परस्पर घर्षण, **अगणिकायं** - अग्नि को, **उज्जालिज्ज** - उज्वलित करे, **पज्जालिज्ज** - प्रज्वलित करे, **आयाविज्ज** - एक बार तपावे, **पयाविज्ज**- बार-बार तपावे।

भावार्थ - जो उपाश्रय स्त्री तथा बालक, बिल्ली, कुत्ता आदि क्षुद्र जीव, पशु और पशु के खाने-पीने योग्य पदार्थों से युक्त है ऐसे गृहस्थों के संसर्ग वाले उपाश्रय में साधु या साध्वी नहीं ठहरे। क्योंकि ऐसा करना कर्म बंध का कारण है। गृहस्थ कुलों के साथ रहते हुए साधु को यदि शरीर का सूजन हो जाय, विशूचिका, वमन, ज्वर या शूलादि रोग उत्पन्न हो जाये तो वह गृहस्थ करुणा भाव से प्रेरित होकर उस भिक्षु के शरीर को तेल, घी, मक्खन या वसा से मर्दन करे, मालिश लेपनादि करे, फिर उसे सुगंधित द्रव्य युक्त जल से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय द्रव्य से मिश्रित उबले हुए द्रव्य (क्वाथ आदि) से लोध, कंपिल्लकादि वर्ण, चूर्ण अथवा पद्म से घिसकर मालिस कर उबटन कर ठंडे अथवा गर्म जल से धोवे, प्रक्षालन करे, सिर से पैर तक नहलाए सिंचन करे, लकड़ी से लकड़ी रगड़ कर आग उत्पन्न करे, प्रज्वलित करे और उससे साधु के शरीर को गर्म करे, तपाये। अत: इन सब दोषों से बचने के लिए साधु का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह गृहस्थों के संसर्ग वाले उपाश्रय में (घरों में) निवास नहीं करे, शय्या तथा स्वाध्याय आदि क्रियाएँ भी न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु-साध्वी को ऐसे मकान में नहीं ठहरना चाहिये जिसमें गृहस्थ रहते हों अथवा जहाँ परिवार के सदस्यों एवं पोषण के लिए सब तरह के सुख साधन एवं भोगोपभोग की सामग्री रखी हो। ऐसे स्थान पर रहने से कई प्रकार के दोष लगने की संभावना रहती है। उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन में भी कहा है - **'णो इत्थी पसुपंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता से णिग्गंथे।'** साधु को स्त्री, पशु और नपुंसक युक्त मकान में और साध्वी को पुरुष, पशु और नपुंसक सहित मकान में नहीं रहना चाहिये। जो इनसे रहित स्थान में रहता है वही निर्ग्रन्थ कहा गया है।

आयाणमेयं भिक्खुस्स सागारिए उवस्सए संवसमाणस्स। इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरी वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा वहंति वा रुंभंति वा उद्दविंति वा, अह भिक्खू णं उच्चावयं मणं णियंच्छिज्जा - एए खलु अण्णमण्णं अक्कोसंतु वा मा वा अक्कोसंतु जाव मा वा उद्दविंतु। अह भिक्खु णं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा, एस हेऊ, एस कारणे, एस उवएसे जं तहप्पगारे सागारिए उव्वस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ६८॥

कठिन शब्दार्थ - अण्णमण्णं - आपस में (परस्पर), **अक्कोसंति** - आक्रोश करते हैं, झगड़ा करते हैं, **रुंभंति** - रोकते हैं, **उद्दविंति** - उपद्रव करते हैं, **णियंच्छिज्जा** - परिणाम आवे, **मणं** - मन में, **उच्चावयं** - ऊंचे-नीचे भाव, **अक्कोसंतु** - आक्रोश करें।

भावार्थ - गृहस्थों के संसर्ग वाले मकान में ठहरना साधु-साध्वी के लिए कर्म बंध का कारण है क्योंकि वहाँ रहते गृहस्थ यावत् दास-दासियाँ परस्पर लड़ते-झगड़ते हों, बुरे वचन बोलते हों, मारते हों रोकते हों या उपद्रव करते हों तो ऐसा देखकर साधु के मन में ऊंचे-नीचे विचार आ सकते हैं जैसे - ये परस्पर लड़ें-झगड़ें अथवा नहीं लड़ें उपद्रव आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करे या नहीं करें। अतः साधु का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है प्रतिज्ञा है कि वह गृहस्थों से युक्त मकान में निवास, शय्या और स्वाध्याय न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में परिवार से युक्त मकान में ठहरने का निषेध किया है क्योंकि कभी पारिवारिक संघर्ष होने पर साधु के मन में अच्छे एवं बुरे संकल्प विकल्प आ सकते हैं जो कि कर्म बंध का कारण है। अतः साधु-साध्वी को तो ऐसे संघर्षों से दूर रह कर अपनी साधना में ही संलग्न रहना चाहिये।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स-इह खलु गाहावई अप्पणो सअट्ठाए अगणिकायं उज्जालिज्ज वा पज्जालिज्ज वा विज्झाविज्ज वा अह भिक्खू उच्चावयं मणं णियंच्छिज्जा-एए खलु अगणिकायं उज्जालिंतु वा मा वा उज्जालिंतु पज्जालिंतु वा मा वा पज्जालिंतु विज्झाविंतु वा मा वा विज्झाविंतु, अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ६९॥

कठिन शब्दार्थ - **सअट्ठाए** - अपने प्रयोजन से, **विज्झाविज्ज** - बुझावे।

भावार्थ - गृहस्थादि से युक्त स्थान में ठहरना साधु-साध्वी के लिए कर्म बंध का कारण है। क्योंकि वहाँ पर गृहस्थ अपने लिए आग सुलगाए, प्रज्वलित करे अथवा बुझाए तब मुनि के मन में ऊंचे-नीचे भाव आ सकते हैं जैसे गृहस्थ अग्नि उज्वलित प्रज्वलित करे या नहीं करे, बुझावे या नहीं बुझावे तो अच्छा। अतः साधु-साध्वियों के लिए यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वे गृहस्थों के संसर्ग वाले उपाश्रय (स्थान) में निवास, शय्या और स्वाध्याय न करें।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स-इह खलु गाहावइस्स कुंडले वा, गुणे वा, मणी वा, मुत्तिए वा, हिरण्णे वा, सुवण्णे वा, कडगाणि वा, तुडियाणि वा, तिसरगाणि वा, पालंबाणि वा, हारे वा, अद्धहारे वा, एगावली वा, मुत्तावली वा, कणगावली वा, रयणावली वा, तरुणीयं वा, कुमारिं अलंकियं विभूसियं पेहाए, अह भिक्खू उच्चावयं मणं णियंच्छिज्जा, एरिसिया वा सा णो वा एरिसिया इय वा णं बूया, इय वा णं मणं साइज्जा। अह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ७० ॥

कठिन शब्दार्थ - **कुंडले** - कुण्डल, **गुणे** - मेखला, **मणि** - चंद्रकान्तादि मणि, **मुत्तिए** - मुक्ता, मोती, **हिरण्णे** - चांदी, **सुवण्णे** - सोना, **कडगाणि** - कडा, **तुडियाणि**- बाजूबंद-भुजाओं के आभूषण, **तिसरगाणि** - तीन लडी का हार, **पालंबाणि** - लम्बी माला, **हारे** - अठारह लडी का हार, **अद्धाहारे** - अद्धहार (नौ लडी का), **एगावली** - एकावली-एक लड़ी, **मुत्तावली** - मोतियों की लड़ी, **कणकावली** - कनकावली-स्वर्णहार, **रयणावली** - रत्नों का हार-रत्नावली, **तरुणियं** - युवा स्त्री को, **कुमारिं** - कुमारी कन्या को, **अलंकियं विभूसियं** - आभूषणों से सुसज्जित, **पेहाए** - देखकर, **एरिसिया**- इसके समान।

भावार्थ - गृहस्थों के साथ निवास करना साधु साध्वी के लिए कर्म बंध का कारण है, क्योंकि गृहस्थ के कुंडल, मेखला (करधनी) मणि, मोती, चांदी, सोना, कडा, बाजूबंद, तीन लड़ी का हार, लम्बी माला, अठारह लडी का हार, अर्द्ध हार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली हार आदि आभूषणों तथा वस्त्रालंकारादि से अलंकृत और विभूषित युवा स्त्री अथवा कुमारी कन्या को देखकर मुनि के मन में संकल्प -विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं कि ये सारी सामग्री मेरे घर पर भी थी अथवा नहीं थी-मेरी स्त्री भी इसके ही समान थी या इस तरह की नहीं थी। वह इस प्रकार कह सकता है या मन में राग-द्वेष के विचार उत्पन्न होना संभव है अतः साधुओं का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है वह इस प्रकार के स्थान पर नहीं रहे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु को गृहस्थ के साथ ठहरने का निषेध किया गया है क्योंकि ऐसे स्थानों पर रहने से गृहस्थ के वैभव संपन्न जीवन को देख कर उसका मन भी भोगों के चिंतन में लग सकता है जो कि कर्म बंध का कारण है।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स - इह खलु गाहावइणीओ वा, गाहावइधूयाओ वा, गाहावइसुण्हाओ वा, गाहावइधाईओ वा, गाहावइदासीओ वा, गाहावइकम्मकरीओ वा, तासिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ-जे इमे भवंति समणा भगवंतो जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ णो खलु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएसिं कप्पइ मेहुणधम्मं परियारणाए आउट्टित्तए, जा य खलु एएसिं सद्धिं मेहुणधम्मं परियारणाए आउट्टाविज्जा पुत्तं खलु सा लभिज्जा, ओयस्सिं तेयस्सिं वच्चस्सिं जसस्सिं संपराइयं आलोयणदरिसणिज्जं एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म तासिं च णं अण्णयरी सड्ढी तं तवस्सिं भिक्खुं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टाविज्जा। अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा जाव जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ७१॥

॥ पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **मेहुणाओ धम्माओ** - मैथुन धर्म से अर्थात् मैथुन रूपी पाप से, **उवरया** - उपरत (निवृत्त), **परियारणाए**- सेवन करने के लिए, **आउट्टित्तए** - सन्मुख होना (अभिलाषा करना), **ओयस्सिं** - ओजस्वी, **तेयस्सिं** - तेजस्वी, **वच्चसिं** - वर्चस्वी (रूपवान), **जसस्सिं** - यशस्वी, **संपराइयं**- संग्राम में शूर।

भावार्थ - गृहस्थों के संसर्ग वाले स्थान में ठहरना साधु के लिए कर्म बंध का कारण है। क्योंकि गृहस्थ के घर पर उनकी पत्नियाँ, पुत्रियाँ, पुत्रवधुएं, धायमाताएँ, दासियाँ, कर्मचारिणियां (नौकरानियाँ) एक दूसरे को इस प्रकार कहे कि-"ये जो श्रमण भगवंत हैं मैथुन रूपी पाप से निवृत्त हो चुके हैं अर्थात् इन्हें स्त्रियों के साथ मैथुन सेवन करना नहीं कल्पता है परन्तु जो कोई स्त्री इनके साथ संभोग करती है तो उसे ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी-रूपवान, यशस्वी, संग्राम में शूर(विजयी) और दर्शनीय पुत्र की प्राप्ति होती है।" इस प्रकार के शब्द सुनकर कोई पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाली स्त्री उस तपस्वी साधु को विचलित कर कामभोगों के सेवन के लिए आकर्षित करे। अतः मुनि का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह गृहस्थों से युक्त मकान में निवास, शय्या और स्वाध्याय न करे।

यही साधु-साध्वियों का सम्पूर्ण आचार है।

विवेचन - साधु साध्वी को अपने संयम में एवं ब्रह्मचर्य की रक्षा में सदैव सावधान रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्मचर्य साधना का प्रमुख अंग है अतः साधु साध्वी को ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिये जहाँ ब्रह्मचर्य व्रत में तनिक भी दोष लगने की संभावना हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत सूत्र में आए हुए '**ओजस्वी**' आदि शब्दों का विशेषार्थ उववाइय सूत्र में श्री उमेशमुनिजी म. सा. ने इस प्रकार किया हैं -

ओजस्वी - ओजस्=मानस हृदय की स्थिरता। सुसम्बद्ध विचारों के अभ्यास के कारण जो आत्मिक स्थिरता पैदा होती है, जिससे अन्य व्यक्तियों को अपने विचारों में तर कर देने की जो जोशीली शक्ति पैदा होती है, उसे 'ओजस्' कहा जाता है। इससे युक्त 'ओजस्वी'।

तेजस्वी - तेजस्=शरीर की प्रभा। साधना करते-करते साधक शरीर के चारों ओर किरणें सी निकलने लग जाती है। जिससे व्यक्ति दर्शन मात्र से एक मधुर शांति का अनुभव करता है, उसे तैजस् कहते हैं। उससे युक्त तेजस्वी।

वर्चस्वी - वचस्=सौभाग्यादि से युक्त वाणी अथवा वर्चस्=प्रभाव। क्रिया या आचार में व्याप्त ऐसी शक्ति, जिसका लोहा अन्य भी मानते हैं और जो रोब की जननी है, उसे 'वर्चस्' कहा जाता है।

यशस्वी - यशस्=ख्याति। उपर्युक्त तीनों भावों के मिश्रण के द्वारा लोक में उस चुम्बकीय व्यक्तित्व के प्रति जो प्रशंसात्मक दृष्टि बनती है-उसकी जो स्तुति होती है, उसे 'यशस्' कहते हैं। उससे युक्त यशस्वी।

॥ द्वितीय अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

गाहावई णामेगे सुइसमायारा भवंति, से भिक्खू य असिणाणए मोयसमायारे से तग्गंधे दुग्गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ, जं पुव्वकम्मं तं पच्छाकम्मं, जं पच्छा- कम्मं तं पुव्वकम्मं तं भिक्खुपडियाए वट्टमाणा करिज्जा वा णो करिज्जा। अह भिक्खुणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ७२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सुइसमायारा** - शूचि समाचारा-शूचि धर्म का पालन करने वाले, **असिणाणए**- स्नान न करने से, **मोयसमायारे** - मोक प्रतिमाधारी, **तग्गंधे** - उस गंध वाला, **पडिलोमे** - प्रतिलोम-प्रतिकूल, **वट्टमाणा** - वर्तते (करते) हुए।

भावार्थ - कोई गृहस्थ शौचाचार (शूचि धर्म) के पालन करने वाले होते हैं और मुनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो स्नान के त्यागी होते हैं, मोक प्रतिमाधारी भी होते हैं। अतः वह गंध गृहस्थ को प्रतिकूल प्रतीत होती है। साधु के कारण गृहस्थ अपने पहले करने के कार्य पीछे (बाद में) और बाद के कार्य को पहले करे और भोजनादि क्रियाएँ समय पर करे या नहीं करे। अतएव मुनि का यह आचार है कि गृहस्थों से युक्त स्थान (उपाश्रय) में कायोत्सर्ग ध्यान आदि क्रियाएँ नहीं करे। अर्थात् ऐसे उपाश्रय में न ठहरे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु को गृहस्थ के साथ रहने का निषेध करते हुए बताया है कि साधु का आचरण गृहस्थ से भिन्न होता है। शौचाचार का पालन करने वाला व्यक्ति मुनि के जीवन को देख कर उससे घृणा कर सकता है। साधु के कारण गृहस्थ अपनी क्रियाओं को आगे पीछे कर सकता है तो साधु भी गृहस्थों के कारण अपनी आवश्यक क्रियाओं को यथा समय करने में असमर्थ हो जाता है। इस तरह गृहस्थ के कारण साधु की साधना में अंतराय पड़ती है और साधु के कारण गृहस्थ के दैनिक कार्यों में बाधा आती है। इससे दोनों के मन में चिंता एवं एक दूसरे के प्रति बुरे भाव भी आ सकते हैं अतः साधु साध्वी को गृहस्थ के साथ या गृहस्थ के संसर्ग वाले उपाश्रय में नहीं ठहरना चाहिये।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स-इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सअट्ठाए विरूवरूवे भोयणजाए उवक्खडिए सिया, अह पच्छा भिक्खुपडियाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उवक्खडिज्ज वा उवकरिज्ज वा, तं च भिक्खू अभिकंखिज्जा भुत्तए वा पायए वा वियट्टित्तए वा। अह भिक्खुणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ७३॥

कठिन शब्दार्थ - **वियट्टित्तए** - विशेष आसक्ति भाव रखे।

भावार्थ - गृहस्थों से युक्त मकान में निवास करना साधु साध्वी के लिए कर्म बंध का कारण है। गृहस्थ स्वयं अपने लिए नाना प्रकार का भोजन तैयार करके साधु साध्वी के निमित्त से अशनादिक आहार बनाएगा, खाद्य सामग्री एकत्रित करेगा। ऐसे समय मुनि अशनादि को खाने-पीने की अभिलाषा करेगा अथवा उससे आसक्त होकर वहीं रहने की इच्छा करेगा। अतः साधु साध्वी के लिए यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह इस प्रकार के स्थान पर नहीं ठहरे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी गृहस्थ के साथ ठहरें तो कई प्रकार के दोषों की संभावनाएं रहेगी, उनके भावों में गिरावट आ सकती है। वह भोजन आदि में आसक्त हो कर संयम से गिर भी सकता है अतः साधु को ऐसे स्थान में नहीं ठहरना चाहिए।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइणा सद्धिं संवसमाणस्स-इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सअट्ठाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिण्णपुव्वाइं भवंति। अह पच्छा भिक्खु पडियाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिंदिज्ज वा किणिज्ज वा पामिच्चेज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालिज्ज वा पज्जालिज्ज वा तत्थ भिक्खू अभिकंखिज्जा आयावित्तए वा पयावित्तए वा वियट्टित्तए वा। अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ७४॥

कठिन शब्दार्थ - **दारुयाइं** - लकड़ियों को, **भिण्णपुव्वाइं** - पहले ही भेदन (तोड़) करके रखे हो, **भिंदिज्ज** - भेदन करे-काटे, **किणिज्ज** - खरीदे, **पामिच्चेज्ज** - उधार ले।

भावार्थ - गृहस्थ के साथ निवास करना साधु साध्वी के लिए कर्म बंध का कारण है। गृहस्थ ने अपने स्वयं के लिए विविध प्रकार के काष्टों को भेदन करके एकत्रित कर रखे हों बाद में वह साधु साध्वी के लिए विविध प्रकार के लकड़ों को फाडेगा, खरीदेगा अथवा उधार लेगा, लकड़ी से लकड़ी का घर्षण करके आग सुलगाएगा, प्रज्वलित करेगा और उस समय कदाचित् मुनि की अग्नि के पास शीत निवारणार्थ आतापना लेने की इच्छा हो जाए, आसक्त होकर वहीं रहने की अभिलाषा हो जाए। अतः साधु साध्वी का पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह गृहस्थों के संसर्ग युक्त स्थान में निवास नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उच्चारपासवणेणं उब्बाहिज्जमाणे राओ वा वियाले वा गाहावइकुलस्स दुवारबाहं अवंगुणिज्जा तेणे य तस्संधियारी अणुपविसिज्जा, तस्स भिक्खुस्स णो कप्पइ एवं वइत्तए- "अयं तेणे पविसइ णो वा पविसइ, उवल्लियइ वा णो वा उवल्लियइ, आवयइ वा णो वा आवयइ, वयइ वा णो वा वयइ, तेण हडं अण्णेण हडं, तस्स हडं अण्णस्स हडं, अयं तेणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अयं उवयरए, अयं हंता, अयं इ(ए)त्थमकासी'' तं तवस्सिं भिक्खुं अतेणं तेणं ति संकइ। अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा एस हेऊ एस कारणे एस उवएसे णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ७५॥

कठिन शब्दार्थ - **उब्बाहिज्जमाणे** - बाधित होने से, **वियाले** - विकाल में, **दुवारबाहं**- द्वार भाग को, **अवंगुणिज्जा** - खोलेगा, **तेणे** - चोर, **तस्संधिचारी** - छिद्र देखने वाला व्यक्ति, **अणुपविसिज्जा** - प्रवेश कर जाए, **वइत्तु** - बोलना, **उवल्लियइ** - छिपता है, **आवयइ** - नीचे कूदता है, **हडं** - चोरी की, **उवचरए** - उपचरक-साथी, **हंता** - मारने वाला, **इत्थं (एत्थं)** - इस प्रकार अथवा यहाँ, **आकासी** - किया, **तेणं**-चोर।

भावार्थ - गृहस्थ के यहाँ रहता हुआ साधु या साध्वी मल मूत्रादि की बाधा होने पर रात्रि में अथवा विकाल में घर का द्वार खोलेगा उस समय कदाचित् कोई चोर या उसका साथी घर में घुस जाएगा तो उस समय साधु को मौन रखना होगा। ऐसी स्थिति में साधु के लिए यह कहना कल्पनीय नहीं है कि यह चोर घर में घुसता है अथवा नहीं घुसता है, छिपता है या नहीं छिपता है, दौडता है (कूदता है) अथवा नहीं दौडता है बोलता है अथवा नहीं बोलता है, इसने चोरी की या दूसरे ने चोरी की है, इसने गृहस्थ का धन चुराया है या अन्य किसी का धन चुराया है। यह चोर है, यह उसका साथी है, यह मारने वाला है, इसीने यह कार्य किया है। साधु के कुछ नहीं कहने पर गृहस्थ को उस मुनि पर जो वास्तव में चोर नहीं है चोर होने का संदेह हो सकता है। अतः साधु साध्वी का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह गृहस्थ से युक्त मकान में शय्या संस्तारक स्वाध्याय आदि न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि गृहस्थ के साथ ठहरने से साधु साध्वी की साधना में अनेक दोष आने की संभावना है इसलिए साधु साध्वी को गृहस्थ से युक्त मकान में नहीं ठहरना चाहिए तथा ऐसे मकान में भी नहीं ठहरना चाहिए जहाँ मल-मूत्र के परिष्ठान का योग्य स्थान न हो। मल मूत्र त्याग के लिए साधु द्वार खोल कर जा सकता है और वापस आने पर बंद भी कर सकता है यह भी इस सूत्र से स्पष्ट होता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा तंजहा-तणपुंजेसु वा, पलालपुंजेसु वा सअंडे जाव ससंताणए, तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-तणपुंजेसु वा पलालपुंजेसु वा अप्पंडे जाव चेइज्जा ॥ ७६ ॥

कठिन शब्दार्थ-तणपुंजेसु-घास (तृण) के ढेर में, **पलालपुंजेसु** - पलाल (पराल) के ढेर में।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी जिस उपाश्रय में घास के ढेर या पलाल के ढेर में अंडे यावत् जीव जंतु आदि जानें तो ऐसे उपाश्रय में वह निवास, शय्या, स्वाध्याय आदि न करे। जो उपाश्रय-घास या पलाल के ढेर, अंडो यावत् जीव जंतुओं से युक्त नहीं है, ऐसे उपाश्रय में वह यतना पूर्वक शय्या, निवास, स्वाध्याय आदि कर सकता है।

विवेचन - जिस स्थान में साधु साध्वी को ठहरना हो, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएँ करनी हो वह स्थान अंडा, जीवजन्तु आदि से युक्त नहीं होना चाहिये।

'पलालपुंजेसु' - चावलों की घास को पराल (पलाल) कहते हैं उसके ढेर को पलाल पुंज कहते हैं।

से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अभिक्खणं अभिक्खणं साहम्मिएहिं उवयमाणेहिं णो उवइज्जा ॥ ७७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उवयमाणेहिं** - आ रहे हों, **णो** - नहीं, **उवइज्जा** - मास कल्पादि निवास करे।

भावार्थ - धर्मशालाओं में, मुसाफिरखानों में, उद्यानगृहों में, गृहस्थ के घरों में अथवा मठों में जहाँ अन्य मतावलम्बी परिव्राजक आदि साधुओं का बार-बार आना जाना होता रहता हो वहाँ साधु साध्वी मासकल्पादि निवास नहीं करे।

विवेचन - जहाँ अन्य मतावलम्बी परिव्राजक, जोगी संन्यासियों का बार-बार अत्यधिक आवागमन हो वहाँ जैन साधु साध्वी को ऐसे स्थानों में मासकल्प या चातुर्मासकल्प निवास नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसे स्थानों पर अत्यधिक आवागमन से वातावरण शान्त नहीं रह पाएगा। अशांत वातावरण में साधु एकाग्रचित से अपनी साधना-स्वाध्याय, चिंतन मनन नहीं कर पायेगा। अतः ऐसे स्थानों पर ठहरने का निषेध किया गया है।

१. से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे भयंतारो उउबद्धियं (उडुबद्धियं) वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणित्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो संवसंति, अयमाउसो! कालाइक्कंतकिरिया यावि भवइ॥ ७८ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उउबद्धियं (उडुबद्धियं)** - ऋतुबद्ध-शीत काल या उष्ण काल में, **वासावासियं**-चातुर्मास (वर्षावास) **उवाइणित्ता** - बीता कर, **भुज्जो** - पुनः, **कालाइक्कंतकिरिया** - कालातिक्रान्त क्रिया।

भावार्थ - जो साधु साध्वी धर्मशाला आदि ऐसे स्थानों में मासकल्प अथवा चातुर्मास कल्प बीताकर (बिना कारण) फिर वहीं निवास करते हैं तो हे आयुष्मन् श्रमण! उन्हें कालातिक्रान्त दोष लगता है।

विवेचन - जिस स्थान पर साधु साध्वी ने मासकल्प या चातुर्मास कल्प किया हो उसे उसके बाद उस स्थान में बिना कारण के नहीं ठहरना चाहिये। यदि बिना विशेष कारण के वे उस स्थान पर ठहरते हैं तो कालातिक्रान्त दोष लगता हैं। मर्यादा से अधिक एक स्थान पर रहने से गृहस्थों के साथ घनिष्ठ परिचय होता है। जिससे राग भाव में वृद्धि होती है और उद्गम आदि अनेक दोष लगने की संभावना रहती है। अतः साधु साध्वी को मासकल्प एवं वर्षावास कल्प के पश्चात् बिना किसी कारण के काल का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये।

२. से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, जे भयंतारो उउबद्धियं (उडुबद्धियं) वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणित्ता तं दुगुणा दु(ति)गुणेण वा अपरिहरित्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो संवसंति अयमाउसो! उवट्ठाण किरिया यावि भवइ॥ ७९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **उवट्ठाण किरिया** - उपस्थान क्रिया।

भावार्थ - जो साधु साध्वी धर्मशाला, मुसाफिर खाना, बगीचे में, बने हुए मकानों में मठ आदि स्थानों में एक महीना (मासकल्प) अथवा चातुर्मास कल्प रह कर (बीता कर) उससे दुगना (या तिगुना) काल अन्यत्र व्यतीत किये बिना शीघ्र ही पुनः उन्हीं स्थानों में आकर ठहरते हैं तो हे आयुष्मन् श्रमण ! उन्हें उपस्थान क्रिया नामक दोष लगता है।

विवेचन - जिस स्थान पर साधु साध्वी ने मास कल्प किया है, उस स्थान पर उससे दुगुना समय दूसरे क्षेत्रों में बिताए बिना वापिस वहीं पर आकर मास कल्प करना नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कल्पता है। इसी तरह जहाँ चातुर्मास किया है वहाँ दो चातुर्मास दूसरी जगह किये बिना पुनः वहाँ चातुर्मास करना नहीं कल्पता है तथा एक चातुर्मास दूसरी जगह किये बिना वहाँ मासकल्प करना भी नहीं कल्पता है।

आचारांग सूत्र की कुछ प्रतियों में **'दुगणा तिगुणेणं'** एवं कुछ प्रतियों में **'दुगुणा दुगुणेणं'** पाठ मिलता है। अतः पाठान्तर के रूप में दोनों पाठ माने जाते हैं। **'दुगुणा तिगुणेणं'** पाठ मानने पर उसका अर्थ 'शेषकाल रहने पर दुगुना काल निकालने के बाद पुनः शेषकाल या चातुर्मास काल रह सकते हैं। चातुर्मास काल रहने पर तिगुना काल निकालने के बाद पुनः उस क्षेत्र में शेष काल रहा जा सकता है और दो चातुर्मास बाहर निकालने के बाद पुनः उस क्षेत्र में चातुर्मास किया जा सकता है।' इस प्रकार किया जाता है।

'दुगुणा दुगुणेणं' पाठ मानने पर भी उसका अर्थ यही किया जाता है कि शेषकाल या चातुर्मास काल रहने के बाद दुगुना-काल अन्यत्र निकालने के बाद पुनः उस क्षेत्र में शेषकाल एवं दो चातुर्मास अन्यत्र करने के बाद पुनः उस क्षेत्र में चातुर्मास किया जा सकता है। चातुर्मास के बाद दुगुना काल निकालने पर पुनः चातुर्मास आ जाता है। अतः वह काल तो स्वतः ही छूट जाता है-इस प्रकार दोनों का भावार्थ एक ही किया जाता है। एक में स्पष्ट उल्लेख है एवं एक में गर्भित समझा जाता है।

शेष काल रहने पर भी जब अधिक सम्पर्क वर्जन की दृष्टि से आगमकार दुगुना काल बाहर निकाले बिना आने का निषेध करते हैं। तब चातुर्मास के बाद एक महीने (या दो महिने) से पुनः उस क्षेत्र में शेष काल रह सकना किसी भी तरह से आगम संगत प्रतीत नहीं होता है एवं इन आगमपाठों से ऐसा अर्थ निकलता भी नहीं है। अतः चातुर्मास के बाद एक वर्ष तक पुनः उस क्षेत्र में ऋतुबद्धकाल में नहीं रहना अर्थ ही आगम-संगत प्रतीत होता है एवं धारणा भी ऐसी ही है।

३. इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा, संतेगइया सड्ढा भवंति, तंजहा-गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा तेसिं च णं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ तं सद्दहमाणेहिं, पत्तियमाणेहिं, रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तंजहा-आएसणाणि वा आयतणाणि वा, देवकुलाणि वा, सहाओ वा, पवाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा, पणियगिहाणि वा, पणियसालाओ वा, जाणगिहाणि वा, जाण सालाओ वा, सुहाकम्मंताणि वा, दब्भकम्मंताणि वा, बद्धकम्मंताणि वा, वक्कयकम्मंताणि वा, इंगालकम्मंताणि वा, कट्ठकम्मंताणि वा, सुसाणकम्मंताणि वा, संतिकम्मंताणि वा, सुण्णागारगिरिकंदर-संतिसेलोवट्ठाणकम्मंताणि वा, भवणगिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा तेहिं उवयमाणेहिं उवयंति अंयमाउसो! अभिक्कंत किरिया यावि भवइ॥ ८०॥

कठिन शब्दार्थ - **आयारगोयरे** - आचार-विचार, **सद्दहमाणेहिं** - श्रद्धा करते हुए, **पत्तियमाणेहिं**- प्रतीति करते हुए, **रोयमाणेहिं** - रुचि करते हुए, **आएसणाणि** - लुहार आदि की शालाएँ, **आयतणाणि**- देवालय के पास बनी हुई धर्मशालाएं या कमरे, **देवकुलाणि**- देवालय (देवकुल) **सहाओ** - सभाएँ, **पवाणि** - प्रपाएं-पानी पिलाने का स्थान, प्याउएं आदि, **पणियगिहाणि** - दुकानें, **पणियसालाओ** - पण्यशालाएँ-बखार माल गोदाम, **जाणगिहाणि** - यान गृह, **जाणसालाओ** - रथ शाला, **सुहाकम्मंताणि**- चूने का कारखाना, **दब्भकम्मंताणि** - दर्भ का कारखाना, **बद्धकम्मंताणि** - चर्मालय, **वक्कयकम्मंताणि**- वल्कल का कारखाना, **इंगालकम्मंताणि** - कोयले बनाने का स्थान, अग्नि का कारखाना, **कट्ठकम्मंताणि** - लकड़ी का कारखाना, **सुसाणकम्मंताणि** - श्मशान गृह, **संतिकम्मंताणि**- शांति-गृह, **सुण्णागार** - शून्यागार, **गिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणकम्मंताणि** - पर्वत की चोटी पर बनाया गया घर, गुफा, पाषाण मंडप आदि स्थान, **उवयमाणेहिं** - बारम्बार आ रहे हों।

भावार्थ - इस संसार में पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर आदि दिशाओं में कई गृहस्थ और स्त्रियाँ आदि धर्म श्रद्धालु होते हैं, उनको साधुओं के आचार-विचार का पूरा ज्ञान नहीं होता, मात्र दानादि देने से महान् फल होता है इस पर श्रद्धा प्रतीति और रुचि रखकर वे सामान्यतः बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दीन और भिखारी आदि के निमित्त से उनके ठहरने के लिए बड़े-बड़े मकान बनवाते हैं। जैसे लुहार आदि की शालाएं, देवालय के पास का कमरा, देवकुल, सभा, प्याऊ, दुकान, बखार, यानशाला, रथशाला, चूने का कारखाना, धर्मशाला, चर्मालय, वल्कल का कारखाना, कोयले बनाने का कारखाना, लकड़ी का कारखाना, श्मशान गृह, शांति गृह, शून्यागार, पर्वत के शिखर पर बनवाया हुआ मकान, पर्वत की गुफा, पाषाण मंडप, भवनगृह-भवन के आकार में बने हुए गृह-गृहस्थ लोगों के रहने के स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि इस प्रकार के स्थानों में श्रमण ब्राह्मणादि ठहर चुके हैं और बाद में जैन साधु साध्वी ठहरते हैं इसे अभिक्रांत क्रिया कहते हैं।

विवेचन - जो स्थान अन्यमत के साधु संन्यासियों के लिए बनाये गये हैं और वे आकर ठहर भी चुके हैं बाद में निर्ग्रन्थ साधु साध्वी आकर ठहरते हैं तो वह अभिक्रान्त शय्या कहलाती है। यह स्थान दोष रहित है इसलिये जैन के साधु साध्वियों के लिए निर्दोष हैं। इसलिए उसमें ठहरने में कोई बाधा नहीं है, यह उनके ठहरने योग्य स्थान है।

४. इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा, संतेगइया सड्ढा भवंति जाव तं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं जहा-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि जाव भवणगिहाणि वा तेहिं अणोवयमाणेहिं ओवयंति अयमाउसो! अणभिक्कंत किरिया यावि भवइ॥ ८१॥

कठिन शब्दार्थ - अणभिक्कंत किरिया - अनभिक्रान्त क्रिया।

भावार्थ - इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले कई धर्म श्रद्धालु होते हैं जो श्रद्धा प्रतीति और रुचि करके श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, भिखारी आदि के निमित्त से पूर्वोक्त स्थान (मकान) बनाते हैं। ऐसे स्थानों को उन श्रमण ब्राह्मण आदि ने उपभोग में नहीं लिए हैं उनके उपभोग करने से पहले ही जैन साधु-साध्वी ठहरते हैं तो हे आयुष्मन्! वह स्थान अनभिक्रान्त शय्या है। क्योंकि जिन अन्यमतावलम्बी परिव्राजक आदि के लिये बनाया है, वे उनमें आकर अभी ठहरे नहीं है इसलिये ऐसा स्थान जैन साधु साध्वी के लिए अकल्पनीय है। अतः उन्हें अनभिक्रान्त क्रिया लगती है।

५. इह खलु पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा, संतेगइया सड्ढा भवंति तंजहा-गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा, तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ-जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ, णो खलु एएसिं भयंताराणं कप्पइ आहाकम्मिए उवस्सए वत्थए, से जाणि इमाणि अम्हं अप्पणो सयट्ठाए चेइयाइं भवंति तंजहा- आएसणाणि वा जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवणगिहाणि वा, सव्वाणि ताणि समणाणं णिसिरामो अवियाइं वयं पच्छा अप्पणो सयट्ठाए चेइस्सामो तंजहा-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा उवागच्छंति उवागच्छित्ता इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति अयमाउसो! वज्जकिरिया यावि भवइ॥ ८२॥

कठिन शब्दार्थ - **वत्थए** - बसना (रहना), **सयट्ठाए** - अपने लिए (निज-प्रयोजन से), **णिसिरामो**- दे देते हैं, **पाहुडेहिं** - उपहार रूप में प्राप्त, भेंट दिये हुए घरों को, **वट्टंति** - वर्तते हैं (रहते हैं), **वज्ज** - वर्ज्य, **इयराइयरेहिं** - इतरा इतरा अर्थात् गृहस्थों के द्वारा दिए हुए छोटे-मोटे। वृत्तिकार ने इसका अर्थ '**इतराइतरेषु उच्चावच्चेसु प्रदत्तेषु**' किया है।

भावार्थ - इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले कई धर्म श्रद्धालु होते हैं वो परस्पर इस प्रकार कहते हैं - "जो श्रमण भगवंत मैथुन धर्म से सर्वथा उपरत हैं उनको उन्हीं के निमित्त से बनाये हुए (आधाकर्मिक) उपाश्रयादि में बसना नहीं कल्पता है अतः हमने अपने लिए जो मकान आदि बनाए हैं वे सब मकान हम इन मुनियों को दे देते हैं और हम अपने लिये पुनः नये बना लेंगे।" गृहस्थ के इस प्रकार के शब्द सुनकर और समझ कर जो साधु ऐसे घरों में निवास करते हैं तो हे आयुष्मन्! उन्हें वर्ज्य क्रिया लगती है क्योंकि यह वर्ज्य वसति (शय्या) है।

विवेचन - मूल में '**वज्ज**' शब्द दिया है जिसकी संस्कृत छाया दो तरह की हो सकती है यथा - 'वर्ज्य' तथा 'वज्र'। वर्ज्य का अर्थ है छोड़ देने योग्य। वज्र का अर्थ है वज्र के समान भारी। यह शब्दों का अर्थ मात्र है। ऐसी वर्ज्य क्रिया अथवा वज्र क्रिया वाले स्थानों में जैन के साधु साध्वी को नहीं उतरना चाहिए क्योंकि यह उनके लिये अकल्पनीय है।

६. इह खलु पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति, तेसिं च णं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ जाव तं रोयमाणेहिं बहवे समण माहण अतिहि-किवण-वणीमए पगणिय पगणिय समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं जहा- आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति अयमाउसो! महावज्जकिरिया यावि भवइ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **महावज्ज किरिया** - महावर्ज्य क्रिया-महा वज्र क्रिया।

भावार्थ - इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले कई धर्म श्रद्धालु होते हैं, जिन्हें साधु का आचार-गोचर भली प्रकार ज्ञात नहीं होता है। फिर भी वे धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखते हुए श्रमणादि को गिन-गिन कर उनके निमित्त मकान बनवाते हैं। जो मुनिराज तथाप्रकार के मकानों में जाकर रहते हैं तो हे आयुष्मन्! उन्हें महावर्ज्य क्रिया लगती है, वह महावर्ज्य वसति-शय्या है।

विवेचन - शंका - गृहस्थ ने शाक्य आदि श्रमणों के लिए मकान बनाया हो और वे उस मकान में ठहर भी चुके हैं तो फिर साधु को उस मकान में ठहरने से उसे महावर्ज्य क्रिया कैसे लगती है ?

समाधान - श्रमण के पांच भेद कहे हैं - १. निर्ग्रन्थ (जैन साधु) २. बौद्ध भिक्षु ३. तापस ४. गैरिक (संन्यासी) और ५. आजीविक (गोशालक मत के साधु)। अतः श्रमण शब्द से जैन साधु का भी ग्रहण हो जाता है अतः जिस मकान को बनाने में जैन साधु का लक्ष्य रखा गया हो उस मकान में पुरुषान्तर कृत होने पर भी जैन साधु को उसमें नहीं ठहरना चाहिये। यदि वह उसमें ठहरता है तो उसे महावर्ज्य क्रिया लगती है।

यह पहले बताया जा चुका है कि जहाँ **'पगणिय पगणिय'** शब्द आता है वहाँ श्रमण शब्द से जैन साधु का भी ग्रहण हो जाता है। यहाँ मूल पाठ में **पगणिय-पगणिय** शब्द दिया है इससे जैन साधु का भी ग्रहण हो जाता है अतः ऐसे स्थान आधाकर्मी दोष युक्त होने के कारण जैन साधु साध्वी के लिये अकल्पनीय है।

'पगणिय पगणिय' शब्द का आशय यह है कि - किसी दाता ने दान देने की भावना से कोई मकान बनाया और उस समय एक-एक मत के साधुओं के लिये कमरे नियत कर दिये जैसे कि दो कमरे जैन साधुओं के लिये, दो कमरे परिव्राजक साधुओं के लिये, दो कमरे आजीविक मतावलम्बियों के लिये, दो कमरे बौद्ध भिक्षुओं के लिये। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतावलम्बी साधुओं के लिये नियत करके बनाये हुए मकान के लिए शास्त्रकार ने **'पगणिय पगणिय'** शब्द का प्रयोग किया है।

७. इह खलु पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति, जाव तं रोयमाणेहिं बहवे समणजाए समुद्दिस्स तत्थ-तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं जहा-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा जे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति अयमाउसो! सावज्ज किरिया यावि भवइ॥ ८४॥

कठिन शब्दार्थ - सावज्ज किरिया - सावद्य क्रिया ।

भावार्थ - इस संसार में पूर्वादि दिशाओं में रहने वाले कितने ही धर्म श्रद्धालु जीव होते हैं जो श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करने से बहुत से श्रमणादि को उद्देश्य करके उनके लिए मकान बनवाते हैं जो मुनिराज तथाप्रकार के गृहों में निवास करते हैं तो हे आयुष्मन्! उनके लिए यह सावद्य क्रिया होती है। यह सावद्य क्रिया नाम की वसति (शय्या) है।

विवेचन - यहाँ मूल पाठ में **'बहवे समणजाए'** शब्द दिया है। उसका आशय "पाँच प्रकार के श्रमणों (निर्ग्रन्थ, शाक्य, तामस, आजीविक और गैरिक) के उद्देश्य से" ऐसा अर्थ किया जाता है।

८. इह खलु पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति, तं जहा-गाहावई वा जाव कम्मकरी वा तेसिं च णं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ, जाव तं रोयमाणेहिं एगं समणजायं समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तं जहा-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा, महया पुढविकाय समारंभेणं एवं महया आउ-तेउ-वाऊ-वणस्सइ-तसकाय समारंभेणं महया संरंभेणं, महया संमारंभेणं, महया आरंभेणं, महया विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं तंजहा-छायणओ लेवणओ संथारदुवार-पिहणओ सीओदए वा परिट्ठवियपुव्वे भवइ अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवइ, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति दुपक्खं ते कम्मं सेवंति अयमाउसो! महासावज्ज किरिया यावि भवइ॥ ८५॥

कठिन शब्दार्थ - महया - महान्, **समारंभेणं** - समारंभ से, **पावकम्मकिच्चेहिं** - पापकर्म का आचरण करके, **छायणओ** - आच्छादित करके, **लेवणओ** - लीप करके, **संथारदुवार पिहणओ** - बैठक या द्वार बंद करके, **परिट्ठविय** - छिड़काव करके, **दुपक्खं** - द्विपक्ष ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस संसार में पूर्वादि चारों दिशाओं में रहने वाले बहुत से धर्म श्रद्धालु व्यक्ति हैं। जिन्होंने साधु का आचार तो सम्यक् प्रकार से नहीं सुना, केवल उपाश्रय दान के स्वर्ग आदि फल को सुन कर जो मकान किसी जैन साधु साध्वी के उद्देश्य से पृथ्वी, अप, तेउ, वायु, वनस्पति, त्रस आदि छह काय का महान्, समारंभ, संरंभ तथा आरंभ करके (हिंसा करके) तथा लीपन, आच्छादन, जल छिडकाव, अग्नि प्रज्वलन आदि विविध प्रकार के पापकर्म का आचरण करके बनवाया हो, ऐसे मकान में जो साधु रहते हैं वो द्विपक्ष क्रिया का सेवन करते हैं अर्थात् साधु होकर भी गृहस्थ के समान है अतः हे आयुष्मन्! यह महासावद्य क्रिया नामक वसति (शय्या) है।

विवेचन - छह काय का आरंभ समारंभ करके साधु साध्वी के लिए बनाये हुए उपाश्रय/मकान में जो साधु ठहरता है तो उसे महा सावद्य क्रिया लगती है।

उपर्युक्त मूल पाठ में "**एगं समणजायं**" शब्द आया है उसका आशय है - "एक प्रकार के निर्ग्रन्थ (जैन) साधु-साध्वी के उद्देश्य से।"

"**दुपक्खं ते कम्मं सेवंति**" - इस पंक्ति की टीकाकार ने इस प्रकार व्याख्या की है- द्रव्य से वे साधुवेशी है किन्तु साधु जीवन में आधाकर्म दोष युक्त वसति (शय्या) का सेवन करने के कारण भाव से गृहस्थ हैं अर्थात् द्रव्य से साधु के और भाव से गृहस्थ के कर्मों का सेवन करने के कारण वे 'द्विपक्ष-कर्म' का सेवन करते हैं।

९. इह खलु पाईणं वा पडीणं दाहिणं वा उदीणं वा तं रोयमाणेहिं अप्पणो सयट्ठाए तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति तंजहा-आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा महया पुढविकायसमारंभेणं जाव अगणिकायए वा उज्जालियपुव्वे भवइ। जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति, एगपक्खं ते कम्मं सेवंति अयमाउसो! अप्पसावज्जकिरिया यावि भवइ॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ ८६॥

॥ बीओ उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - एगपक्खं - एक पक्ष द्रव्य भाव दोनों से साधुपना होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस जगत् में पूर्वादि दिशाओं में रहे हुए कई धर्म श्रद्धालु गृहस्थ छह काय की हिंसा करके, अनेक पाप कर्म करके अपने लिए मकान बनवाते हैं। ऐसे मकानों में जाकर जो मुनि निवास करते हैं (उतरते हैं) वो एक पक्षी कर्म का सेवन करते हैं। इस प्रकार की अल्प सावद्य क्रिया वसति कहलाती हैं।

यह सभी साधु-साध्वियों का सम्पूर्ण आचार है।

विवेचन - कुछ हस्त लिखित प्रतियों में उक्त नव क्रियाओं की एक गाथा भी मिलती है जो इस प्रकार है -

कालाइक्कंतु १ वट्ठाण २ अभिकंता ३ चेव अणभिकंता ४ य।
वज्जा य ५ महावज्जा ६ सावज्ज ७ मह ८ अप्पकिरिया ९ य॥

छाया - **कालातिक्रान्ता उपस्थाना अभिक्रान्ता चैवानभिक्रान्ता च।**
वर्ज्या च महावर्ज्या सावद्या महासावद्या अल्पक्रिया च॥

अर्थ - नौ प्रकार की शय्या (वसति) के नाम इस प्रकार हैं - १. कालातिक्रान्ता २. उपस्थाना ३. अभिक्रान्ता ४. अनभिक्रान्ता ५. वर्ज्या ६. महावर्ज्या ७. सावद्या ८. महासावद्या और ९. अल्प सावद्य क्रिया।

बृहत्कल्प भाष्य में भाष्यकार ने और वृत्तिकार ने वहाँ इन नौ शय्याओं का लक्षण देकर विस्तृत वर्णन दिया है वह संक्षिप्त में इस प्रकार है।

१. कालातिक्रान्ता - वह शय्या है जहाँ साधु ऋतुबद्ध (मासकल्प-शेष) काल और वर्षा काल (चौमासे) में रहे हों, ये दोनों काल पूर्ण होने पर भी वहाँ से विहार न करके वहीं ठहर जाय।

२. उपस्थाना - ऋतुबद्धवास और वर्षावास का जो काल नियत है, उससे दुगुणा काल अन्यत्र बीताए बिना ही अगर पुनः उसी उपाश्रय में आकर साधु ठहरते हैं तो वह उपस्थाना शय्या कहलाती है।

३. अभिक्रान्ता - जो शय्या (धर्मशाला) सार्वजनिक और सर्वकालिक (यावन्तिकी) है, उसमें पहले से चरक, पाषण्ड, गृहस्थ आदि ठहर चुके हैं, बाद में निर्ग्रन्थ साधु साध्वी भी आकर ठहर जाते हैं तो वह अभिक्रान्ता-शय्या कहलाती है।

४. अनभिक्रान्ता - वैसी ही सार्वजनिक-सर्वकालिक (यावन्तिकी) शय्या (धर्मशाला) में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरकादि अभी तक ठहरे नहीं हैं, उसमें यदि निर्ग्रन्थ साधु ठहर जाते हैं, तो वह अनभिक्रान्ता कहलाती है।

५. **वर्ज्या** - वसति (शय्या) वह कहलाती है, जो अपने लिये गृहस्थ ने बनवाई थी, लेकिन बाद में उसे साधुओं को रहने के लिये दे दी और स्वयं ने दूसरी वसति अपने लिए बनवा ली। वह वर्ज्य होने के कारण साधु के लिये वर्ज्या-त्याज्य है।

६. **महावर्ज्या** - जो वसति (मकान) बहुत से-श्रमणों भिक्षाचरों, ब्राह्मणों आदि को गिन गिन कर उनके ठहरने के लिये गृहस्थ नये सिरे से आरम्भ करके बनवाता है, वह महावर्ज्या कहलाती है। वह साधु साध्वी के लिये अकल्पनीय है।

७. **सावद्या** - जो वसति पांचों ही प्रकार के श्रमणों (निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक, आजीविक) के लिये गृहस्थ बनाता है वह सावद्या-शय्या कहलाती है।

८. **महासावद्या** - जो सिर्फ जैन श्रमणों के निमित्त ही गृहस्थ द्वारा बनवाई जाती है वह महासावद्या-शय्या कहलाती है।

९. **अल्पसावद्य क्रिया** - जो शय्या पूर्वोक्त (कालातिक्रान्तादि) दोषों से रहित गृहस्थ के द्वारा केवल अपने लिये ही, अपने ही प्रयोजन से बनवाई जाती है और उसमें विचरण करते हुए साधु-साध्वी अनायास ही ठहर जाते हैं वह अल्प सावद्य क्रिया कहलाती है। 'अल्प' शब्द यहाँ अभाव का वाचक है। अतएव ऐसी वसति सावद्यक्रिया रहित अर्थात् निर्दोष है।

इस विषय में टीकाकार ने भी लिखा है - '**अल्पशब्दो अभाव वाचीति**'।

उक्त नौ प्रकार की शय्याओं में से तीसरी अभिक्रान्त नाम की शय्या तथा नववीं अल्प सावद्य (अभाव सावद्य) नाम की शय्या ये दो प्रकार की शय्याएँ साधु साध्वी के उतरने योग्य हैं, कल्पनीय हैं क्योंकि ये दोनों शय्याएँ गृहस्थ ने अपने लिये बनाई है किन्तु जैन साधु साध्वी के लिये नहीं और इन दोनों प्रकार की शय्याओं को गृहस्थ ने अपने काम में भी ले ली है।

इस विषय में टीकाकार ने भी लिखा है -

"**एताश्च नव वसतयो यथाक्रमं नवभिरनन्तरसूत्रैः प्रतिपादितः, आसु चाभिक्रान्ताल्पक्रिये योग्ये शेषास्त्व योग्या इति॥**"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - उपरोक्त नौ सूत्रों में नौ प्रकार की शय्याओं का वर्णन किया गया है, इन नौ में से तीसरी अभिक्रान्ता और नवमी अल्पसावद्य-असावद्यक्रिया ये दो जैन साधु साध्वी के उतरने के योग्य हैं, शेष सात शय्याएँ उतरने के योग्य नहीं हैं।

।। दूसरे अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

दूसरे अध्ययन का तृतीय उद्देशक

से य णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे णो य खलु सुद्धे इमेहिं पाहुडेहिं तं जहा-छायणओ लेवणओ संथारदुवारपिहणओ पिंडवाएसणाओ, से य भिक्खू चरिया रए, ठाण रए, णिसीहिया रए, सिज्जा संथारपिंडवाएसणा रए संति भिक्खुणो एवमक्खाइणो उंजुया णियागपडिवण्णा अमायं कुव्वमाणा वियाहिया। संतेगइया पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवइ, एवं णिक्खित्तपुव्वा भवइ, परिभाइयपुव्वा भवइ, परिभुत्तपुव्वा भवइ, परिट्ठवियपुव्वा भवइ, एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरेइ? हंता भवइ ॥ ८७ ॥

कठिन शब्दार्थ - सुलभे - सुलभ, **उंछे** - उंछ-छादन आदि दोषों से रहित, **पाहुडेहिं**- पाप कर्मों के उपादान से, **पिंडवाएसणाओ** - पिंडपानैषणा की दृष्टि से, **चरिया रए** - विहार की चर्या में रत, **ठाण रए** - कायोत्सर्गादि में रत, **णिसीहिया रए** - स्वाध्याय में रत, **सिज्जासंथारपिंडवाएसणा रए** - शय्या संस्तारक तथा आहार आदि की गवेषणा में रत, **उज्जुया** - सरल, **णियागपडिवण्णा** - नियागप्रतिपन्न-मोक्ष मार्ग के पथिक, **अमायं** - माया नहीं, **कुव्वमाणा** - करने वाले, **उक्खित्तपुव्वा** - उत्क्षिप्तपूर्वा 'इस स्थान (उपाश्रय) में रहो' यह कह कर पहले बतलाया हुआ, **णिक्खित्तपुव्वा**- रखा हुआ, **परिभाइयपुव्वा** - पहले ही बांटा हुआ है, **परिभुत्तपुव्वा** - पहले काम में ले चुके हैं, **परिट्ठवियपुव्वा** - पहले त्यागा हुआ, **समियाए** - सम्यक्, **वियागरेइ** - कथन करता है।

भावार्थ - यदि कोई गृहस्थ साधु से कहे कि यहाँ आहार-पानी सुलभ है अतः आप यहाँ रहने की कृपा करो, तब इस प्रकार उत्तर दे कि आहार-पानी की सुलभता होते हुए भी निर्दोष उपाश्रय का मिलना मुश्किल है। क्योंकि साधु के लिए उस उपाश्रय में कहीं छत डाली हो, लींपा पोती की हो या भूमि को समतल की हो, बैठक में फेर फार किया हो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दरवाजा या किवाड छोटे बड़े किये हों, कदाचित् साधु ने वहाँ रहते हुए शय्यातर दोष टालने के लिए मकान मालिक के घर का आहार पानी ग्रहण न किया हो, जिससे शय्यातर गृहस्थ रुष्ट हो जाय, इत्यादि अनेक दोष संभव है। यदि कदाचित् उपरोक्त दोषों से रहित उपाश्रय मिल भी जाय तो भी साधु की आवश्यकता के अनुकूल मकान मिलना कठिन है। क्योंकि कुछ साधु विहार चर्या में रत होते हैं, कोई कायोत्सर्ग में अनुरक्त रहते हैं तो कुछ स्वाध्यायादि में व्यस्त रहते हैं तथा कोई शय्या संस्तारक आहारादि की शुद्ध गवेषणा करने वाले होते हैं। अतः उपरोक्त क्रियाओं के लिए योग्य एवं अनुकूल उपाश्रय मिलना कठिन ही है। इस प्रकार कितने ही सरल, मोक्षगामी मुमुक्षु निष्कपटता से उपाश्रय के दोष बतला देते हैं।

कई बार कितने ही गृहस्थ साधु से छल युक्त वार्तालाप करते हैं और कहते हैं कि - "यह मकान हमने अपने लिए ही बनवाया है इसे खाली रख छोड़ा है आपस में बांट लिया है अथवा हम पहले ही इसे काम में ले चुके हैं, हमने इसे त्याग दिया है।" विचक्षण साधु इस प्रकार के छल में न फंसे, उनके धोखे में नहीं आये। जो मुनि इस प्रकार के उपाश्रय के दोषों को सम्यक् प्रकार से बतला देता है तो सूत्रकार कहते हैं कि वह सम्यक् वक्ता मुनि है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त '**चरिया रए**' पद से विहार चर्या का, '**ठाण रए**' पद से ध्यानस्थ होने का '**णिसिहिया रए**' से स्वाध्याय का '**उज्जुया**' से छल कपट रहित सरल स्वभाव वाला होने का एवं '**णियागपडिवण्णा**' पद से संयम में मोक्ष के ध्येय को सिद्ध करने वाला बताया है और '**संतेगइया पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवइ**' पद से यह स्पष्ट किया गया है कि साधु के उद्देश्य से बनाए गए उपाश्रय को निर्दोष बताना तथा '**एवं परिभुत्तपुव्वा भवइ, परिट्ठवियपुव्वा भवइ**' आदि पदों से इस बात को बताया गया है कि कुछ श्रद्धालु भक्त रागवश सदोष मकान को भी छल-कपट से निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तो साधु को उनकी बातों में नहीं आना चाहिये।

शुद्ध निर्दोष उपाश्रय के लिए सर्वप्रथम तीन बातें आवश्यक हैं - १. **प्रासुक** - आधाकर्म आदि दोषों से रहित २. **उंछ** - छादनादि उत्तर गुण दोषों से रहित और ३. **एषणीय** - मूल गुण और उत्तर गुण दोषों रहित। इन तीनों के अतिरिक्त वह स्थान साधु साध्वी की आवश्यक क्रियाओं स्वाध्याय, ध्यान आदि के लिए भी उपयुक्त होना चाहिये। इसीलिए निर्दोष एवं उपयुक्त उपाश्रय (शय्या) का मिलना दुर्लभ बताया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'**उज्जुया**' के स्थान पर पाठान्तर हैं - '**उज्जुकडा, उज्जुयकड्डा, उजुअडा**' आदि।

उत्थानिका - साधु साध्वी अपने साधर्मिक साधु साध्वियों के साथ ही ठहरे परन्तु यदि कदाचित् स्वतंत्र मकान न मिले ऐसी परिस्थिति वश साधु साध्वी को अन्य मतावलम्बी चरक, परिव्राजक आदि भिक्षुओं के साथ ठहरना पडे तो किस विधि से ठहरना चाहिए। इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-खुड्डियाओ खुड्डदुवारियाओ णिययाओ संणिरुद्धाओ भवंति-तहप्पगारे उवस्सए राओ वा वियाले वा णिक्खममाणे वा पविसमाणे वा पुरा हत्थेण वा पच्छा पाएण वा तओ संजयामेव णिक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा। केवली बूया-आयाणमेयं। जे तत्थ समणाण वा माहणाण वा छत्तए वा मत्तए वा, दंडए वा, लट्ठिया वा, भिसिया वा, णालिया वा, चेले वा, चिलिमिली वा, चम्मए वा, चम्मकोसए वा, चम्मछेयणए वा, दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले भिक्खू य राओ वा वियाले वा णिक्खममाणे वा पविसमाणे वा पयलिज्ज वा पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलेमाणे वा पवडेमाणे वा हत्थं वा पायं वा जाव इंदियजायं वा लूसिज्ज वा पाणाणि जाव सत्ताणि अभिहणिज्ज वा जाव ववरोविज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा जाव जं तहप्पगारे उवस्सए पुरा हत्थेणं पच्छा पाएणं, तओ संजयामेव णिक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा॥ ८८॥

कठिन शब्दार्थ - णिययाओ - नीचा, **संणिरुद्धाओ** - रुंधा हुआ हो, खाली न हो, **छत्तए** - छत्र, **मत्तए** - पात्र, **दंडए** - दंड, **लट्ठिया** - लाठी, **भिसिया** - आसन विशेष, **णालिया** - नालिका-लाठी विशेष-जो लकड़ी अपने शरीर से चार अंगुल लम्बी हो, **चेले** - वस्त्र, **चिलिमिली** - यवनिका (पर्दा)-मच्छरदानी, **चम्मए** - मृग छाल, **चम्मकोसए** - चर्म-कोश-चर्म की थैली, **चम्मछेयणए** - चर्म छेदनक-चर्म (चमड़ा) काटने के औजार, **दुब्बद्धे** - जो अच्छी तरह से बांधा हुआ न हो, **दुण्णिक्खित्ते** - जो अच्छी तरह से रखे न हो, **अणिकंपे** - अनिष्कंप, **चलाचले** - चलाचल (अस्थिर)।

भावार्थ - साधु या साध्वी जिस उपाश्रय के विषय में ऐसा जाने कि-यह छोटा है, छोटे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वार वाला है, नीचा है अथवा चरक आदि भिक्षुओं से भरा हुआ है कारण विशेष से साधु को ऐसे स्थान में ठहरना पडे तो रात्रि में अथवा विकाल में निकलते हुए या प्रवेश करते समय पहले हाथ से टटोल कर फिर पैर आगे करके यतनापूर्वक गमनागमन करना चाहिये। केवली भगवान् का कथन है कि ऐसे उपाश्रय कर्म बंध के कारण हैं। क्योंकि वहाँ रहे हुए अन्यतीर्थियों, चरक तापसादि के छत्र, पात्र, दंड, लाठी, आसन, नलिका, वस्त्र, यवनिका (मच्छरदानी) मृगछाल, चमडे की थैली अथवा चर्म काटने के उपकरण विशेष जैसे तैसे बिखरे हुए पडे हों, अच्छी तरह से बंधे हुए न हो, हिलडुल रहे हो, अस्थिर हो, उन परिव्राजकों के उपकरणों को नुकसान पहुँचने का डर हो क्योंकि रात्रि या विकाल में साधु अयतना पूर्वक गमनागमन करता हुआ कदाचित् फिसल पडे, गिर जाय तो हाथ पैर या शरीर का अन्य कोई अवयव टूट जाय और वहाँ रहे प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व की हिंसा हो जाय अतः साधु का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि ऐसे उपाश्रय में रहते हुए पहले हाथ से टटोले फिर पैर आगे रखे और यत्नापूर्वक भीतर से बाहर निकले और बाहर से भीतर प्रवेश करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी को अपनी आत्मा एवं संयम की विराधना से बचने के लिये रात्रि एवं विकाल के समय आवश्यक कार्य से उपाश्रय के बाहर जाते समय एवं पुनः उपाश्रय में प्रवेश होते समय विवेक पूर्वक एवं यतना पूर्वक गमनागमन करना चाहिये।

से आगंतारेसु वा अणुवीइ उवस्सयं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समहिट्ठाए ते उवस्सयं अणुण्णविज्जा कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसिस्सामो जाव आउसंतो ! जाव आउसंतस्स उवस्सए जाव साहम्मियाए तओ उवस्सयं गिण्हिस्सामो, तेणं परं विहरिस्सामो॥

कठिन शब्दार्थ - अणुवीइ - विचार करके, **ईसरे** - ईश्वर-स्वामी, **समहिट्ठाए** - समधिष्ठाता-जिन के अधिकार में हो, **अणुण्णविज्जा** - आज्ञा मांगे, **अहालंदं** - यथालंद-जितने समय के लिए कहा गया हो उतना समय, **अहापरिण्णायं** - जितनी जगह के लिए कहा गया हो उतनी जगह में।

भावार्थ - साधु साध्वी भलीभांति विचार करके धर्मशाला, उद्यान आदि में स्थान की याचना करे। उस स्थान का जो स्वामी हो अथवा जिसके अधिकार में वह स्थान हो, उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा लेवे कि हे आयुष्मन्! जितने समय पर्यंत और जितने भूमिभाग में आप हमें रहने की आज्ञा देंगे, उतने ही समय तक और उतने ही स्थान में हम निवास करेंगे। (कदाचित् गृहस्थ यह पूछे कि तुम कितने साधु यहाँ रहोंगे? तो मुनि को निश्चित् संख्या में नहीं बंधना चाहिए किन्तु इस प्रकार कहे कि-जितने हमारे साधर्मिक आयेंगे उतने ठहरेंगे और अवधि पूर्ण होने पर अन्यत्र विहार कर जावेंगे।)

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उपाश्रय की याचना करने की विधि का उल्लेख किया गया है। मूल पाठ में प्रयुक्त **अहालंदं** - यथालंद शब्द का अर्द्धमागधी कोष (पृ० ४५७) में इस प्रकार अर्थ किया है - 'जितने समय के लिये कहा गया हो उतने समय तक ठहरें', पानी से भीगा हुआ हाथ जितनी देर में सूखे उतने समय को जघन्य यथालन्द काल कहते हैं और पांच दिन की अवधि को उत्कृष्ट यथालन्दकाल कहते हैं तथा उन दोनों के बीच के समय को मध्य यथालन्द काल कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जस्सुवस्सए संवसिज्जा तस्स पुव्वामेव णामगोत्तं जाणिज्जा। तओ पच्छा तस्स गिहे णिमंतेमाणस्स वा अणिमंतेमाणस्स वा, असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ ९०॥

कठिन शब्दार्थ - **जस्स** - जिसके, **उवस्सए** - उपाश्रय में, **संवसिज्जा** - ठहरे, **णामगोत्तं** - नाम और गोत्र को, **गिहे** - घर में, **णिमंतेमाणस्स** - निमंत्रित करते हुए के।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी जिसके मकान में ठहरे उस गृहस्थ के नाम और गोत्र को पहले ही जानले। तत्पश्चात् उसके घर से निमंत्रण मिलने पर या न मिलने पर अशनादिक आहार ग्रहण न करे।

विवेचन - **प्रश्न** - शय्यातर किसे कहते हैं ?

उत्तर - मकान मालिक को शय्यातर कहते हैं। शय्यातर शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है-शय्या+तर। शय्या का अर्थ है-मकान और तर का अर्थ है-तैरने वाला अर्थात् साधु को मकान का दान दे कर संसार समुद्र से तैरने वाला। शय्यातर शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

"शय्यया साधु साध्वीभ्यः स्थान प्रदानेन तरति संसार समुद्रम् इति शय्यातरः"

अर्थ - साधु साध्वियों को ठहरने के लिये शय्या (मकान) देकर जो संसार समुद्र को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर जाता हैं उसको शय्यातर कहते हैं। मकान देने का महान् लाभ हैं इसलिए केवल शय्या (मकान) देकर ही संसार समुद्र से तिर जाता हैं। ऐसा कहा है।

प्रस्तुत सूत्र में भगवान् ने शय्यातर के घर का आहार पानी लेने का निषेध किया है। इसीलिए शय्यातर के नाम, गोत्र आदि का परिचय करना जरूरी है। जिससे आहारादि के लिए उसके घर को छोडा जा सके।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा सागारियं सागणियं सउदयं णो पण्णस्स णिक्खमणपवेसाए जाव अणुचिंताए तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ९१॥

कठिन शब्दार्थ - **सागारियं** - गृहस्थों के संसर्ग वाला, **सागणियं** - अग्नि से युक्त, **सउदयं** - जल से युक्त, **पण्णस्स** - प्रज्ञावान साधु को।

भावार्थ - वह साधु अथवा साध्वी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि से युक्त हो, सचित्त जल से युक्त हो तो उसमें प्रज्ञावान् साधु साध्वी को प्रवेश करना और निकलना उचित नहीं है और न ही ऐसा उपाश्रय धर्मानुयोग चिंतन के लिए उपयुक्त है। ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग, शयन-आसन तथा स्वाध्याय आदि नहीं करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है साधु साध्वी को ऐसे स्थान में नहीं ठहरना चाहिए जिसमे गृहस्थों का विशेष कर के साधुओं के स्थान में बहनों का एवं साध्वियों के स्थान में पुरुषों का आवागमन रहता हो तथा जो स्थान अग्नि एवं पानी से युक्त हो।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पंथए पडिबद्धं वा णो पण्णस्स जाव चिंताए तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ९२॥

कठिन शब्दार्थ - **मज्झंमज्झेणं** - मध्य मध्य में होकर, **गंतुं** - जाने का, **पंथए** - मार्ग, **पडिबद्धं**- प्रतिबद्ध-बंधा हुआ, अपना बनाकर रखा हुआ।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी को-जिस उपाश्रय में गृहपति के कुल (घर) के मध्य मध्य में (बीचोंबीच) होकर जाने का मार्ग है जिससे आने जाने में स्वाध्याय आदि में अड़चन आती हो तो उस उपाश्रय में नहीं रहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा जाव उद्दवेंति वा णो पण्णस्स जाव चिंताए सेवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ९३ ॥

कठिन शब्दार्थ-अण्णमण्णं - परस्पर, **अक्कोसंति**-आक्रोश करते हैं, **उद्दवेंति** - उपद्रव करते हैं।

भावार्थ - साधु या साध्वी जिस उपाश्रय के विषय में ऐसा जाने कि-वहाँ गृहस्थ, गृहस्थ की पत्नी यावत् दास दासियाँ परस्पर एक दूसरे को कोसती हैं, मारती हैं, पीटती हैं यावत् उपद्रव करती हैं तो बुद्धिमान् साधु ऐसे उपाश्रय में निवास आदि न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं तिल्लेण वा, घएण वा, णवणीएण वा, वसाए वा, अब्भंगेंति वा मक्खेंति वा णो पण्णस्स जाव चिंताए तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ९४ ॥

कठिन शब्दार्थ - अब्भंगेंति - मर्दन करते हैं, **मक्खेंति** - लगाते हैं।

भावार्थ - जिस उपाश्रय में गृहस्थ यावत् दास दासियाँ आपस में तेल, मक्खन, घी और वसा से शरीर का मर्दन करते हैं या लगाते हैं जिससे स्वाध्यायादि धर्म चिंतन में बाधा आती हो तो ऐसे उपाश्रय में साधु-साध्वी को नहीं ठहरना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं सिणाणेण वा, कक्केण वा, लोद्धेण वा, वण्णेण वा, चुण्णेण वा, पउमेण वा, आघंसंति वा, पघंसंति वा, उव्वलंति वा, उवट्टिंति वा, णो पण्णस्स णिक्खमण जाव चिंताए तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्ज वां, णिसीहियं वा चेइज्जा ॥ ९५ ॥

भावार्थ - जिस उपाश्रय के विषय में साधु-साध्वी ऐसा जाने कि-यहां गृहस्थ यावत् नौकरानियाँ आपस में शरीर को जल, सुगंधित द्रव्य, लोध, चूर्ण और पद्म से मल कर साफ करती हैं, मसल कर मैल उतारती हैं, उबटन (पीठी आदि) करती हैं जिससे साधु साध्वी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को स्वाध्यायादि धार्मिक कार्य में बाधा आती हो तो ऐसे उपाश्रय में साधु साध्वी नहीं ठहरे, स्वाध्यायादि न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलंति वा पहोयंति वा सिंचंति वा सिणावेंति वा, णो पण्णस्स जाव णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ९६॥

भावार्थ - जिस उपाश्रय में गृहस्थ यावत् नौकरानियाँ आपस में शीतल अथवा उष्ण जल से उछालते हुए छींटे देते हैं, शरीर को धोते हैं, जल से सिंचन करते हैं, स्नान कराते हैं तो बुद्धिमान् साधु ऐसे उपाश्रय को धार्मिक क्रियाओं में बाधक जानकर वहां निवास, शय्या, स्वाध्यायादि न करे अर्थात् वहाँ ठहरे नहीं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा-इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा णिगिणा ठिया, णिगिणा उवल्लीणा मेहुणधम्मं विण्णवेंति रहस्सियं वा मंतं मंतेंति, णो पण्णस्स जाव णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ९७॥

कठिन शब्दार्थ - णिगिणा - नग्न, **ठिया** - स्थित, **उवल्लीणा** - गुप्त, छिपा हुआ, **विण्णवेंति**- कह रहे हैं, **रहस्सियं** - रहस्य को, **मंतं मंतेंति** - गुप्त मंत्रणा कर रहे हैं।

भावार्थ - जिस उपाश्रय में गृहपति यावत् दास दासियाँ आदि नग्नावस्था में खड़े हों अथवा नग्न होकर छिपे हुए हों और मैथुन धर्म विषयक परस्पर वार्तालाप कर रहे हों अथवा रहस्यमय अकार्य के लिए गुप्त मंत्रणा करते हों तो बुद्धिमान् साधु ऐसे उपाश्रय को धार्मिक चिंतन मनन में बाधक मानकर वहां निवास न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उवस्सयं जाणिज्जा - आइण्णसंलिक्खं, णो पण्णस्स जाव चिंताए जाव णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेइज्जा॥ ९८॥

कठिन शब्दार्थ - आइण्णसंलिक्खं - स्त्री-पुरुष आदि के चित्रों से सुसज्जित।

भावार्थ - जो उपाश्रय स्त्री-पुरुष आदि के चित्रों से सुसज्जित हो ऐसे उपाश्रय में प्रज्ञावान् साधु साध्वी को निवास, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा संथारगं एसित्तए, से जं पुण संथारगं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणगं तहप्पगारं संथारगं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **संथारगं** - संस्तारक-पाट, फलक आदि।

भावार्थ - जो साधु या साध्वी तख्त, पाट, फलक आदि के विषय में संस्तारक की गवेषणा करनी चाहे तो संस्तारक के बारे में जाने कि-वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो ऐसे संस्तारक को मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं गरुयं तहप्पगारं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **गरुयं** - भारी, **अप्पंडं** - अण्डों से रहित, **अप्पसंताणं** - जालों से रहित।

भावार्थ - जो संस्तारक अंडादि यावत् जालों से रहित है, किन्तु भारी है तो ऐसे संस्तारक को साधु या साध्वी मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं लहुयं अपाडिहारियं, तहप्पगारं संथारगं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **लहुयं** - छोटा (हल्का), **अपाडिहारियं** - अपडिहारी-अप्रातिहारिक-गृहस्थ जिसे देने के बाद वापस नहीं लेना चाहता हो।

भावार्थ - जो संस्तारक अंडों आदि से रहित हो, छोटा और हल्का भी हो, परन्तु अपडिहारी-गृहस्थ जिसे देने के बाद वापस लेना नहीं चाहता हो तो साधु या साध्वी ऐसे संस्तारक को मिलते हुए भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं लहुयं पाडिहारियं णो अहाबद्धं तहप्पगारं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

भावार्थ - जो संस्तारक अण्डों आदि से रहित है, लघु है, गृहस्थ ने जिसे पुनः लेना भी स्वीकार कर लिया है परन्तु जो ठीक तरह से बंधा हुआ न हो (उसके बंधन शिथिल हो) हिलता-डुलता हो तो साधु या साध्वी ऐसे संस्तारक को मिलने पर भी ग्रहण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं लहुयं पाडिहारियं, अहाबद्धं तहप्पगारं संथारगं जाव लाभे संते पडिगाहिज्जा॥ ९९॥

भावार्थ - साधु या साध्वी जिस संस्तारक को अंडों यावत् मकडी के जालों से रहित, लघु (हल्का), पडिहारी (प्रातिहारिक) और अच्छी तरह बंधा हुआ (जिसके बंधन सुदृढ़ हो) जाने, तो ऐसे संस्तारक को मिलने पर ग्रहण कर सकता हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में संस्तारक-पीठ, फलक आदि के ग्रहण करने की विधि बताई गई है जो संस्तारक अण्डे, जाले आदि जीव जंतुओं से रहित हो, वजन में हल्का हो, साधु की आवश्यकता पूरी होने पर गृहस्थ उसे वापिस लेने के लिए कह चुका हो और जिसके बंधन मजबूत हो वही संस्तारक साधु साध्वी को ग्रहण करना चाहिये। अण्डे आदि से युक्त पाट आदि ग्रहण करने से जीवों की हिंसा होगी अतः संयम की विराधना होगी। साधु साध्वी को गृहस्थ के घर से पाट-बाजोट आदि लाने की आवश्यकता हो तो एक साधु या साध्वी एक हाथ से उठा सके ऐसा हल्का पाट-बाजोट आदि ही लाना चाहिए। अधिक भारी उठाकर लाने से शरीर को विशेष कष्ट होगा तथा अधिक बोझ के कारण रास्ते में पैर आदि के इधर-उधर पडने से पैर आदि में चोट भी आ सकती हैं इस तरह आत्म- विराधना होगी। अतः हल्का पाट आदि लाना चाहिए। यदि गृहस्थ उस पाट-बाजोट आदि को वापस नहीं लेता है तो फिर साधु साध्वी के सामने यह प्रश्न प्रस्तुत होगा कि वह उसे कहाँ रखे क्योंकि उसको उठाकर तो वह विहार नहीं कर सकता और एक व्यक्ति के यहाँ से ली हुई वस्तु दूसरे के यहाँ छोड़ भी नहीं सकता तथा यों ही उपाश्रय में छोड़कर विहार भी नहीं कर सकता। शिथिल बंधन वाला होगा तो उठाते, रखते ही वह टूट जाएगा (बिखर जाएगा) उसको संभालना या प्रतिलेखन करना भी संभव नहीं होगा। अतः साधु साध्वी को अण्डे जाले आदि से रहित, वजन में हल्का, साधु साध्वी की आवश्यकता पूरी होने पर गृहस्थ उसे वापस लेने को स्वीकार करने का कह चुका हो और जिसके बंधन मजबूत हो वही पाट-बाजोट आदि को साधु साध्वी को ग्रहण करना चाहिए। संस्तारक ग्रहण करने के लिए किए जाने वाले अभिग्रहों का उल्लेख करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइक्कम्म अह भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाणिज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इमाइं चउहिं पडिमाहिं संथारगं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उद्दिसिय उद्दिसिय संथारगं जाइज्जा, तंजहा-इक्कडं वा, कढिणं वा, जंतुयं वा, परगं वा, मोरगं वा, तणगं वा, सोरगं वा, कुसं वा, कुच्चगं वा, पिप्पलगं वा, पलालगं वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसो त्ति वा, भगिणी त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं संथारगं? तहप्पगारं संथारगं सयं वा णं जाइज्जा, परो वा से दिज्जा, फासुयं एसणिज्जं जाव पडिगाहिज्जा। पढमा पडिमा॥ १००॥

कठिन शब्दार्थ - **उद्दिसिय उद्दिसिय** - नाम ले ले कर, **इक्कडं** - इक्कड नामक घास विशेष, **कढिणं** - बांस की छाल, **जंतुयं** - जंतुक नामक तृण को, **परगं** - परक नामक घास को, **मोरगं** - मयूर के पंखों से निर्मित, **सोरगं** - सोर नामक कोमल तृण विशेष से निर्मित, **कुसं** - डाभ को, **कुच्चगं**- शर नामक घास का, **पिप्पलगं** - पीपल के पत्तों का, **पलालगं** - पराल (पयाल-पलाल) का।

भावार्थ - साधु साध्वी पूर्वोक्त दोषों को त्याग कर इन चार प्रतिज्ञाओं से संस्तारक की गवेषणा करे, उनमें से पहली प्रतिज्ञा यह है कि - साधु अथवा साध्वी इक्कड़ नामक घास का संस्तारक, बांस की छाल से बना संस्तारक (सालडी) जंतुक नामक घास का संस्तारक, पुष्पादि के गुंथन करने वाली घास विशेष का संस्तारक, मोर के पंखों का संस्तारक, दूब, कुशादि तृण विशेष से निर्मित संस्तारक, शर नामक घास (जिसके कूर्चक आदि बनते हैं) का संस्तारक, पीपल के पत्तों का संस्तारक अथवा पराल का संस्तारक इत्यादि संस्तारकों में से नाम का उल्लेख करके संस्तारक की याचना करे। साधु या साध्वी पूर्व में ही विचार कर कहे कि हे आयुष्मन्! अथवा बहन! क्या तुम मुझे इन संस्तारकों में से अमुक संस्तारक दोगे/दोगी? इस प्रकार के प्रासुक और निर्दोष संस्तारक की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ ही बिना याचना किए दे तो ग्रहण करे। यह पहली प्रतिमा-प्रतिज्ञा है।

अहावरा दुच्चा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पेहाए संथारगं जाइज्जा, तंजहा-गाहावइं वा कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसो त्ति वा भगिणि त्ति वा दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं संथारगं? तहप्पगारं संथारगं सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं एसणिज्जं जाव पडिगाहिज्जा। दुच्चा पडिमा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसके पश्चात् दूसरी प्रतिमा यह है कि - साधु या साध्वी गृहस्थ आदि के यहां रखे हुए संस्तारक को देखकर ही उसकी याचना करे, उन्हें पूर्व में ही कहे कि - हे आयुष्मन् अथवा बहिन ! क्या तुम मुझे इन संस्तारकों में से किसी एक संस्तारक को दोगे? यदि निर्दोष और प्रासुक संस्तारक मिले तो उसे ग्रहण करे। यह दूसरी प्रतिमा है।

अहावरा तच्चा पडिमा - से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जस्सुवस्सए संवसिज्जा जे तत्थ अहासमण्णागए तंजहा - इक्कडे इ वा जाव पलाले इ वा, तस्स लाभे संवसिज्जा तस्स अलाभे उक्कुडुए वा णेसज्जिए वा विहरिज्जा। तच्चा पडिमा।। १०१ ॥

कठिन शब्दार्थ - उक्कुडुए - उत्कुटुक आसन से, **णेसज्जिए** - पालथी (पद्मासन) से।

भावार्थ - तीसरी प्रतिमा यह है कि - साधु अथवा साध्वी ने जिसके उपाश्रय में निवास किया हो (ठहरा हो) उसके यहां से ही पूर्वोक्त संस्तारकों में से कोई संस्तारक मिल जाय, तो उसे ग्रहण करना और यदि नहीं मिले तो उत्कुटुक (उकडू) आसन अथवा पालथी (पद्मासन) आदि आसनों से रात्रि व्यतीत करना। यह तीसरी प्रतिमा है।

अहावरा चउत्था पडिमा - से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहासंथडमेव संथारगं जाइज्जा तंजहा - पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहासंथडमेव तस्स लाभे संते संवसिज्जा तस्स अलाभे उक्कुडुए वा णेसज्जिए वा विहरिज्जा। चउत्था पडिमा ॥

भावार्थ - चौथी प्रतिमा यह है कि - साधु अथवा साध्वी पृथ्वी-शिला या काष्ट का संस्तारक जो पहले ही बिछा हुआ हो उसको ग्रहण करे, यदि इस प्रकार का संस्तारक नहीं मिले तो सम्पूर्ण रात्रि उकडू आसन या पद्मासन से व्यतीत करे, यह चौथी प्रतिमा है।

इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं अण्णयरं पडिमं पडिवज्जमाणे तं चेव जाव अण्णोण्णसमाहीए एवं च णं विहरंति ॥ १०३ ॥

कठिन शब्दार्थ - अण्णोण्णसमाहीए - परस्पर समाधि से।

भावार्थ - इन चार प्रतिज्ञाओं में से किसी भी प्रतिज्ञा को ग्रहण करने वाला मुनि, अन्य साधुओं की निंदा (हीलना) न करे कारण कि वे सभी साधु परस्पर समाधि पूर्वक जिनाज्ञा में विचरते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने संस्तारक की चार प्रतिमाओं का वर्णन किया है जो इस प्रकार है -

१. उद्दिष्टा - फलक आदि में से जिस किसी एक संस्तारक का नामोल्लेख किया है, उसी को मिलने पर ग्रहण करूंगा, दूसरे संस्तारक को ग्रहण नहीं करूंगा।

२. प्रेक्ष्या - जिस का पहले नामोल्लेख किया उसी को देख कर ग्रहण करूंगा, अन्य को नहीं।

३. विद्यमाना - यदि उद्दिष्ट और प्रेक्ष्या संस्तारक शय्यातर के घर में मिलेगा तो ग्रहण करूंगा अन्य स्थान से लाकर नहीं।

४. यथा संस्तृतरूपा - यदि उपाश्रय में सहज रूप से रखा हुआ या बिछा हुआ पाट आदि संस्तारक मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं।

साधु साध्वी इन चारों में से कोई भी प्रतिमा (प्रतिज्ञा) ग्रहण कर सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तिए से जं पुण संथारगं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणयं, तहप्पगारं संथारगं णो पच्चप्पिणिज्जा॥ १०४॥

कठिन शब्दार्थ - पच्चप्पिणित्तिए - वापस लौटाना।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी यदि संस्तारक गृहस्थ को वापिस देना चाहे और वह संस्तारक अंडों यावत् मकडी के जालों से युक्त हो तो उसे उसी अवस्था में वापस नहीं लौटावे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तिए से जं पुण संथारगं जाणिज्जा अप्पंडं जाव असंताणगं तहप्पगारं संथारगं पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय आयाविय आयाविय विहुणिय विहुणिय तओ संजयामेव पच्चप्पिणिज्जा॥ १०५॥

कठिन शब्दार्थ - आयाविय - आतापना देकर, **विहुणिय** - झाड़ कर।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी अण्डे एवं मकड़ी के जालों-सूक्ष्म जीव-जंतुओं से रहित जिस संस्तारक को पुनः लौटाना चाहे तो उसे सम्यक् प्रकार से बार-बार प्रतिलेखन प्रमार्जन करके, सूर्य ताप से आतापना देकर एवं यत्नापूर्वक झाड़ कर फिर गृहस्थ को लौटावे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी को अपनी नेश्राय में रही हुई प्रत्येक वस्तु की कालोकाल प्रतिलेखना करते रहना चाहिये। चाहे वह वस्तु गृहस्थ को वापिस लौटाने की भी क्यों न हो फिर भी जब तक साधु साध्वी के पास है तब तक प्रतिदिन नियत समय पर उसका प्रतिलेखन करना चाहिये जिससे उसमें जीव जन्तु की उत्पत्ति न हो और उसे वापिस लौटाते समय भी प्रतिलेखन करके लौटानी चाहिये। यदि संस्तारक अंडे या जाले आदि से युक्त हो तो उसे उसी अवस्था में गृहस्थ को नहीं लौटना चाहिये क्योंकि गृहस्थ उसे शुद्ध बनाने का प्रयत्न करेगा परिणाम स्वरूप जीवों की घात होगी और साधु साध्वी के प्रथम महाव्रत में दोष लगेगा अतः जीवों की रक्षा के लिए साधु साध्वी को गृहस्थ के घर से लाए हुए संस्तारक को वापिस लौटाते समय उसकी शुद्धता का पूरा ख्याल रखना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा पुव्वामेव पण्णस्स उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहिज्जा, केवली बूया आयाणमेयं। अपडिलेहियाए उच्चार पासवणभूमीए भिक्खू वा भिक्खुणी वा राओ वा वियाले वा उच्चारपासवणं परिट्ठवेमाणे पयलिज्ज वा पवडिज्ज वा, से तत्थ पयलेमाणे वा पवडेमाणे वा हत्थं वा पायं वा जाव लूसिज्जा वा पाणाणि वा भूयाणि वा जीवाणि वा सत्ताणि वा ववरोविज्जा। अह भिक्खू णं पुव्वोवइट्ठा जाव जं पुव्वामेव पण्णस्स उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहिज्जा॥ १०६॥

भावार्थ - साधु या साध्वी को किसी स्थान पर रहते हुए, मास कल्पादि बीताते हुए अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मल-मूत्र त्यागने का स्थान पहले ही अच्छी तरह देख लेना चाहिये। ऐसा नहीं करने पर केवलज्ञानियों ने इसे कर्म बंध का कारण बताया है। क्योंकि बिना देखी हुई भूमि में साधु अथवा साध्वी रात्रि में या विकाल में मल-मूत्रादि परठते समय कदाचित् फिसल जाय या गिर जाय तो उसके गिरने अथवा फिसलने से हाथ पैर या शरीर का अन्य कोई अंगोपांग टूट जाय या प्राण, भूत, जीव, सत्त्वादि की विराधना हो जाय। अतः साधु साध्वी का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह पहले से ही मल-मूत्र त्यागने की भूमि को अच्छी तरह देख ले।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मल मूत्र त्याग करने की भूमि का प्रतिलेखन करना आवश्यक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बताया गया है और बिना देखी भूमि में मल-मूत्र का त्याग करने की प्रवृत्ति को कर्मबन्ध का कारण कहा है। मल-मूत्र त्यागने की भूमि को शास्त्रीय भाषा में **'उच्चारपासवणभूमि'** (उच्चार प्रस्रवण भूमि) कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा सिज्जा संथारगभूमिं पडिलेहित्तए णण्णत्थ आयरिएण वा उवज्झाएण वा जाव गणावच्छेएण वा बालेण वा वुड्ढेण वा सेहेण वा गिलाणेण वा आएसेण वा अंतेण वा मज्झेण वा समेण वा विसमेण वा पवाएण वा णिवाएण वा तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव बहुफासुयं सिज्जा संथारगं संथरिज्जा॥ १०७॥

कठिन शब्दार्थ- आयरिएण - आचार्य के द्वारा, **उवज्झाएण** - उपाध्याय के द्वारा, **गणावच्छेएण**- गणावच्छेदक के द्वारा, **बालेण** - बाल साधु के द्वारा, **वुड्ढेण** - वृद्ध साधु के द्वारा, **सेहेण** - नवदीक्षित के द्वारा, **गिलाणेण**- रोगी के द्वारा, **आएसेण** - मेहमान साधु के द्वारा, **अंतेण** - अंत में (अंदर), **मज्झेण**- मध्य में, **समेण** - सम भूमि में, **विसमेण** - विषम भूमि में, **पवाएण** - हवा युक्त स्थान में, **णिवाएण**- निर्वात-वायु रहित स्थान में।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी शय्या संस्तारक की भूमि को देखना चाहे तो आचार्य, उपाध्याय यावत् गणावच्छेदक बाल, वृद्ध, नवदीक्षित, रोगी और मेहमान साधु के द्वारा स्वीकार की गयी (रखी हुई) भूमि को छोड़कर शेष अन्य स्थान में-अंत में, मध्य में, सम या विषम भूमि में हवादार अथवा वायु रहित स्थान में भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके यतना पूर्वक अत्यंत प्रासुक शय्या संस्तारक को बिछाये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में शय्या संस्तारक बिछाने की विधि का उल्लेख किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुफासुयं सिज्जा संथारगं संथरित्ता अभिकंखिज्जा बहुफासुए सिज्जा संथारए दुरुहित्तए ॥

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी उपरोक्त बताये अनुसार शय्या संस्तारक बिछाकर उस प्रासुक शय्या (संथारे) पर यतना पूर्वक चढे अर्थात् यतना पूर्व बैठे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुफासुए सिज्जासंथारए दुरुहमाणे से पुव्वामेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव बहुफासुए सेज्जा संथारगे दुरुहिज्जा दुरुहित्ता तओ संजयामेव बहुफासुए सिज्जा संथारए सएज्जा॥ १०८॥

कठिन शब्दार्थ - ससीसोवरियं कायं पाए - मस्तक से पांवों तक सम्पूर्ण शरीर को।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी प्रासुक शय्या पर सोते समय पहले ही सिर से लेकर पैरों तक सम्पूर्ण शरीर को पूंज कर फिर यतनापूर्वक शयन करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुफासुए सिज्जा संथारए सयमाणे णो अण्णमण्णस्स हत्थेण हत्थं, पाएण पायं, काएण कायं आसाइज्जा, से अणासायमाणे तओ संजयामेव बहु- फासुए सिज्जा संथारए सएज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - आसाइज्जा - संघट्टा (स्पर्श) करे या टकराए।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी प्रासुक शय्या पर शयन करता हुआ परस्पर एक दूसरे के हाथ से हाथ का, पैर से पैर का और शरीर से शरीर का स्पर्श नहीं करे, आशातना नहीं करे। इस प्रकार आशातना न करते हुए यतना पूर्वक शयन करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उस्सासमाणे वा, णीसासमाणे वा, कासमाणे वा, छीयमाणे वा, जंभायमाणे वा, उड्डुए वा, वायणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता तओ संजयामेव ऊससिज्जा वा जाव वायणिसग्गं वा करिज्जा॥ १०९॥

कठिन शब्दार्थ - कासमाणे - खांसता हुआ, **आसयं** - मुंह को, **पोसयं** - मल द्वार को, **परिपेहित्ता** - ढक कर।

भावार्थ - साधु या साध्वी उच्छ्वास अथवा निःश्वास लेते हुए खांसते हुए, छींकते हुए, उबासी लेते हुए, डकार लेते हुए अथवा अपान वायु छोडते समय पहले ही मुख या मल द्वार को ढंककर यतना पूर्वक उच्छ्वास निःश्वास ले यावत् अपानवायु छोडे।

विवेचन - प्रश्न - भाषा के पुद्गल चार स्पर्श वाले (शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध) होते हैं और वायुकाय के पुद्गल आठ स्पर्श वाले हैं फिर ये चार स्पर्श वाले भाषा के पुद्गल आठ स्पर्श वाले जीवों की हिंसा कैसे कर सकते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - प्रश्न उचित है, इसका समाधान यह है कि भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण होते समय एवं निस्सरण होते (निकलते-छोड़ते) समय चार स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष) वाले होते हैं। बाद में वे पुद्गल शब्द वर्गणा में परिणत होकर आठ स्पर्श वाले को सुनाई देते हैं। उसके बाद वर्गणा के पुद्गलों के प्रयोग से अचित्त वायु उत्पन्न होती है इससे तथा शरीर से उत्पन्न होने वाली अचित्त वायु को आठ स्पर्श युक्त माना है और वह ठाणाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में पांच प्रकार की बतलाई गयी है यथा - **अक्कंते, धंते, पीलिए, सरीराणुगए, संमुच्छिमे।**

अतः मुंह से निकलने वाली वायु से बाहर के वायुकायिक जीवों की हिंसा होती है।

प्रश्न - यहां एक प्रश्न पैदा हो सकता है कि जब साधु साध्वी मुख पर मुख वस्त्रिका लगाते हैं तब श्वासोच्छ्वास से होने वाली वायुकायिक जीवों की हिंसा को रोकने के लिये मुंह पर हाथ रखने की क्या आवश्यता है?

उत्तर - सामान्य रूप से चलने वाले श्वासोच्छ्वास के समय मुंह पर हाथ रखने की आवश्यकता नहीं है। हाथ रखने का विधान विशेष परिस्थिति के लिये है जैसे कि उबासी डकार आदि के समय जोर से निकलने वाली वायु का वेग मुखवस्त्रिका से नहीं रुक सकता है ऐसे समय पर मुंह पर हाथ रखने का विधान किया है और मुख के साथ नाक का भी ग्रहण किया है जैसे कि छींक आना। जैसे मुख से निकलने वाली वायु के वेग को रोकने के लिए मुख पर हाथ रखने का विधान किया गया है उसी प्रकार अपानवायु के वेग को रोकने के लिए मलद्वार (गुदास्थान) पर हाथ रखने का भी आदेश दिया गया है क्योंकि शब्द पूर्वक निकलने वाली अपान वायु के वेग को चोलपट्टक नहीं रोक सकता है क्योंकि उस समय उसका वेग तेज होता है। अतः इन प्रसंगों पर उक्त स्थानों पर हाथ रखने का विधान किया गया है उस विधान का उद्देश्य केवल वायुकायिक जीवों की रक्षा करना ही है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा समा वेगया सिज्जा भवेज्जा, विसमा वेगया सिज्जा भवेज्जा, पवाया वेगया सिज्जा भवेज्जा, णिवाया वेगया सेज्जा भवेज्जा, ससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अप्पससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सदंसमसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अप्पदंसमसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सउवसग्गा वेगया सेज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवेज्जा, णिरुवसग्गा वेगया सेज्जा भवेज्जा, तहप्पगाराहिं सेज्जाहिं संविज्जमाणाहिं पग्गहियतरागं विहारं विहरिज्जा। णो किंचि वि गिलाइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **वा** - अथवा, **एगया** - किसी दिन या कभी, **भवेज्जा** - मिले, **ससरक्खा** - रज युक्त, **अप्पससरक्खा** - रज से रहित, **सदंसमसगा** - डांस मच्छर युक्त, **अप्पदंसमसगा** - डांस मच्छर रहित, **सपरिसाडा** - गिरी हुई, जीर्णता से युक्त, **अपरिसाड़ा**- नवीन-दृढ़, **सउवसग्गा** - उपसर्गादि युक्त, **णिरुवसग्गा** - उपसर्ग रहित, **संविज्जमाणाहिं** - विद्यमान होने पर, **पग्गहियतरागं** - ग्रहण किये हुए, **गिलाइज्जा** - खिन्न या उदास हो।

भावार्थ - साधु-साध्वी को किसी समय सम या विषय शय्या मिले, हवादार या हवा रहित स्थान मिले, धूल युक्त या धूल रहित अथवा डांस मच्छर युक्त या डांस मच्छर रहित स्थान मिले, कभी जीर्ण शीर्ण मिले, कभी सुदृढ़ शय्या मिले या उपसर्ग युक्त या उपसर्ग रहित शय्या मिले, इस प्रकार की विचित्र शय्याओं के मिलने पर साधु अथवा साध्वी उसे समभाव से ग्रहण करे। प्रतिकूल शय्या के मिलने पर भी किंचित् मात्र मानसिक दुःख (ग्लानि) एवं खेद का अनुभव न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु-साध्वी को अनुकूल और प्रतिकूल दोनों अवस्थाओं में समभाव रखना चाहिए और राग द्वेष से ऊपर उठ कर विचरना चाहिये, यही सच्ची साधुता है।

एवं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ ११०॥

भावार्थ - यही साधु-साध्वी का समग्र आचार है। जिसमें ज्ञान, दर्शन और चारित्र से युक्त होकर सदा यतना पूर्वक प्रवृत्ति करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ दूसरे अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त॥

❀ शय्यैषणा नामक दूसरा अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईर्यैषणा नामक तृतीय अध्ययन

प्रथम उद्देशक

द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथम अध्ययन में संयम साधना के लिए आवश्यक साधु को कैसा आहार पानी ग्रहण करना चाहिये, इसका उल्लेख किया गया है। द्वितीय अध्ययन में यह बताया गया है कि ठहरने के लिये साधु को निर्दोष मकान की किस तरह गवैषणा करनी चाहिये। ईर्यैषणा नामक इस तृतीय अध्ययन में ईर्या समिति का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन के तीन उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में सूत्रकार फरमाते हैं कि -

अब्भुवगए खलु वासावासे अभिपवुट्ठे बहवे पाणा अभिसंभूया बहवे बीया अहुणाभिण्णा अंतरा से मग्गा बहुपाणा बहुबीया जाव ससंताणगा अणभिक्कंता पंथा णो विण्णाया मग्गा सेवं णच्चा णो गामाणुगामं दूइज्जिज्जा, तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिइज्जा॥ १११॥

कठिन शब्दार्थ - **अब्भुवगए** - सम्मुख आ गया, **वासावासे** - वर्षाकाल के, **अभिपवुट्ठे** - वर्षा हो जाने पर, **अभिसंभूया** - उत्पन्न हो गये हैं, **अहुणाभिण्णा** - नये अंकुर उग गये हैं-अंकुरित हो गये हैं, **पंथा** - मार्ग में, **अणभिक्कंता** - गमनागमन रुकने से, **मग्गा** - मार्ग, **विण्णाया** - पता लगता हो, **दूइज्जिज्जा** - विहार करे, **उवल्लिइज्जा** - ठहरे, व्यतीत करे।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी ऐसा जाने कि - "वर्षा ऋतु आ गयी है, वर्षा हो जाने से बहुत से जीव जंतु पैदा हो गये हैं, बहुत से नये बीज अंकुरित हो गये हैं, पृथ्वी हरी भरी हो गयी है, मार्ग में बहुत से प्राणी, जीव यावत् जाले उत्पन्न हो गये हैं, वर्षा के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाने से मार्ग और उन्मार्ग का पता नहीं लगता।" इस प्रकार जानकर साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विहार न करे, किन्तु वर्षाकाल एक स्थान पर ही व्यतीत करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव विराधना से बचने के लिए साधु साध्वी को वर्षाकाल में विहार नहीं करते हुए एक स्थान में स्थित होने का आदेश दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा णो महई विहारभूमी, णो महई वियारभूमी णो सुलभे पीढ-फलग-सिज्जासंथारए, णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे जत्थ बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा उवागया उवागमिस्संति य अच्चाइण्णा वित्ती, णो पण्णस्स णिक्खमण जाव चिंताए सेवं णच्चा तहप्पगारं गामं वा णगरं वा जाव रायहाणिं वा णो वासावासं उवल्लिइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अच्चाइण्णावित्ती** - अत्यंत-आकीर्ण वृत्ति - बहुत भीड़भाड़।

भावार्थ - जिस ग्राम नगर यावत् राजधानी में साधु-साध्वी के योग्य विशाल स्वाध्याय भूमि और विशाल स्थंडिल भूमि न हो, आवश्यकतानुसार पाट, पाटला, शय्या, संस्तारक की सुलभता न हो अथवा प्रासुक और एषणीय आहार-पानी सुलभता से नहीं मिलता हो, जहाँ अन्यतीर्थी शाक्यादि भिक्षु बड़ी संख्या में आए हुए हों, उनकी भीड़-भाड हो अथवा आने वाले हों जिससे साधु साध्वी के गमनागमन, स्वाध्यायादि में बाधा आती हो, ऐसे ग्रामादि में साधु-साध्वी वर्षाकाल बिताने के लिए नहीं रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा, इमंसि खलु गामंसि वा रायहाणिंसि वा महई विहार भूमी, महई वियार भूमी, सुलभे जत्थ पीढ फलग-सेज्जा-संथारए, सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे, णो जत्थ बहवे समण जाव उवागया, उवागमिस्संति वा अप्पाईण्णा वित्ती जाव रायहाणिं वा तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिइज्जा॥ ११२॥

भावार्थ - जिस ग्राम नगर यावत् राजधानी में स्वाध्याय योग्य विशाल भूमि हो, मल-मूत्रादि का त्याग करने के लिए विशाल स्थंडिल भूमि हो, पीठ-फलक शय्या संस्तारकादि की प्राप्ति सुलभ हो, प्रासुक और एषणीय भिक्षा सुलभता से मिल सकती हो, जहाँ अन्यतीर्थी श्रमण भिक्षु आदि बहुत नहीं आये हुए हों और न आने वाले हों जहाँ अधिक भीड़ भाड़ न हो, आना जाना सुगम हो, ऐसे ग्राम या नगरादि में साधु-साध्वी वर्षाकाल व्यतीत करे।

विवेचन - साधु साध्वी को उसी स्थान पर वर्षावास करना चाहिये जहाँ निम्न बातों की अनुकूलता हो-१. स्वाध्याय एवं चिंतन मनन के लिए उचित स्थान २. शहर या गांव के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाहर मल मूत्र आदि का त्याग करने के लिये विशाल निर्दोष स्थंडिल भूमि ३. निर्दोष पीठ, फलक, शय्या संस्तारक की प्राप्ति सुलभ हो ४. प्रासुक एवं एषणीय पर्याप्त आहार पानी की सुलभता हो ५. अन्यतीर्थी श्रमण भिक्षुओं अथवा भिखारियों का जमघट न हो। जिस क्षेत्र में उक्त सुविधाएं न हो वहाँ चातुर्मास नहीं करना चाहिए क्योंकि वर्षावास जीवों की रक्षा, संयम की साधना एवं रत्नत्रयी की आराधना के लिए ही किया जाता है।

अह पुण एवं जाणिज्जा-चत्तारि मासा वासावासाणं वीइक्कंता, हेमंताण य पंचदसरायकप्पे परिवुसिए, अंतरा से मग्गा बहुपाणा जाव ससंताणगा, णो जत्थ बहवे समण जाव उवागमिस्संति य, सेवं णच्चा णो गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचदसरायकप्पे** - पंचदशरात्रकल्प में, पाँच दश दिन बीत जाने पर।

भावार्थ - साधु और साध्वी ऐसा जाने कि वर्षाकाल के चार मास व्यतीत हो गये हैं और हेमंत ऋतु के पन्द्रह दिन भी बीत गये हैं, परन्तु मार्ग में बहुत से प्राणी जीव जंतु आदि हैं, श्रमण ब्राह्मणादि अन्य भिक्षुओं ने उस मार्ग से आना-जाना शुरू नहीं किया है, तो ऐसा जानकर साधु साध्वी ग्रामानुग्राम विहार न करे।

अह पुण एवं जाणिज्जा-चत्तारि मासा वासावासाणं वीइक्कंता हेमंताण य पंचदसरायकप्पे परिवुसिए अंतरा से मग्गा अप्पंडा जाव असंताणगा, बहवे जत्थ समण जाव उवागमिस्संति य, सेवं णच्चा तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ ११३॥

भावार्थ - यदि ऐसा जाने कि वर्षा ऋतु के चार मास बीत चुके हैं और हेमंत ऋतु के १५ दिन भी व्यतीत हो गये हैं, मार्ग में अंडे, जीव, जंतु आदि नहीं रहे हैं, मार्ग ठीक है, अन्यमत के भिक्षुओं और पथिकों का आवागमन प्रारंभ हो गया है तो साधु या साध्वी यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्षावास समाप्त होने के बाद ठहरने के संबंध में उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग का कथन किया गया है। वर्षा एवं जीव जंतुओं आदि की उत्पत्ति हो जाने के कारण संयम की विराधना होने की संभावना देख कर संत सती वर्षावास के पश्चात् भी कुछ दिन उसी स्थान पर ठहर सकते हैं। अन्यथा चातुर्मास कल्प पूरा होते ही उन्हें ग्रामानुग्राम विहार कर देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ जुगमायाए पेहमाणे दट्ठूणं तसे पाणे उद्धट्टु पायं रीइज्जा, साहट्टु पायं रीइज्जा, वितिरिच्छं वा कट्टु पायं रीइज्जा, सइ परक्कमे संजयामेव परिक्कमिज्जा णो उज्जुयं गच्छिज्जा तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **जुगमायाए** - युगमात्र-चार हाथ प्रमाण भूमि को, **पुरओ** - सम्मुख, **रीइज्जा** - चले, **साहट्टु** - संकुचित करके, **उद्धट्टु** - उठा कर, ऊँचा करके, **वितिरिच्छं** - टेढा करके।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ अपने सम्मुख चार हाथ प्रमाण भूमि को देखता हुआ चले और मार्ग में त्रस प्राणियों को देखकर पांव को ऊँचा करके (अग्रभाग को उठा करके) चले, यदि दोनों ओर जीव जंतु हों तो पांव को आगे पीछे हटा करके पैरों को संकुचित करके अथवा टेढा पैर रखकर यतना पूर्वक चले। यदि अन्य साफ मार्ग हो तो उस जीव जंतु वाले मार्ग को छोड़कर यतना पूर्वक अन्य मार्ग से ही चले, परन्तु जीव जंतुओं से युक्त सरल (सीधे) मार्ग पर न चले। अन्य मार्ग के अभाव में उस मार्ग से यतना पूर्वक गमन करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि विहार के समय साधु साध्वियों को मार्ग की यतना कैसे करनी चाहिये?

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाणाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा उदए वा मट्टिया वा अविद्धत्थे सइ परक्कमे णो उज्जुयं गच्छिज्जा तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ ११४॥

कठिन शब्दार्थ - **अविद्धत्थे** - जिसकी योनि विध्वस्त नहीं हुई है, सचित्त (सजीव)।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ-जिस मार्ग में बहुत से त्रस प्राणी हैं, बीज बिखरे हैं, हरियाली है सचित्त पानी या सचित्त मिट्टी है जिसकी योनि विध्वस्त नहीं हुई है तो अन्य मार्ग के होने पर उस सीधे मार्ग से नहीं जावे। यदि अन्य मार्ग न हो तो उस मार्ग पर यतना पूर्वक चले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विरूवरूवाणि पच्चंतिगाणि, दस्सुगायतणाणि, मिलक्खूणि (अणायरियाणि) दुस्सण्णप्पाणि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुप्पण्णवणिज्जाणि, अकालपडिबोहीणि, अकालपरिभोईणि सइ लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जिज्जा गमणाए। केवली बूया-आयाणमेयं, तेणं बाला 'अयं तेणे, अयं उवचरए अयं तओ आगए' त्ति कट्टु तं भिक्खुं अक्कोसिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं अच्छिंदिज्ज वा भिंदिज्ज वा अवहरिज्ज वा परिट्ठविज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा पइण्णा जं णो तहप्पगाराणि विरूवरूवाणि पच्चंतियाणि दस्सुगायतणाणि, जाव विहारवत्तियाए णो पवज्जिज्ज वा गमणाए, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ ११५॥

कठिन शब्दार्थ - पच्चंतिगाणि - प्रत्यन्त-देश की सीमा में रहने वाले-सीमावर्ती, **दस्सुगायतणाणि**- दस्युओं-चोरों के स्थान, **मिलक्खूणि** - म्लेच्छों के स्थान, **दुस्सण्णप्पाणि**- जिन्हें कठिनता से आर्य-आचार समझाया जा सके ऐसे अनार्य लोगों के स्थान, **दुप्पण्णवणिज्जाणि** - जिन्हें कठिनाई से समझाया जा सके-जड़, ऐसे लोगों के स्थान, **अकालपडिबोहीणि** - कुसमय-रात्रि में जगने वाले-घूमने वाले, **अकालपरिभोईणि** - अकालभक्षी-अकाल में भोजन करने वाले, **सइ लाढे** - अन्य आर्य देश के, **संथरमाणे** - विद्यमान होने पर, **जणवएहिं** - अच्छे देश के होने पर, **विहारवत्तियाए**- विहार की प्रतिज्ञा से, **गमणाए** - जाने का, **णो** - न, **पवज्जिज्जा** - मन में विचार करे, **तओ** - वहाँ से, **आगए** - आया है, **अच्छिंदिज्ज** - छेदन करेंगे, **भिंदिज्ज** - भेदन करेंगे, **अवहरिज्ज** - छीन लेंगे, **परिट्ठविज्ज** - तोड़-फोड़ कर फैंक देंगे।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ जिस मार्ग में विभिन्न देशों के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले चोरों, म्लेच्छों और अनार्यों के स्थान हों तथा जिन्हें कठिनाई से समझाया जा सके ऐसे हठीले, जड़, अकाल में जागने वाले, अकाल भक्षी मनुष्य रहते हों, तो अन्य अनुकूल आर्य क्षेत्र के होते हुए ऐसे क्षेत्रों में विहार करने की मन से भी इच्छा न करे। क्योंकि केवली भगवान् ने इसे कर्मबंध का कारण कहा है। अनार्य लोग साधु को देखकर उन्हें 'यह चोर है, चोर का सहयोगी, गुप्तचर है अथवा हमारे शत्रुओं के पास से आया हुआ है', ऐसा कहकर उस साधु को कठोर वचन कहेंगे यावत् मारेंगे पीटेंगे अथवा उस मुनि के वस्त्र-पात्र, कम्बल और रजोहरणादि का छेदन भेदन या अपहरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करेंगे (छीन लेंगे) उन्हें तोड़ फोड़ कर फैंक देंगे। अतः साधु साध्वियों का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वे इस प्रकार के प्रदेशों में जाने का मन से भी संकल्प न करें।

विवेचन - साधु साध्वी को अनार्य क्षेत्रों का त्याग कर ऐसे क्षेत्रों में विचरना चाहिए जहाँ आर्य एवं धर्मनिष्ठ लोग रहते हों।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से अरायाणि वा, गणरायाणि वा, जुवरायाणि वा, दोरज्जाणि वा, वेरज्जाणि वा, विरुद्धरज्जाणि वा सइ लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जिज्ज गमणाए। केवली बूया आयाणमेयं, ते णं बाला, अयं तेणे तं चेव जाव णो विहारवत्तियाए पवज्जिज्ज गमणाए, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अरायाणि** - अराजक-जिस प्रदेश में राजा के मर जाने से कोई राजा न हो, **गणरायाणि** - सामंत आदि किसी व्यक्ति विशेष को बहुमत से राजा बनाया गया हो अथवा जहाँ बहुत राजा हों, **जुवरायाणि** - युवराज, राजकुमार-जिसका राज्याभिषेक नहीं हुआ हो, **दोरज्जाणि** - दो राज्यों में वैर हो या दो राजाओं का शासन हो, **वेरज्जाणि**- परस्पर दो राजाओ में वैर विरोध हो, **विरुद्धरज्जाणि**- विरोधियों का राज्य हो, राजा प्रजा में विरोध हो।

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी जिस प्रदेश में कोई राजा नहीं हो अथवा अनेकों व्यक्ति राज्य करने वाले हों (बहुत राजा हों) जहाँ के राजकुमार का राज्याभिषेक न हुआ हो, दो राज्य चलते हों अथवा एक-दूसरे राज्य का आपस में विरोध हो, राजा-प्रजा में विरोध हो, तो विहार के अनुकूल अन्य प्रदेश के होते हुए ऐसे अराजक प्रदेशों में विहार करने का संकल्प न करे, क्योंकि केवलज्ञानियों ने इसे कर्म बंध का कारण कहा है। ऐसे स्थानों में जाने पर वहाँ के अनार्य लोग साधु को 'यह चोर है जासूस है' ऐसा कह कर भला-बुरा कहेंगे, नानाविध उपसर्ग देंगे। अत. साधु-साध्वी का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि वह ऐसे प्रदेशों में विहार करने की इच्छा भी न करे किन्तु आर्य देशों में यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया-से जं पुण विहं जाणिज्जा एगाहेण वा दुयाहेण वा तियाहेण वा चउयाहेण वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचाहेण वा, पाउणिज्ज वा णो पाउणिज्ज वा, तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं सइ लाढे जाव णो विहारवत्तियाए पव्वज्जिज्ज गमणाए। केवली बूया-आयाणमेयं। अंतरा से वासे सिया पाणेसु वा पणएसु वा बीएसु वा हरिएसु वा उदएसु वा मट्टियाए वा अविद्धत्थाए। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा जाव जं तहप्पगारं अणेगाहगमणिज्जं जाव णो गमणाए, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा गमणाए॥ ११७॥

कठिन शब्दार्थ - **विहं** - अटवी, **एगाहेण** - एक दिन में, **पाउणिज्ज** - पार की (उल्लंघी) जा सकती है, **अणेगाहगमणिज्जं** - अनेक दिनों में पार की जाने वाली।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मार्ग में आने वाली अटवी के विषय में यह जाने कि यह एक दिन में, दो दिन में, तीन दिन में, चार दिन में अथवा पांच दिन में पार की जा सकती है या नहीं? यदि अन्य मार्ग हो तो साधु-साध्वी इस प्रकार अनेक दिनों में उल्लंघी जा सकने वाली अटवी को लांघ कर जाने का विचार न करे। केवली भगवान् ने ऐसे मार्गों से जाने को कर्म बंध का कारण कहा है। क्योंकि ऐसे लम्बे मार्गों को पार करते कदाचित् वर्षा आ जाय तो मार्ग में बेइन्द्रियादि जीव जंतुओं के उत्पन्न हो जाने और लीलन फूलन बीज हरित वनस्पति सचित्त जल मिट्टी आदि की उत्पत्ति होने से संयम की विराधना संभव है। अतः साधु साध्वी ऐसी अटवी में (जो अनेक दिनों में पार की जा सके) जाने का संकल्प न करे, किन्तु यतना पूर्वक अन्य सरल मार्ग से ग्रामानुग्राम विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से णावासंतारिमे उदए सिया, से जं पुण णावं जाणिज्जा असंजए भिक्खुपडियाए किणिज्ज वा पामिच्चिज्ज वा, णावाए वा णावं परिणामं कट्टु, थलाओ वा णावं जलंसि ओगाहिज्जा, जलाओ वा णावं थलंसि उक्कसिज्जा, पुण्णं वा णावं उस्सिंचिज्जा, सण्णं वा णावं उप्पीलाविज्जा, तहप्पगारं णावं उड्ढगामिणिं वा, अहोगामिणिं वा तिरियगामिणिं वा परं जोयणमेराए अद्धजोयणमेराए अप्पतरे वा भुज्जतरे वा णो दुरुहिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **णावासंतारिमे** - नौका से पार करने योग्य, **उदए सिया** - पानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो, **किणिज्ज** - खरीदी हो, **पामिच्चिज्ज** - उधार ली हो, **णावाए वा णावं परिणामं कट्टु** - एक नौका के बदले दूसरी नौका ली हो (अदला बदली की हो) **थलाओ** - स्थल से, **जलंसि** - जल में, **ओगाहिज्जा** - ले जाय, **जलाओ** - जल से, **थलंसि** - स्थल पर, **उक्कसिज्जा** - लाए, **पुण्णं वा णावं उस्सिंचिज्जा** - पानी से भरी नाव को खाली करवायी हो, **सण्णं** - कीचड में फंसी हुई, **उप्पीलाविज्जा** - नौका को बाहर निकाल कर चलने के लिये तैयार की हो, **उड्ढगामिणीं** - ऊर्ध्वगामिनी-प्रतिस्रोतगामिनी-पानी के स्रोत के सामने विपरीत दिशा में चलने वाली, **तिरियगामिणिं** - तिर्यग् गामिनी-तिरछी चलने वाली, **परं जोयणमेराए** - उत्कृष्ट (एक) योजन की मर्यादा से चलने वाली, **अद्धजोयणमेराए** - अर्द्ध योजन चलने वाली, **अप्पतरे** - थोड़े समय के लिए, **भुज्जतरे** - बहुत समय के लिए।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरते हुए मार्ग में कदाचित् नौका से पार करने योग्य पानी हो, तो वह साधु नौका के विषय में यह जाने कि-जो नौका असंयमी गृहस्थ ने साधु के निमित्त खरीदी हो या उधार ली हो अथवा एक नौका के बदले दूसरी नौका ली हो अथवा थल से जल में उतारी हो या जल से स्थल पर लायी हो, पानी उलीच कर नौका खाली करवायी हो अथवा कीचड़ में फंसी हुई नौका को बाहर निकलवायी हो, इस प्रकार की नौका जो ऊर्ध्वगामिनी-पानी के प्रवाह के सामने चलने वाली या अधोगामिनी-जिधर जल बह रहा हो उधर जाने वाली अथवा तिर्यग्गामिनी- तिरछी चलने वाली हो, वह चाहे एक योजन प्रमाण क्षेत्र में चलती हो या अर्द्ध योजन की मर्यादा से चलने वाली हो। ऐसी नौका पर थोड़े समय के लिए अथवा बहुत काल लिए साधु साध्वी सवार न हो।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुव्वामेव तिरिच्छसंपाइमं णावं जाणिज्जा जाणित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा, एगंतमवक्कमित्ता भंडगं पडिलेहिज्जा, पडिलेहित्ता एगाभोयं भंडगं करिज्जा, करित्ता ससीसोवरियं कायं पाए पमज्जिज्जा पमज्जित्ता सागारं भत्तं पच्चक्खाइज्जा पच्चक्खाइत्ता एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा तओ संजयामेव णावं दुरुहिज्जा॥ ११८॥

कठिन शब्दार्थ - **भंडगं** - भण्डोपकरण को, **सागारं** - आगार पूर्वक, **भत्तं** - आहार का, **पच्चक्खाइज्जा** - प्रत्याख्यान करे, **जले** - जल में, **किच्चा** - करके।

भावार्थ - साधु या साध्वी पहले से ही तिरछी चलने वाली नौका को जानकर एकांत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में जाय और एकांत में जाकर अपने भण्डोपकरण का प्रतिलेखन प्रमार्जन करे और प्रतिलेखन प्रमार्जन करके उन्हें एकत्रित करे। एकत्रित करके सिर से पाँव तक संपूर्ण शरीर का प्रमार्जन करे और आगार पूर्वक अन्न-पानी का त्याग करे (सागारी संथारा करे) तदन्तर एक पैर जल में और एक पैर स्थल पर रख करके यतना पूर्वक उस नौका पर चढ़े।

विवेचन - यदि विहार करते समय मार्ग में नदी आ जाय और अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं हो और बिना नौका से नदी को पार करना कठिन हो, ऐसी परिस्थिति में साधु साध्वी किस प्रकार नौका का उपयोग करे, इसका उल्लेख उपरोक्त सूत्र में किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णावं दुरुहमाणे णो णावाओ पुरओ दुरुहिज्जा, णो णावाए मग्गओ दुरुहिज्जा, णो णावाए मज्झओ दुरुहिज्जा, णो बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय अंगुलियाए उवदंसिय उवदंसिय ओणमिय ओणमिय उण्णमिय उण्णमिय णिज्झाइज्जा॥ से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा! एयं ता तुमं णावं उक्कसाहि वा वुक्कसाहि वा, खिवाहि वा रज्जुए वा गहाय आकसाहि, णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पगिज्झिय** - पकड़ कर, **उवदंसिय** - बता कर के, **ओणमिय** - नीचा झुक कर, **उण्णमिय** - ऊंचा करके, **उक्कसाहि** - खींचो, **वुक्कसाहि** - विशेष दिशा में खींचो, **खिवाहि** - खेओ-चलाओ।

भावार्थ - साधु या साध्वी नौका पर चढ़ते हुए नौका के आगे, पीछे और मध्य भाग से न चढे किन्तु नौका के बाजू को पकड़ कर चढ़े, नौका में बैठ जाने के बाद अंगुलियों से निर्देश करके, अथवा आप ऊंचा या नीचा होकर जल को नहीं देखे। यदि नाविक अथवा नौका पर सवार अन्य व्यक्ति साधु से इस प्रकार कहे कि "हे आयुष्मन् श्रमण! तुम इस नौका को आगे-पीछे या अमुक दिशा की ओर खींचो, नाव को खेओ अथवा रस्सी पकड़ कर खींचो" तो साधु या साध्वी ऐसे वचनों को स्वीकार न करे और मौन रहे।

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा ! एवं णो संचाएसि तुमं णावं उक्कसित्तए वा वुक्कसित्तए वा खिवित्तिए वा रज्जुए वा गहाय आकसित्तए आहर एयं णावाए रज्जुयं सयं चेव णं वयं णावं उक्कस्सिस्सामो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा जाव रज्जुए वा गहाय आकस्सिस्सामो णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - आहर - लाओं।

भावार्थ - नौका पर चढ़े मुनि को नौका पर सवार अन्य लोग इस प्रकार कहे कि - हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम नौका को आगे पीछे खींचने में, खेने में या रस्सी से दृढ़ करने में समर्थ नहीं हो तो अमुक रस्सी मुझे लाकर दे दो, हम स्वयं नौका को खे लेंगे (चलायेंगे), तो मुनि ऐसे वचनों को स्वीकार न करते हुए मौन रह कर बैठा रहे।

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं णावं आलित्तेण वा, पीढेण वा, वंसेण वा, वलएण वा, अवलुएण वा, वाहेहि, णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - आलित्तेण - डांड से (चप्पू से), **पीढएण** - पटिये से, **वंसेण** - बांस से, **वलएण**- वल्ली से, **अवलुएण** - अवलुक-नौका को चलाने का उपकरण विशेष से, **वाहेहि** - चलाओ।

भावार्थ - नौकारूढ साधु साध्वी को नौका पर सवार अन्य व्यक्ति इस प्रकार कहे कि 'हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम इस नौका को डांड से, पटिये से, बांस से, वल्ली से या अवलुक से आगे चलाओ।' उनके ऐसे वचनों को स्वीकार न करते हुए साधु साध्वी मौन ही रहे।

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं णावाए उदयं हत्थेण वा पाएण वा मत्तेण वा पडिग्गहेण वा णावा उस्सिंचणेण वा उस्सिंचाहि णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा तुसिणीओ उवेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - णावा उस्सिंचणेण - नौका से जल निकालने के पात्र विशेष से, **उस्सिंचाहि**- पानी बाहर उलीचते रहो।

भावार्थ - फिर नौकारूढ साधु साध्वी से कहे कि "हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम नौका में आते हुए पानी को हाथ से, पैर से, बरतन से और नाव से जल निकालने (उलीचने) के पात्र विशेष से पानी को बाहर निकालो" तो साधु साध्वी इस बात को भी स्वीकार न करते हुए मौन रहे।

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा ! एयं तो तुमं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तिंगं हत्थेण वा पाएण वा बाहुणा वा उरुणा वा उदरेण वा सीसेण वा काएण वा णावा उस्सिंचणेण वा चेलेण वा मट्टियाए वा कुसपत्तएण वा कुरुविंदेण वा पिहेहि, णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा तुसिणीओ उवेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उत्तिंगं** - छेद को, **उरुणा** - जांघ से, **चेलेण** - वस्त्र से, **कुसपत्तएण** - कुश पत्र (तृण विशेष) से, **कुरुविंदेण** - कुरुविंद नामक तृण विशेष से, **पिहेहि** - बंद कर दो।

भावार्थ - नौकारूढ़ साधु साध्वी को नौका पर सवार अन्य व्यक्ति इस प्रकार कहे कि - "हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम नाव के अमुक छिद्र को अपने हाथ, पैर, भुजा, जंघा, उदर, मस्तक अथवा शरीर से, नौका से जल निकालने के पात्र विशेष से, वस्त्र से, मिट्टी से, दूब से या कुरुविंद नामक तृण विशेष से बंद कर दो तो साधु-साध्वी उन वचनों को स्वीकार नहीं करते हुए मौन रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णावाए उत्तिंगेणं उदयं आसवमाणं पेहाए उवरुवरिं णावं कज्जलावेमाणिं पेहाए णो परं उवसंकमित्तु एवं बूया-आउसंतो गाहावइ! एयं ते णावाए उत्तिंगेण आसवइ उवरुवरिं वा णावं कज्जलावेइ। एयप्पगारं मणं वा वायं वा णो पुरओ कट्टु विहरिज्जा। अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे एगंतगएणं अप्पाणं विउसिज्जा समाहीए। तओ संजयामेव णावासंतारिमे उदए अहारियं रीएज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ ११९॥

कठिन शब्दार्थ - **आसवमाणं** - आते हुए को, **उवरुवरिं** - एक दूसरे के ऊपर, ऊपरा-ऊपरी **कज्जलावेमाणिं** - पानी से भर कर डूबती हुई को, **अप्पुस्सुए** - अल्पोत्सुक-उत्सुकता रहित (राग-द्वेष रहित), **अबहिल्लेसे** - अबर्हिलेश्य-संयम में मनोवृत्ति रखने वाला, सदा आत्म संयम में रत, **एगंतगएणं** - एकान्त गत-राग-द्वेष से रहित होकर, **विउसिज्जा** - उपकरण शरीर आदि का त्याग करें, **अहारियं** - जिस प्रकार से ईर्या समिति का पालन हो सके उसी प्रकार से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी नौका में छिद्र के द्वारा जल भरता हुआ देखकर और पानी से नाव को हिलती-डुलती देखकर किसी अन्य को इस प्रकार न कहे कि हे आयुष्मन् ! इस नौका के छेद में से पानी आ रहा है नौका जल से भर रही है और स्वयं के मन में भी किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प न होने दे, किन्तु अपने शरीर एवं उपकरणादि पर मूर्च्छा न करता हुआ, संयम में मनोवृत्ति रखकर आत्मस्वरूप में रमण करता हुआ, मोह का त्याग करके आत्म समाधि में लीन रहे। नौका के द्वारा तैरने योग्य जल को पार करने के लिये जिस प्रकार से ईर्या समिति का पालन हो सके, उसी प्रकार विचरे (चले)।

यही साधु-साध्वियों का समग्र आचार है। साधु-साध्वी ज्ञानादि से युक्त होकर सदैव यतना पूर्वक इसका पालन करे।

विवेचन - साधु साध्वी छह काय के संरक्षक हैं। यदि वह नाव को खींचने, बांधने एवं चलाने आदि का प्रयत्न करेगा तो उसमें अनेक त्रस एवं स्थावरकायिक जीवों की हिंसा होगी अतः साधुत्व की उत्कृष्ट साधना को लक्ष्य में रख कर यह आदेश दिया गया है कि वह मृत्यु का प्रसंग उपस्थित होने पर भी नाव में होने वाली किसी तरह की सावद्य प्रवृत्ति में भाग नहीं ले परन्तु मौन भाव से आत्म-चिंतन में लगा रहे।

॥ तृतीय अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं छत्तगं वा जाव चम्मछेयणगं वा गिण्हाहि, एयाणि तुमं विरूवरूवाणि सत्थजायाणि धारेहि। एयं ता तुमं दारगं वा पज्जेहि, णो से तं परिण्णं परिजाणिज्जा, तुसिणीओ उवेहिज्जा॥ १२०॥

कठिन शब्दार्थ - **छत्तगं** - छत्र, **चम्मछेयणगं** - चमड़ा काटने के शस्त्र विशेष को, **गिण्हाहि** - ग्रहण करो, **सत्थजायाणि** - शस्त्रों के सम्मुख हो, **धारेहि** - धारण करो, **दारगं** - बालक को, **पज्जेहि**- पिला दो।

भावार्थ - नौका पर सवार साधु साध्वी को नावारूढ़ अन्य व्यक्ति इस प्रकार कहे कि - हे आयुष्मन् श्रमण! तुम इस छत्र को यावत् चर्म छेदन के औजार विशेष को पकड़ो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और इन विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करो अथवा इस बालक को पानी आदि पिला दो, तो साधु ऐसे वचनों को स्वीकार नहीं करता हुआ मौन रहे।

से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा-आउसंतो ! एस णं समणे णावाए भंडभारिए भवइ। से णं बाहाए गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा, एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म से य चीवरधारी सिया, खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढिज्ज वा णिवेढिज्ज वा उप्फेसं वा करिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **भंडभारिए** - भंडोपकरण की तरह भारभूत, **पक्खिविज्जा** - फैंक दो, **चीवराणि** - वस्त्रों को, **उव्वेढिज्ज** - अलग कर ले, **णिव्वेढिज्ज** - धारण कर ले, **उप्फेसं वा करिज्जा** - सिर पर लपेट ले।

भावार्थ - नौका पर सवार कोई व्यक्ति (नाविक) नौका में बैठे अन्य व्यक्ति से इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ ! यह साधु भण्डोपकरण की तरह नौका पर भारभूत है अतः इसे भुजाओं से पकड़ कर नौका से बाहर पानी में फैंक दो। इस प्रकार के शब्द सुनकर वस्त्रधारी साधु साध्वी शीघ्र ही भारी वस्त्रों को पृथक् कर दे और हल्के वस्त्रों को शरीर पर धारण कर ले तथा सिर पर लपेट ले।

अह पुण एवं जाणिज्जा-अभिक्कंतकूरकम्मा खलु बाला बाहाहिं गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा, से पुव्वामेव वइज्जा-आउसंतो गाहावइ ! मा मेत्तो बाहाए गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवह। सयं चेव णं अहं णावाओ उदगंसि ओगाहिस्सामि। से सेवं वयंतं परो सहसा बलसा बाहाहिं गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिविज्जा, तं णो सुमणे सिया, णो दुम्मणे सिया, णो उच्चावयं मणं णियंछिज्जा, णो तेसिं बालाणं घायए वहाए समुट्ठिज्जा अप्पुस्सुए जाव समाहीए तओ संजयामेव उदगंसि पवज्जिज्जा॥ १२१॥

कठिन शब्दार्थ - **अभिक्कंतकूरकम्मा** - क्रूर कर्म करने के लिए उद्यत, **ओगाहिस्सामि**- उतर जाऊंगा, **सुमणे** - सुमन-श्रेष्ठ मन वाला, **दुम्मणे** - दुर्मन-दुष्ट मन वाला, **बलसा** - बल पूर्वक, **मणं** - मन को, **णियंछिज्जा** - न करे, **उच्चावयं** - ऊंचा-नीचा, **घायए** - घात करने के लिए, **वहाए** - वध करने के लिए, **समुट्ठिज्जा** - उद्यत होवे।

भावार्थ - साधु साध्वी यह जाने कि-अत्यंत क्रूर कर्म करने वाले अज्ञानी लोग मुझे भुजाओं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से पकड़ कर नौका से जल में फैंकने वाले हैं तो उसके पूर्व ही साधु साध्वी गृहस्थों से कहे कि 'हे आयुष्मन् गृहस्थो! आप मुझे भुजाओं से पकड़ कर जबरदस्ती पानी में मत फैंको। मैं स्वयं ही नौका को छोड़कर जल में उतर जाऊंगा।' साधु साध्वी के इस प्रकार कहने पर भी अज्ञानी जीव बलपूर्वक साधु साध्वी को भुजाओं से पकड़ कर नौका से बाहर जल में फैंक दें, तो साधु साध्वी मन में किसी प्रकार हर्ष-शोक न करे, किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प न करे और न ही उन अज्ञानी पुरुषों का घात या वध करने के लिए उद्यत हो, अपितु राग-द्वेष से रहित होकर शांत चित्त से जल में प्रवेश कर जाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे णो हत्थेण हत्थं पाएण पायं काएण कायं आसाइज्जा सें अणासायणाए अणासायमाणे तओ संजयामेव उदगंसि पवज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अणासायमाणे** - स्पर्श न करता हुआ, **पव्वज्जिज्जा** - तिरता जाय।

भावार्थ - वह साधु या साध्वी जल में तिरते-डूबते हुए हाथ से हाथ का, पैर से पैर का और शरीर से शरीर का स्पर्श न करे। वह अप्काय के जीवों की विराधना से बचने के लिए यतना पूर्वक जल में तिरता चला जाय।

विवेचन - **'पवमाणे'** के स्थान पर पाठान्तर है - **'पवयमाणे' (प्रपतन)** - जिसका अर्थ है-गिरता हुआ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे णो उम्मुग्गणिमुग्गियं करिज्जा, मामेयं उदगं कण्णेसु वा अच्छीसु वा णक्कंसि वा मुहंसि वा परियावज्जिज्जा, तओ संजयामेव उदगंसि पवज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उम्मुग्गणिमुग्गियं** - उन्मज्जन-निमज्जन-ऊपर-नीचे आने जाने की क्रिया अर्थात् डुबकी लगाना **कण्णेसु** - कानों में, **अच्छीसु** - आँखों में, **णक्कंसि** - नाक में।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी जल में तिरते हुए डुबकियाँ भी नहीं लगावे। यह पानी कान, आँख, नाक या मुंह में प्रवेश कर विनाश करेगा इस प्रकार का भी विचार न करते हुए यतना पूर्वक जल में तिरता जाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे दुब्बलियं पाउणिज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचिज्ज वा विसोहिज्ज वा, णो चेव णं साइज्जिज्जा। अह पुण एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणिज्जा पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए तओ संजयामेव उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **दुब्बलियं** - दुर्बलता को, **पाउणिज्जा** - प्राप्त करे, **विगिंचिज्ज** - त्याग कर दे, **णो** - नहीं, **साइज्जिज्जा** - ममत्व करे।

भावार्थ - जल में तिरता हुआ साधु साध्वी यदि थकान का अनुभव करे तो शीघ्र ही वस्त्र पात्र आदि उपधि का त्याग कर दे, उस पर किसी प्रकार ममत्व न रखे। जब ऐसा जाने कि वह किनारे पर पहुँच गया है तो जब तक शरीर से जल टपकता रहे शरीर गीला रहे तब तक यतना पूर्वक (नदी) के किनारे पर ही खड़ा रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्लं वा ससिणिद्धं वा कायं णो आमज्जिज्ज वा णो पमज्जिज्ज वा संलिहिज्ज वा णिलिहिज्ज वा उव्वलिज्ज वा उव्वट्टिज्ज वा आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा। अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदओ मे काए छिण्णसिणेहे काए, तहप्पगारं कायं आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२२॥

कठिन शब्दार्थ - **णो** - नहीं, **आमज्जिज्ज** - पौंछे, **पमज्जिज्ज** - प्रमार्जित करे, **संलिहिज्ज** - दबावे, **छिण्णसिणेहे** - जल से रहित।

भावार्थ - साधु या साध्वी पानी से भीगे हुए शरीर को पौंछे नहीं, प्रमार्जित नहीं करे, निचोड़े नहीं, मसले नहीं, उबटन की भांति शरीर को मले नहीं इस तरह शरीर और वस्त्रादि को धूप में तपावें नहीं। जब साधु यह जाने कि मेरा शरीर पूर्णतया सूख गया है तब ही शरीर को पौंछे, पूंज ले और धूप में तपा ले। तत्पश्चात् यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविय-परिजविय गामाणुगामं दूइज्जिज्जा, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२३॥

कठिन शब्दार्थ - **परिजविय** - वार्तालाप करता हुआ।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहस्थों के साथ वार्तालाप करते हुए नहीं चले, किन्तु यतना पूर्वक ईर्या समिति का पालन करते हुए एक गांव से दूसरे गांव विहार करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - साधु या साध्वी को विहार करते समय दस बोलों (५ इन्द्रिय विषयों और ५ स्वाध्याय के भेदों) को वर्ज कर चलना चाहिए (उत्तरा० २४)। चलते समय बातचीत करने से ईर्यासमिति का सम्यक् पालन नहीं हो पाता है। अतः यहाँ निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जंघासंतारिमे उदगे सिया, से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिज्जा पमज्जित्ता एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीइज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - जंघासंतारिमे - जंघा प्रमाण।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विचरते हुए मार्ग में पानी बहता हुआ मिले और उसका परिमाण घुटने तक हो, उसे पार करना हो तो सम्पूर्ण शरीर को प्रमार्जित करके एक पांव जल में और एक पांव स्थल में रखकर यतना पूर्वक (ईर्या समिति से) जंघा परिमाण जल में चले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीयमाणे णो हत्थेण वा हत्थं, पाएण वा पायं, काएण वा कायं आसाएज्जा, से अणासायए अणासायमाणे तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीइज्जा॥

भावार्थ - जंघा परिमाण जल में गमन करते हुए साधु या साध्वी हाथ से हाथ का, पैर से पैर का और शरीर के किसी अन्य अवयव का परस्पर स्पर्श नहीं करे और अप्काय जीवों की विराधना से बचने के लिए ईर्या समिति पूर्वक जंघा परिमाण जल में गमन करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीयमाणे णो सायावडियाए णो परिदाहवडियाए, महइमहालयंसि उदगंसि कायं विउसिज्जा तओ संजयामेव जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीइज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा- पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए तओ संजयामेव उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएण उदगतीरे चिट्ठिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - सायावडियाए - साता के लिए, **परिदाहवडियाए** - दाह शांति के लिए-गर्मी दूर करने के लिए, **महइमहालयंसि** - बड़े विस्तृत गहरे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी जंघा परिमाण पानी में से पार होते हुए शरीर को ठंडक पहुँचाने के लिए, आनंद के लिए, गर्मी (दाह) को शांत करने के लिए गहरे पानी में प्रवेश नहीं करे, यतना पूर्वक जंघा-परिमाण जल में ही चले। जब ऐसा जाने कि-किनारे पहुँच गया है तो यतनापूर्वक पानी से भीगे शरीर से किनारे पर ही खड़ा रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्लं वा कायं ससिणिद्धं वा कायं णो आमज्जिज्ज वा, पमज्जिज्ज वा अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदए काए छिण्णसिणेहे तहप्पगारं कायं आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२४॥

भावार्थ - साधु या साध्वी पानी से भीगे अपने शरीर को पौंछे नहीं, सूखावे नहीं और प्रमार्जित नहीं करे परन्तु जब शरीर पूर्णतया सूख जाय तो (पानी से रहित हो जाय तो) शरीर को मले, साफ करे प्रमार्जित करे, धूप में तपाये और तत्पश्चात् यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

विवेचन - यदि विहार करते समय रास्ते में नदी आ जाय और उसमें जंघा (घुटने) परिमाण पानी हो और दूसरा स्थल मार्ग न हो तो साधु साध्वी उसे पार कर जा सकते हैं। चलने की विधि बतलाये हुए शास्त्रकार ने शब्द दिया है **"एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा"** इसका अर्थ है एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रख कर चले। आशय यह है कि चलते समय एक पैर जल में रहे और दूसरे पैर को पानी के ऊपर के आकाश प्रदेशों तक उठा ले, उसको यहां पर स्थल कहा है। इस प्रकार पानी में चले किन्तु भैंसे की तरह पानी को रौंदता हुआ न चले। पानी में चलते समय यह विचार भी न करे कि अब मैं पानी में उतर ही गया हूँ तो कुछ गहराई में डुबकी लगा कर शरीर के दाह को शान्त कर लूँ। उसे चाहिए कि वह अपने हाथ और पैरों को भी परस्पर स्पर्श न करता हुआ अप्कायिक जीवों को विशेष पीड़ा न पहुँचाता हुआ नदी को पार करे।

इस प्रकार नदी को पार कर किनारे पर पहुँचने के पश्चात् जब तक शरीर और वस्त्रों से पानी टपकता रहे या वे गीले हों तब तक वहीं किनारे पर खड़ा रहे। उस समय वह अपने हाथ से शरीर का स्पर्श भी नहीं करे और न ही वस्त्रों को निचोड़े। इस प्रकार शरीर और वस्त्रों के सूख जाने के बाद अपने शरीर की प्रतिलेखना कर विहार करे अर्थात् लगी हुई मिट्टी आदि तथा सूखा हुआ कीचड़ दूर करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो मट्टियागएहिं पाएहिं हरियाणि छिंदिय-छिंदिय विकुज्जिय-विकुज्जिय विफालिय-विफालिय उम्मग्गेण हरियवहाए गच्छिज्जा जमेयं पाएहिं मट्टियं खिप्पामेव हरियाणि अवहरंतु माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा। से पुव्वामेव अप्पहरियं मग्गं पडिलेहिज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **छिंदिय** - छेदन करके, **मट्टियागएहिं** - कीचड़ से भरे हुए, **विकुज्जिय** - उखाड़ कर, **विफालिय** - फाड़ कर, छीलकर, **अवहरंतु** - अपहरण करे।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए कीचड़ से भरे हुए अपने पैरों को साफ करने के लिए उन्मार्ग में जाकर सचित्त वनस्पति (हरितकाय) का छेदन भेदन कर, उखाड कर हरितकाय का वध करता हुआ गमन न करे। पैरों को हरितकाय के स्पर्श से मिट्टी रहित करने में साधु साध्वी को मातृ स्थान का स्पर्श होता है अर्थात् साध्वाचार का उल्लंघन होता है अतः साधु साध्वी को ऐसा नहीं करना चाहिये। पहले से ही हरितकाय से रहित मार्ग को देखकर यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा, फलिहाणि वा, पागाराणि वा, तोरणाणि वा, अग्गलाणि वा, अग्गलपासगाणि वा, गड्डाओ वा, दरीओ वा, सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमिज्जा णो उज्जुयं गच्छिज्जा। केवली बूया - आयाणमेयं से तत्थ परक्कममाणे पयलिज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलेमाणे वा, पवडेमाणे वा, रुक्खाणि वा, गुच्छाणि वा, गुम्माणि वा, लयाओ वा, वल्लीओ वा, तणाणि वा, गहणाणि वा, हरियाणि वा, अवलंबिय-अवलंबिय उत्तरिज्जा। जे तत्थ पाडिपहिया उवागच्छंति ते पाणी जाएज्जा, जाइत्ता तओ संजयामेव अवलंबिय अवलंबिय उत्तरिज्जा तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **गड्डाओ** - गड्ढा-खड्डों को, **दरीओ** - गुफाओं को, **रुक्खाणि** - वृक्षों को, **गुच्छाणि** - गुच्छों को, **गुम्माणि** - गुल्मों को, **लयाओ** - लताओं को, **वल्लीओ**- वल्लियों (बेलों) को, **गहणाणि** - सचित्त आकीर्ण वनस्पति को, **अवलंबिय** - पकड़ कर, **पाडिपहिया** - प्राति पथिक - सामने से आते हुए मुसाफिर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु साध्वी के मार्ग में वप्र (खेत) अथवा क्यारियाँ, खाइयाँ, कोट किला, नगर का मुख्य द्वार आगल या आगल दिये जाने वाले स्थान (अर्गला पाश) खड्डे (गड्ढे) गुफाएँ आती हों और अन्य सरल मार्ग दूसरा हो तो उस सरल मार्ग से जावे किन्तु जो सीधा मार्ग है किन्तु विषम है उस मार्ग से न जावे। क्योंकि उस विषम मार्ग से जाने पर साधु साध्वी का पैर फिसल सकता है, वह गिर भी सकता है जिससे शरीर के किसी अंग उपांग को चोट लग सकती है तथा वहाँ रहे हुए त्रस और स्थावर जीव की विराधना भी हो सकती है अतः ऐसे विषम मार्ग से न जावे। क्योंकि वहाँ जाते हुए यदि पैर फिसलने लगे या गिरने लगे तो उस मार्ग में रहे हुए वृक्ष, गुच्छ (पत्तों का समूह या फलों का गुच्छा) झाड़ी, लता (यष्टी के आकार वाली बेले), सीधी बेलें, तृण, गहन (वृक्षों के कोटर-खोखाल या वृक्ष लताओं का झुण्ड) आदि हरितकाय का सहारा लेने का प्रसङ्ग आयेगा तथा जो पथिक सामने आ रहे हैं उनके हाथ का सहारा मांगने का प्रसङ्ग आयेगा, ये सब क्रियाएँ दोष युक्त हैं संयम विराधना और आत्म-विराधना का कारण है इसलिए ऐसे विषम मार्ग से नहीं जाना चाहिए किन्तु यतना पूर्वक (संयम पूर्वक) सममार्ग से ही ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए। वनस्पति को पकड़ना और गृहस्थ का हाथ पकड़ कर उसका सहारा लेकर विषम मार्ग को पार करना ये सब क्रियाएँ साध्वाचार के विरुद्ध है। अतः साधु-साध्वी को ऐसा नहीं करना चाहिए। विषम मार्ग में जाने से इस प्रकार की सावद्य क्रिया करने का प्रसङ्ग आ सकता है। इसलिए विषम मार्ग से जाने का शास्त्रकार ने निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जवसाणि वा, सगडाणि वा, रहाणि वा, सचक्काणि वा, परचक्काणि वा से णं वा विरूवरूवं संणिविट्ठं पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव णो उज्जुयं गच्छिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **जवसाणि** - गेहूँ जौ आदि धान्य, **सगडाणि** - गाडियाँ, **रहाणि** - रथ, **सचक्काणि** - स्वचक्र-स्वकीय राज सेना, **परचक्काणि** - पर चक्र-अन्य राजा की सेना का पड़ाव।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी ग्रामानुग्राम विचरते हुए मार्ग में गेहूँ आदि धान्य, गाडियाँ, रथ, स्वचक्र-स्वकीय राज सेना तथा परचक्र-अन्य राजा की सेना का पड़ाव आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो और मार्ग अवरुद्ध हों तो अन्य मार्ग के होने पर यतना पूर्वक दूसरे मार्ग से ही जाय, सदोष सरल रास्ते से न जाय।

से णं परो सेणागओ वइज्जा-आउसंतो ! एस णं समणे सेणाए अभिणिवारियं करेइ, से णं बाहाए गहाय आगसह से णं परो बाहाहिं गहाय आगसिज्जा, तं णो सुमणे सिया जाव समाहीए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२५॥

कठिन शब्दार्थ - सेणागओ - सेनागत-सेना का कोई पुरुष, **अभिणिवारियं** - गुप्तचरी-जासूसी, **आगसह** - खींचो।

भावार्थ - कदाचित् अन्य मार्ग के न मिलने पर उसी मार्ग से जाना पडे, उस समय कोई सैनिक दूसरे सैनिक से इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् ! यह साधु सेना की जासूसी करता है अर्थात् यह सेना का भेद लेने के लिए आया हुआ है अतः इसे भुजाओं से पकड़ कर खींचो अर्थात् हटा दो-तदनुसार कोई हाथ पकड़ कर खींचे, धक्का देकर निकाल दे तो साधु किसी प्रकार हर्ष-शोक (राग-द्वेष) न करे किन्तु समाधि पूर्वक वहाँ से चला जाय अर्थात् ग्रामानुग्राम विहार करे।

विवेचन - साधु को वनस्पतिकाय की हिंसा न करते हुए एवं विषम मार्ग तथा सेना से युक्त रास्ते का त्याग करके सम मार्ग से विहार करना चाहिये जिससे स्व और पर की विराधना न हो।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा आउसंतो समणा! केवइए एस गामे वा जाव रायहाणी वा? केवइया एत्थ आसा हत्थी गामपिंडोलगा मणुस्सा परिवसंति? से बहुभत्ते, बहुउदए, बहुजणे, बहुजवसे? से अप्पभत्ते, अप्पुदए, अप्पजणे अप्पजवसे? एयप्पगाराणि पसिणाणि पुट्ठो णो आइक्खिज्जा, एयप्पगाराणि पसिणाणि णो पुच्छिज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ १२६॥

॥ बीओद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - आसा - अश्व, **हत्थी** - हाथी, **गामपिंडोलगा** - ग्राम याचक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षावृत्ति से निर्वाह करने वाले-भिक्षाजीवी, **पसिणाणि** - प्रश्न, **णो** - न, **वागरिज्जा** - उत्तर देवे।

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में सामने से आते हुए पथिक मिले और पूछे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! यह ग्राम या शहर कैसा है? यावत् यह राजधानी कैसी है ? यहाँ कितने हाथी, घोडे, भिक्षाजीवी और मनुष्य निवास करते हैं? इस गांव अथवा राजधानी में भोजन, पानी, मनुष्यों और धान्यादि की बहुलता है अथवा कमी है? ऐसे प्रश्नों के पूछने पर साधु साध्वी उनका उत्तर न दे किन्तु मौन रहे और न ही ऐसे प्रश्न पूछे। यह साधु-साध्वियों का सम्पूर्ण आचार है।

॥ तृतीय अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय अध्ययन का तीसरा उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा, फलिहाणि वा, पागाराणि वा जाव दरीओ वा, कूडागाराणि वा, पासायाणि वा, णूमगिहाणि वा, रुक्खगिहाणि वा, पव्वयगिहाणि वा, रुक्खं वा, चेइयकडं थूभं वा, चेइयकडं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय अंगुलियाए उद्दिसिय उद्दिसिय ओणमिय ओणमिय उण्णमिय उण्णमिय णिज्झाइज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **कूडागाराणि** - कूटागार-पर्वत के ऊपर बने हुए घर, **णूमगिहाणि**- भूमि घर-तहखाना, **रुक्खगिहाणि** - वृक्ष के नीचे बने घर, **चेइयकडं** - वृक्ष के नीचे का व्यन्तर देव स्थान, **थूभं** - व्यंतरादि देव का स्तूप।

भावार्थ - साधु साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मार्ग में किसी गुफा, पर्वत पर बने गृह (घर), प्रासाद, भू गृह (भूमि घर), वृक्षों के नीचे बने निवास स्थान, व्यंतर देव का स्थान, व्यंतर देव का स्तूप, व्यंतरायतन, धर्मशालाओं आदि को भुजा ऊपर उठाकर, अंगुलियों को फैलाकर, ऊंचा नीचा होकर न देखे, किंतु यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से कच्छाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा, दवियाणि वा, णूमाणि वा, वलयाणि वा, गहणाणि वा, गहणविदुग्गाणि वा, वणाणि वा, वणविदुग्गाणि वा, पव्वयाणि वा, पव्वयविदुग्गाणि वा, अगडाणि वा, तलागाणि वा, दहाणि वा, णईओ वा, वावीओ वा, पुक्खरिणीओ वा, दीहियाओ वा गुंजालियाओ वा, सराणि वा, सरपंतियाणि वा, सरसरपंतियाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय जाव णिज्झाइज्जा। केवली बूया आयाणमेयं। जे तत्थ मिगा वा, पसू वा, पक्खी वा, सरीसिवा वा, सीहा वा, जलचरा वा, थलचरा वा, खहचरा वा सत्ता ते उत्तसिज्ज वा वित्तसिज्ज वा वाडं वा सरणं वा कंखिज्जा, वारित्ति मे अयं समणे। अह भिक्खुणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा जाव जं णो बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय जाव णिज्झाइज्जा। तओ संजयामेव आयरियउवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२७॥

कठिन शब्दार्थ - कच्छाणि - कच्छ-नदी के समीपवर्ती निम्न प्रदेश, **दवियाणि** - वन में घासादि के लिये राजादि द्वारा आरक्षित भूमि, **णूमाणि** - खड्डा (गर्त्त) आदि, **वलयाणि**- नदी आदि से घिरे हुए प्रदेश, **गहणाणि** - निर्जल प्रदेश-अरण्य क्षेत्र, **गहणविदुग्गाणि** - निर्जल प्रदेश में स्थित दुर्गम किले आदि, **वणविदुग्गाणि** - वन में स्थित किले (दुर्गम स्थान) **दीहियाओ** - दीर्घिकाओं-लम्बी बावडियों, **गुंजालियाओ** - गुंजालिका-दीर्घ गंभीर टेढी मेढी जल की वापिकाएं, **सरसरपंतियाणि** - सरोवरों की पंक्तियों को, **मिगा** - मृग, **पसू** - पशु, **पक्खी** - पक्षी, **सरीसिवा** - सांप, **सीहा** - सिंह, **उत्तसिज्ज** - त्रास को प्राप्त करें, **वित्तसिज्ज** - विशेष रूप से त्रास को प्राप्त करें, **वाडं** - बाड की, **सरणं**- शरण (आश्रय) को, **वारित्ति**- भगाना, **चारित्ति** - चलाना।

भावार्थ - साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मार्ग में आये हुए नदी के समीपवर्ती निम्न प्रदेश, घास के जंगल, खड्डे, नदी से घिरे हुए प्रदेश, निर्जल प्रदेश, अटवी आदि में स्थित किये, वन, वन में स्थित विषम स्थान, पर्वत, पर्वत पर स्थित किले, कूप, तालाब, झीले, नदियाँ, बावडी, पुष्करणी, दीर्घिकाओं (लम्बी और गहरी बावडियाँ) गुंजालिकाओं, सरोवरों, सरोवरों की पंक्तियों आदि स्थलों को भुजा को फैला कर, ऊंचा-नीचा होकर न देखे। कारण कि केवली भगवान् ने इसे कर्मबंध का कारण कहा है। क्योंकि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन स्थानों में रहे हुए मृग, पशु-पक्षी, सांप, सिंह, जलचर, थलचर और खेचर जीव साधु को देखकर इधर उधर भागेंगे, त्रास पाएंगे, वित्रास को प्राप्त होंगे और बाड़ आदि का आश्रय (शरण) चाहेंगे अथवा "हमको ये साधु भगाना चाहते हैं" ऐसा विचार करेंगे। अतः साधु-साध्वियों का यह पूर्वोपदिष्ट आचार है कि भुजाओं को फैलाकर, ऊपर-नीचे करके न देखे, किन्तु यतना पूर्वक आचार्य उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु या साध्वी को विहार करते समय दर्शनीय स्थलों को नहीं देखना चाहिये। ऐसे स्थलों को देख कर उनके मन में विकार भाव भी जाग सकते हैं और इस तरह झुक कर या ऊपर उठ कर ध्यान से देखते हुए किसी के मन में साधु के प्रति संदेह भी उत्पन्न हो सकता है। अतः साधु या साध्वी को विहार करते समय मार्ग में आने वाले दर्शनीय स्थलों की ओर अपना ध्यान नहीं लगा कर यतना पूर्वक मार्ग तय करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो आयरिय-उवज्झायस्स हत्थेण वा हत्थं जाव अणासायमाणे तओ संजयामेव आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं जाव दूइज्जिज्जा॥

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी आचार्य-उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ आचार्य और उपाध्याय के हाथ से अपने हाथ का स्पर्श (टकराहट) नहीं करे। इस प्रकार आशातना न करता हुआ यतना पूर्वक उनके साथ विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा। ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा आउसंतो समणा! के तुब्भे? कओ वा एह ? कहिं वा गच्छिहिह ? जे तत्थ आयरिए वा उवज्झाए वा से भासिज्ज वा वियागरिज्ज वा, आयरिय-उवज्झायस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं करिज्जा। तओ संजयामेव अहाराइणिए दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **तुब्भे** - तुम, **के** - कौन हो?, **कओ** - कहाँ से, **एह** - आ रहे हो, **कहिं** - कहाँ, **गच्छिहिह** - जाओगे, **अहाराइणिए** - यथा रात्निक-रत्नाधिक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी आचार्य उपाध्याय या प्रवर्तिनी के साथ विहार करते हुए मार्ग में यदि कोई प्रातिपथिक इस प्रकार पूछे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? और कहाँ जा रहे हो (जाओगे)? तो आचार्य या उपाध्याय जो साथ में हैं वे सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंवेगे, जब वे उत्तर देते हों तो साधु को बीच में नहीं बोलना चाहिये। इस प्रकार आचार्य, उपाध्याय या अपने से बड़े रत्नाधिक के साथ यतना पूर्वक विहार चर्या में प्रवृत्त रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो राइणियस्स हत्थेणं हत्थं जाव अणासायमाणे तओ संजयामेव अहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी रत्नाधिक (अपने से दीक्षा में बड़े) साधु साध्वी के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ रत्नाधिक के हाथ को अपने हाथ से स्पर्श नहीं करे यावत् किसी भी प्रकार की आशातना नहीं करता हुआ यतना पूर्वक विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा आउसंतो समणा! के तुब्भे? कओ वा एह? कहिं वा गच्छिहिह? जे तत्थ सव्वराइणिए से भासिज्ज वा वागरिज्ज वा। राइणियस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं भासिज्जा। तओ संजयामेव अहाराइणियाए गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १२८॥

भावार्थ - रत्नाधिक साधु या साध्वी के साथ विहार करते हुए मार्ग में कोई पथिक सामने मिले और पूछे कि हे आयुष्मन् श्रमण! तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? और कहाँ जाओगे? तो वहाँ जो दीक्षा में बड़ा साधु हो वह उत्तर देवें, उनके उत्तर देते समय अन्य कोई साधु बीच में न बोले, किन्तु यतना पूर्वक रत्नाधिक के साथ विहार करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया है कि - साधु को आचार्य, उपाध्याय एवं रत्नाधिक साधुओं के साथ विहार करते समय किस तरह चलना चाहिये।

शंका - इस सूत्र में आचार्य आदि के साथ विहार करने के प्रसंग में साधु-साध्वी का उल्लेख किया है। जबकि साधु-साध्वी एक साथ विहार नहीं करते हैं?

समाधान - उपरोक्त वर्णन सूत्र शैली के अनुसार किया गया है। साधु-साध्वी एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ विहार नहीं करते हैं परन्तु साधु और साध्वी दोनों के नियमों में समानता होने के कारण दोनों का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है। अतः जहाँ साधुओं का प्रसंग हो वहाँ आचार्य आदि का और जहाँ साध्वियों का प्रसंग हो वहाँ प्रवर्तिनी आदि का प्रसंग समझना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा। ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! अवियाइं इत्तो पडिपहे पासह, तं जहा- मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा, सरीसिवं वा, जलयरं वा से आइक्खह दंसेह। तं णो आइक्खिज्जा, णो दंसिज्जा। णो तेसिं तं परिण्णं परिजाणिज्जा। तुसिणीए उवेहिज्जा, जाणं वा णो जाणं ति वइज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **गोणं** - बैल, **महिसं** - महिष (भैंसा) को।

भावार्थ - साधु या साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग में कोई प्रातिपथिक मिले और वह पूछे कि-हे आयुष्मन् श्रमण ! क्या आपने इस मार्ग में मनुष्य, सांड, भैंसा, पशु, पक्षी, सांप, जलचर आदि किसी को देखा है? यदि देखा है तो बतलाओ? तो इस बाबत साधु या साध्वी कोई उत्तर न दे, कुछ भी नहीं बतलावे, उसके इस कथन को स्वीकार नहीं करते हुए मौन रहे तथा ऐसा न कहे कि मैं जानता हूँ किन्तु तुम्हें बताता नहीं हूँ। इस प्रकार यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

विवेचन - ऐसा प्रसंग उपस्थित होने पर साधु-साध्वी को मौन रहने का निर्देश दिया है क्योंकि सही उत्तर देने पर उन प्राणियों की हिंसा होना संभव है। अतः पूर्ण अहिंसक साधु को प्राणीमात्र के हित की भावना को ध्यान में रखते हुए उस समय मौन रहना चाहिये।

"जाणं वा णो जाणंति वइज्जा"..... अर्थात् जानता हुआ भी मुनि कह दे कि मैं नहीं जानता हूँ। इस पाठ का प्रमाण देकर कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जीव रक्षा का कार्य हो तो झूठ बोल कर भी मुनि जीव रक्षा करे किन्तु ऐसा कहना गलत है क्योंकि शास्त्रकार झूठ का सर्वथा निषेध करते हैं। दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ७ की गाथा १ में कहा है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो ण भासिज्ज सव्वसो॥

इस गाथा में भाषा के चार भेद बताये गये हैं, उनमें से सत्य भाषा और व्यवहार भाषा मुनि के लिए विवेक पूर्वक बोलने का विधान किया गया है। असत्य (झूठ) और मिश्र (सत्य और झूठ दोनों मिले हुए) ये दो भाषा बोलने का मुनि के लिए सर्वथा निषेध किया गया है। शास्त्रकार ने यहाँ **'सव्वसो'** शब्द दिया है अर्थात् किसी भी हालत में झूठ नहीं बोले। वास्तव में **'जाणं वा णो जाणंति वइज्जा'** का आशय है मुनि ऐसा न कहे कि - 'मैं जानता हूँ किन्तु तुम्हें बताता नहीं हूँ।' किन्तु ऐसे अवसर पर मौन रखे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा। ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! अवियाइं इत्तो पडिपहे पासह उदगपसूयाणि कंदाणि वा, मूलाणि वा, तयाणि वा, पत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा, बीयाणि वा, हरियाणि वा, उदगं वा संणिहियं अगणिं वा संणिक्खित्तं से आइक्खह जाव दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उदगपसूयाणि** - उदक प्रसूत-जल से उत्पन्न, **तयाणि** - त्वचा-छाल, **संणिहियं**- संनिहित-संचित, **संणिक्खित्तं** - व्यवस्थित रखा हुआ।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कोई प्रातिपथिक मिले और पूछे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने इस मार्ग में जल से उत्पन्न होने वाले कंद-मूल, छाल पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरित एवं जल के स्थान अथवा अग्नि देखी है ? देखी हो तो हमें कहो-बताओ। तब साधु अथवा साध्वी इस विषय में कुछ भी न कहे, मौन रहे। उनके कथन को स्वीकार करता हुआ 'मैं जानता हूँ किन्तु तुम्हें बताता नहीं हूँ' ऐसा न कहे और यतना पूर्वक विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छिज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह जवसाणि वा जाव सेणं वा विरूवरूवं संणिविट्ठं, से आइक्खह जाव दूइज्जिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में कोई प्रातिपथिक इस प्रकार पूछे कि - "हे आयुष्मन् श्रमण! तुमने मार्ग में गेहूँ आदि धान्य या विभिन्न सेनाओं के पड़ाव आदि देखे हैं? देखे हों तो कहो। ऐसे समय साधु अथवा साध्वी मौन रहे यावत् यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया जाव आउसंतो समणा! केवइए एत्तो गामे वा जाव रायहाणी वा से आइक्खह। तहेव जाव दूइज्जिज्जा॥

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विचरते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में कोई प्रातिपथिक पूछे कि हे आयुष्मन् श्रमण! यहाँ से अमुक ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर है? कहो तो साधु-साध्वी मौन रहे और 'मैं जानता हूँ किन्तु तुम्हें बताता नहीं हूँ' ऐसा न कहे यावत् यतना के साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया जाव आउसंतो समणा! केवइए एत्तो गामस्स वा णगरस्स वा जाव रायहाणीए वा मग्गे से आइक्खह। तहेव जाव दूइज्जिज्जा॥ १२९॥

भावार्थ - मार्ग में विहार करते हुए साधु-साध्वी से कोई इस प्रकार पूछे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! अमुक गांव यावत् राजधानी का रास्ता कौन सा है, उसे बतलाओ तो साधु-साध्वी उसका उत्तर न देते हुए मौन वृत्ति से ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से गोणं वियालं पडिपहे पेहाए, जाव चित्तचिल्लडं वियालं पडिपहे पेहाए णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छिज्जा, णो मग्गाओ उम्मग्गं संकमिज्जा, णो गहणं वा वणं वा दुग्गं वा अणुपविसिज्जा, णो रुक्खंसि दुरुहिज्जा णो महइमहालयंसि उदयंसि कायं विउसिज्जा, णो वाडं वा सरणं वा सेणं वा सत्थं वा कंखिज्जा। अप्पुस्सुए जाव समाहिए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा।।

कठिन शब्दार्थ - भीओ - भयभीत हुआ।

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु अथवा साध्वी मार्ग में विकराल बैल, चीते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सांप या अन्य हिंसक जीवों को देखकर भयभीत होता हुआ उन्मार्ग से गमन न करे, गहन वन अथवा दुर्ग में प्रवेश न करे न ही वृक्षादि पर चढ़े और न ही गहरे पानी बाड आदि में छिपे (प्रवेश करे)। सेना, शस्त्र अथवा अन्य किसी के शरण की इच्छा न करे। किन्तु राग-द्वेष से रहित होकर समाधि पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणिज्जा इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा उवगरणपडियाए संपिंडिया गच्छिज्जा णो तेसिं भीओ उम्मग्गेण गच्छिज्जा जाव समाहिए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥ १३०॥

कठिन शब्दार्थ - **विहं** - लम्बा मार्ग-अटवी आदि, **आमोसगा** - आमोषक-चोर, **उवगरणपडियाए** - उपकरणों को लेने के लिए, **संपिंडिया** - एकत्रित हुए हैं।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए बीच में लम्बे मार्ग (अटवी आदि) को पार करने का प्रसंग आ जाय और ऐसा जाने कि मार्ग में बहुत से चोर वस्त्रादि उपकरणों को लूटने के लिए एकत्रित होकर आते हैं (या आने वाले हैं) तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग में न जाए, किन्तु उसी मार्ग पर राग-द्वेष से रहित होकर समाधि भाव पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करने में प्रवृत्त रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा संपिंडिया गच्छिज्जा, ते णं आमोसगा एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! आहर एयं वत्थं वा पायं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा, देहि णिक्खिवाहि, तं णो दिज्जा, णिक्खिविज्जा, णो वंदिय-वंदिय जाइज्जा, णो अंजलिं कट्टु जाइज्जा, णो कलुणपडियाए जाइज्जा, धम्मियाए जायणाए जाइज्जा, तुसिणीय भावेण वा उवेहिज्जा। ते णं आमोसगा सयं करणिज्जं त्ति कट्टु अक्कोसंति वा जाव उद्दविंति वा वत्थं वा पायं वा कंबलं वा, पायपुंछणं वा, अच्छिंदिज्ज वा जाव परिट्ठविज्ज वा, तं णो गामसंसारियं कुज्जा, णो रायसंसारियं कुज्जा, णो परं उवसंकमित्तु बूया-आउसंतो गाहावइ! एए खलु आमोसगा उवगरणपडियाए सयं करणिज्जं ति कट्टु अक्कोसंति वा जाव परिट्ठवेंति वा, एयप्पगारं मणं वा वयणं वा णो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरओ कट्टु विहरिज्जा। अप्पुसुए जाव समाहिए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **आहर** - लाओ, **देहि** - दे दो, **णिक्खिवाहि** - रख दो, **कलुणवडियाए** - दीन वचनों से, **गामसंसारियं** - गांव में जाकर लोगों को, **रायसंसारियं**- राजा आदि के पास जा कर।

भावार्थ - साधु-साध्वी को ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग में चोर मिले और वे ऐसा कहे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! लाओ, ये वस्त्र पात्रादि हमें दे दो, यहाँ रख दो, तो साधु न देवे, किन्तु उन्हें भूमि पर रख दे। चोर उन्हें ले लेवे तो साधु उनको प्राप्त करने के लिए प्रशंसा (स्तुति) करके, हाथ जोड कर दीन वचन कह कर उनकी याचना न करे। यदि मांगना हो तो उन्हें धर्म का उपदेश दे कर समझा कर मांगे अथवा मौन रहे। कदाचित् वे चोर अपना कर्त्तव्य समझ कर साधु को डरावे, धमकावे, आक्रोश करे यावत् हैरान करे अथवा वस्त्रादि छीन ले, फैंक दे तो भी वह साधु गांव में जाकर अथवा राजा के पास जाकर इस घटना का प्रचार नहीं करे और न ही किसी गृहस्थ के पास जाकर कहे कि- हे आयुष्मन् गृहस्थ (गाथापति)! इन चोरों ने हमारे वस्त्रादि उपकरण लूट लिये हैं, छीन लिये हैं, हमें हैरान या भयभीत किया है। साधु ऐसे विचार मन में भी न लावे और न ही वचन से दुःख प्रकट करे, किन्तु राग-द्वेष से रहित होकर धैर्यता से समाधि पूर्वक यतना के साथ ग्रामानुग्राम विचरे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु की निर्भयता एवं सहिष्णुता पर प्रकाश डाला गया है।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ १३१॥

भावार्थ - यही साधु-साध्वियों का समग्र आचार है जिसका सभी अर्थों में यतनापूर्वक आचरण करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तृतीय अध्ययन का तीसरा उद्देशक समाप्त॥

❀ ईर्यैषणा नामक तृतीय अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाषाजात नामक चौथा अध्ययन

प्रथम उद्देशक

तीसरे अध्ययन में ईर्या समिति का वर्णन किया गया है अब प्रस्तुत चौथे अध्ययन में भाषा समिति का कथन किया जाता है। चौथे अध्ययन के दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा इमाइं वयायाराइं (वइ-आयाराइं) सोच्चा णिसम्म इमाइं अणायाराइं अणायरियपुव्वाइं जाणिज्जा-जे कोहा वा वायं विउंजंति, जे माणा वा वायं विउंजंति, जे मायाए वा वायं विउंजंति, जे लोहा वा वायं विउंजंति, जाणओ वा फरुसं वयंति अजाणओ वा फरुसं वयंति, सव्वं चेयं सावज्जं वज्जिज्जा विवेगमायाए॥

कठिन शब्दार्थ - वइ - वाणी, **आयाराइं** - आचार को, **अणायाराइं** - अनाचारों को, **अणायरियपुव्वाइं** - पूर्व साधुओं ने जिसका आचरण नहीं किया (अनाचीर्ण) **वायं** - वचन को, **विउंजंति**- बोलते हैं, प्रयोग करते हैं, **फरुसं** - कठोर, **विवेगं** - विवेक से, **आयाए** - युक्त होकर।

भावार्थ - साधु या साध्वी इन वचन संबंधी आचार को सुनकर विचार कर के पूर्व के साधुओं द्वारा अनाचरित भाषा संबंधी अनाचारों को जाने। जो क्रोध पूर्वक वाणी का प्रयोग करते हैं, जो मान पूर्वक वाणी का प्रयोग करते हैं, जो माया (छल कपट) सहित भाषा बोलते हैं और जो लोभ से युक्त वचन बोलते हैं, जो जानबूझ कर अथवा अनजान में कठोर वचन बोलते हैं इत्यादि सभी सावद्य वचनों का साधु विवेक पूर्वक त्याग करे।

विवेचन - साधारणतया मुंह द्वारा बोले जाने वाले शब्दों के समूह को भाषा कहते हैं। भाषा चार प्रकार की कही गयी है - १. सत्य भाषा २. असत्य भाषा ३. मिश्र भाषा और ४. व्यवहार भाषा। साधु साध्वी पहली और चौथी अर्थात् सत्य और व्यवहार भाषा का प्रयोग कर सकते हैं उन्हें दूसरी और तीसरी यानी असत्य और मिश्र भाषा का प्रयोग करना नहीं कल्पता है। क्रोधादि चार कषायों के वश होकर बोली हुई भाषा असत्य होती है अतः जब कषायों का उदय हो तब साधु को मौन रहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धुवं चेयं जाणिज्जा, अधुवं चेयं जाणिज्जा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा लभिय णो लभिय, भुंजिय णो भुंजिय, अदुवा आगओ अदुवा णो आगओ, अदुवा एइ अदुवा णो एइ, अदुवा एहिइ अदुवा णो एहिइ, इत्थ वि आगए इत्थ वि णो आगए, इत्थ वि एइ इत्थ वि णो एइ, इत्थ वि एहिइ इत्थ वि णो एहिइ॥

कठिन शब्दार्थ - **धुवं** - ध्रुव-निश्चित, **अधुवं** - अध्रुव-अनिश्चित, **एइ** - आता है, **एहिइ** - आएगा।

भावार्थ - साधु ध्रुव-निश्चयकारी और अध्रुव भाषा को जान कर उसका त्याग करे। पूरी जानकारी नहीं होने पर किसी के पूछने पर साधु या साध्वी इस प्रकार निश्चयात्मक भाषा न बोले कि - अमुक साधु अशनादि आहार लेकर आयेगा अथवा नहीं आयेगा, वह साधु वहां आहार करके आयेगा या आहार का उपभोग किये बिना ही आयेगा, वह आया था अथवा नहीं आया था, वह आता है या नहीं आता है, वह आयेगा अथवा नहीं आयेगा-ऐसी निश्चयकारी भाषा का साधु साध्वी प्रयोग न करे।

विवेचन - साधु साध्वी को निश्चयात्मक एवं संदिग्ध भाषा नहीं बोलनी चाहिये। क्योंकि जिस बात के विषय में निश्चित ज्ञान नहीं है उसे प्रकट करने से दूसरे महाव्रत में दोष लगता है। अतः साधु साध्वी को बोलते समय पूर्णतया विवेक एवं सावधानी रखनी चाहिये।

अणुवीइ णिट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा, तं जहा - एगवयणं १, दुवयणं २, बहुवयणं ३, इत्थीवयणं ४, पुरिसवयणं ५, णपुंसगवयणं ६, अज्झत्थवयणं ७, उवणीयवयणं ८, अवणीयवयणं ९, उवणीय अवणीय वयणं १०, अवणीय उवणीय वयणं ११, तीयवयणं १२, पडुप्पण्णवयणं १३, अणागयवयणं १४, पच्चक्खवयणं १५, परोक्खवयणं १६॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुवीइ** - सोच-विचार कर, **णिट्ठाभासी** - निश्चयपूर्वक बोलने वाला, स्पष्ट भाषी, **अज्झत्थवयणं** - अध्यात्म वचन, **उवणीयवयणं** - उपनीत-प्रशंसा युक्त वचन, **अवणीयवयणं** - अपनीत-अप्रशंसात्मक-निंदा युक्त वचन, **तीयवयणं** - अतीत वचन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूतकाल वचन, **पडुप्पण्णवयणं** - प्रत्युत्पन्न वचन-वर्तमान काल का वचन, **अणागयवयणं**-अनागत-भविष्यत् कालीन वचन, **पच्चक्खवयणं** - प्रत्यक्ष वचन, **परोक्खवयणं**-परोक्ष वचन।

भावार्थ - संयमी साधु या साध्वी विचार पूर्वक निश्चय करके भाषा समिति का ध्यान रखता हुआ भाषा का प्रयोग करे जैसे कि-एक वचन, द्विवचन, बहुवचन, स्त्रीलिंग वचन, पुरुषलिंग वचन, नपुंसकलिंग वचन, अध्यात्म वचन, उपनीत-प्रशंसा युक्त वचन, अपनीत-निंदा युक्ती वचन, उपनीत-अपनीत - प्रशंसा युक्त निंदा युक्त वचन, अपनीत-उपनीत- निंदा युक्त और प्रशंसा युक्त वचन, भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्यत् काल सम्बन्धी वचन, प्रत्यक्ष और परोक्ष वचन - ये वचन के १६ प्रकार कहे हैं।

विवेचन - भाषा के दोषों से बचने के लिए सूत्रकार ने १६ प्रकार के वचनों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं - १. एक वचन - संस्कृत में-वृक्षः, घटः, पटः आदि प्राकृत में-रुक्खो, घडो, पडो आदि २. द्विवचन - संस्कृत में वृक्षौ, घटौ, पटौ आदि, प्राकृत में द्विवचन नहीं होता है। ३. बहुवचन - संस्कृत में-वृक्षाः, घटाः पटाः आदि, प्राकृत में-रुक्खा, घडा, पडा आदि। ४. स्त्रीलिंग वचन - संस्कृत में-कन्या, वीणा राजधानी आदि, प्राकृत में-कण्णा, वीणा रायहाणी आदि। ५. पुरुषलिंग वचन - संस्कृत में-घटः पटः कृष्णाः साधुः आदि, प्राकृत में-घडो पडो कण्हो साहू आदि ६. नपुंसकलिंग वचन - संस्कृत में-पत्रं ज्ञानं दर्शनं चारित्रं, प्राकृत में-पत्तं णाणं, दंसणं, चारित्तं आदि ७. अध्यात्म वचन - जिस वचन को बोलने का चित्त में निश्चय किया गया हो फिर उसको छिपाने के लिये अन्य वचन बोलने का विचार होने पर भी अकस्मात् वही वचन मुख से निकले उसे अध्यात्म वचन कहते हैं। ८. उपनीत वचन - प्रशंसा युक्त वचन को उपनीत वचन कहते हैं। जैसे यह स्त्री रूपवती है। ९. अपनीत वचन - निन्दा युक्त वचन जैसे - यह स्त्री कुरूपा है। १०. उपनीत अपनीत वचन - पहले प्रशंसा और बाद में निंदा युक्त वचन जैसे यह स्त्री रूपवती है परंतु व्यभिचारिणी है ११. अपनीत उपनीत वचन - पहले निंदा और बाद में प्रशंसा युक्त वचन जैसे यह स्त्री कुरूपा है परन्तु सदाचारिणी है १२. अतीतकाल वचन - भूतकाल के बोधक वचन को अतीतकाल कहते हैं जैसे - देवदत्त ने घडा बनाया था। १३. वर्तमानकाल वचन - वर्तमान काल का बोधक वचन जैसे - करोति-करता है, पठति-पढ़ता है आदि १४. अनागतकाल वचन - भविष्यकाल का बोधक वचन जैसे - करिष्यति-करेगा, पठिष्यति-पढेगा आदि १५. प्रत्यक्ष वचन - प्रत्यक्ष के बोधक वचन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष वचन कहते हैं जैसे - यह देवदत्त है आदि १६. परोक्ष वचन - परोक्ष का बोधक वचन जैसे - वह देवदत्त है आदि।

से एगवयणं वइस्सामीइ एगवयणं वइज्जा जाव परोक्खवयणं वइस्सामीइ परोक्ख वयणं वइज्जा इत्थी वेस पुरिसो वेस णपुंसग वेस, एयं वा चेयं अण्णं वा चेयं अणुवीइ णिट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा, इच्चेयाइं आययणाइं उवाइकम्म॥

भावार्थ - जहां मुनि को एक वचन बोलना हो वहां एक वचन बोले यावत् परोक्ष वचन बोलना हो वहां परोक्ष वचन का प्रयोग करे। इसी तरह यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह यथार्थ- वही है अथवा यह कोई अन्य-अन्यथा है-यह निर्णय कर सोच विचार कर भाषा समिति से युक्त हुआ साधु भाषा के दोषों का त्याग कर संयत वचन बोले।

अह भिक्खू जाणिज्जा चत्तारि भासज्जायाइं तं जहा - १. सच्चमेगं पढमं भासज्जायं २. बीयं मोसं ३. तईयं सच्चामोसं ४. जं णेव सच्चं णेवं मोसं णेव सच्चामोसं असच्चामोसं णाम तं चउत्थं भासज्जायं॥

कठिन शब्दार्थ - सच्चामोसं - सत्य-मृषा अर्थात् मिश्रभाषा।

भावार्थ - साधु को चार प्रकार की भाषा जाननी चाहिये। यथा - १. सत्य भाषा २. असत्य भाषा ३. सत्या मृषा भाषा और ४. असत्या अमृषा अर्थात् सत्यासत्य रहित व्यवहार भाषा।

से बेमि-जे अईया, जे य पडुप्पण्णा, जे अणागया अरहंता भगवंतो सव्वे ते एयाणि चेव चत्तारि भासज्जायाइं भासिंसु वा, भासंति वा, भासिस्संति वा, पण्णविंसु वा, पण्णविंति वा, पण्णविस्संति वा, सव्वाइं च णं एयाइं अचित्ताणि वण्णमंताणि गंधमंताणि रसमंताणि फासमंताणि चयोवचइयाइं विप्परिणामधम्माइं भवंतीति अक्खायाइं॥ १३२॥

कठिन शब्दार्थ - भासिंसु - बोलते थे, **भासंति** - बोलते हैं, **भासिस्संति** - बोलेंगे, **पण्णविंसु** - प्ररूपणा की, **पण्णविंति** - प्ररूपणा करते हैं, **पण्णविस्संति** - प्ररूपणा करेंगे, **अचित्ताणि** - अचित्त, **वण्णमंताणि** - वर्ण युक्त, **गंधमंताणि** - गंध युक्त, **रसमंताणि** -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रस युक्त, **फासमंताणि** - स्पर्श युक्त, **चयोवचयाइं** - चय उपचय धर्म वाले-न्यूनाधिक होने वाले, **विप्परिणामधम्माइं** - विविध प्रकार के परिणाम-धर्म वाले।

भावार्थ - मैं यह कहता हूं कि-भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर भगवंत हो चुके हैं, वर्तमान में जो भी तीर्थंकर हैं और भविष्य में जितने भी तीर्थंकर भगवान् होंगे उन सभी ने भाषा के इन चार भेदों का कथन किया है, करते हैं और करेंगे एवं प्ररूपणा की है, प्ररूपणा करते हैं और प्ररूपंणा करेंगे। उन्होंने यह भी प्रतिपादन किया है कि इन चारों प्रकार की भाषा के पुद्गल अचित्त हैं, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त हैं, चय-उपचय-न्यूनाधिक होने वाले और विविध परिणाम वाले हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा-पुव्विं भासा अभासा, भासिज्ज - माणी भासा भासा, भासासमयवीइक्कंता च णं भासिया भासा अभासा।।

कठिन शब्दार्थ - पुव्विं भासा - बोलने के पूर्व की भाषा अर्थात् भाषा के पुद्गल, **भासिज्जमाणी**- बोली जाती हुई, **भासासमयवीइक्कंता** - बोलने के बाद की-भाषा समय से व्यतिक्रांत हुई।

भावार्थ - साधु या साध्वी को जानना चाहिये कि-बोलने से पूर्व भाषा अर्थात् भाषा के पुद्गल अभाषा है, बोली जाती हुई भाषा ही भाषा है, बोलने के बाद की भाषा अभाषा है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा जा य भासा सच्चा, जा य भासा मोसा, जा य भासा सच्चामोसा, जा य भासा असच्चामोसा, तहप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं कक्कसं कडुयं णिट्ठुरं, फरुसं अण्हयकरिं छेयणकरिं भेयणकरिं परियावणकरिं उवद्दवकरिं भूओवघाइयं अभिकंख भासं णो भासिज्जा।।

कठिन शब्दार्थ - सावज्जं - सावद्य, **सकिरियं** - क्रिया युक्त, **कक्कसं** - कर्कश, **कडुयं** - कटु-चित्त को उद्वेग करने वाली, **णिट्ठुरं** - निष्ठुर, **फरुसं** - परुष-कठोर, **अण्हयकरिं**- आस्रवकारी को, **छेयणकरिं** - छेदकारी को, **भेयणकरिं** - भेदकारी को, **परियावणकरिं** - परिताप देने वाली को, **उवद्दवकरिं** - उपद्रव करने वाली को, **भूओवघाइयं** - भूतोपघातिनी-प्राणियों का घात करने वाली को, **अभिकंख** - विचार कर, **णो** - न, **भासिज्जा** - बोले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु साध्वी भाषा के विषय में यह जान ले कि जो भाषा सत्या है, जो भाषा मृषा है, जो भाषा सत्यामृषा है अथवा जो भाषा असत्यामृषा है, इन चार भाषाओं में से भी पापकारी, अनर्थदंड में प्रवृत्ति कराने वाली, कर्कश, कटुक-चित्त को उद्वेग करने वाली, निष्ठुर, मर्म प्रकाशित करने वाली, आस्रवकारी, छेदकारी, भेदकारी, परिताप उत्पन्न करने वाली, उपद्रव करने वाली, प्राणियों का घात करने वाली इस प्रकार की किसी भी भाषा का प्रयोग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा, जा य भासा सच्चा सुहुमा, जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूओवघाइयं अभिकंख भासं भासिज्जा॥ १३३॥

कठिन शब्दार्थ - **सुहुमा** - सूक्ष्म बुद्धि से विचार करके।

भावार्थ - संयमशील साधु, साध्वी सूक्ष्म बुद्धि से विचार करके सत्य और व्यवहार भाषा-जो कि निरवद्य-पाप रहित यावत् प्राणियों का घात न करने वाली हों तो संयमशील साधु साध्वी इन्हीं दोनों भाषाओं का विवेक पूर्वक प्रयोग करे।

विवेचन - साधु साध्वी असत्य एवं मिश्र भाषा का प्रयोग नहीं करे और सत्य एवं व्यवहार भाषा भी जो सावद्य हो, सक्रिय हो, कर्कश हो, कठोर हो, कडवी हो, कर्म बंध कराने वाली हो, मर्म का उद्घाटन कराने वाली हो, ऐसी भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अपडिसुणेमाणं णो एवं वइज्जा - होले त्ति वा, गोले त्ति वा, वसुले त्ति वा, कुपक्खे त्ति वा, घडदासे त्ति वा, साणे त्ति वा, तेणे त्ति वा, चारिए त्ति वा, माई त्ति वा, मुसावाइ त्ति वा, एयाइं तुमं ते जणगा वा एयप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं जाव भूओवघाइयं अभिकंख णो भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **पुमं** - पुरुष को, **अपडिसुणेमाणं** - नहीं सुनने वाले को, **होले** - अरे! होल, **गोले**- अरे! गोल, **वसुले** - अरे वृषल (चाण्डाल), **कुपक्खे** - कुपक्ष, **घडदासे**- घट दास, **साणे** - कुत्ते, **तेणे**- चोर, **चारिए** - गुप्तचर, **माई** - कपटी (छली), **मुसावाई**- मृषावादी-झूठा, **तुमं** - तूं, **एयाइं**- ऐसा है, **जणगा** - जनक-माता पिता।

भावार्थ - साधु या साध्वी किसी पुरुष को बुलाते समय अथवा बुलाए जाने पर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके नहीं सुनने पर इस प्रकार नहीं कहे-"अरे होल! अरे गोल! अरे चांडाल! अरे कुपक्ष! अरे घटदास! अरे कुत्ते! अरे चोर! अरे गुप्तचर! अरे कपटी! अरे झूठे! तूं ऐसा है अथवा तेरे माता पिता ऐसे हैं।" साधु साध्वी इस प्रकार की सक्रिय, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, मर्म प्रकाशित करने वाली, आस्रवकारी, छेदकारी, भेदकारी, सावद्य और प्राणियों का घात करने वाली भाषा का प्रयोग न करे।

विवेचन - होल और गोल ये दोनों शब्द किसी देश विदेश में अवज्ञा सूचक माने जाते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अप्पडिसुणेमाणे एवं वइज्जा-अमुगे इ वा, आउसो त्ति वा, आउसंतारो त्ति वा, सावगे त्ति वा, उवासगे इ वा, धम्मिए त्ति वा, धम्मपियेत्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूओवघाइयं अभिकंख भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अमुगे** - हे अमुक-उसका जो नाम हो उस नाम से, **आउसो** - हे आयुष्मन्!, **आउसंतारो** - हे आयुष्मंतो, **सावगे** - हे श्रावक, **उवासगे** - हे उपासक, **धम्मिए** - हे धार्मिक, **धम्मपिये**- हे धर्मप्रिय!।

भावार्थ - साधु या साध्वी किसी पुरुष को बुलाते समय अथवा बुलाए जाने पर भी उसके नहीं सुनने पर ऐसा कहे-हे, अमुक व्यक्ति! हे आयुष्मन्! हे आयुष्मंतो! हे श्रावक! हे उपासक! हे धार्मिक! हे धर्म प्रिय! इस प्रकार की निरवद्य भाषा यावत् भूतोपघात रहित भाषा विचार पूर्वक बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अप्पडिसुणेमाणीं णो एवं वइज्जा-होली इ वा गोली इ वा इत्थिगमेणं णेयव्वं॥

भावार्थ - साधु या साध्वी किसी स्त्री को बुलाते समय अथवा बुलाने पर भी वह नहीं सुने तो उसे इस प्रकार नहीं बोले-हे होली! हे गोली ! इत्यादि जितने सम्बोधन पुरुष के लिए कहे गये हैं उतने शब्दों को स्त्रीलिंग में यहाँ समझ लेना चाहिए। संयमशील साधु साध्वी इस प्रकार की सावद्य यावत् भूतोपघातिनी भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अप्पडिसुणेमाणीं एवं वइज्जा-आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा भोई त्ति वा भगवई त्ति वा साविगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्ति वा, उवासिए त्ति वा धम्मिए त्ति वा धम्मण्पिए त्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा॥ १३४॥

कठिन शब्दार्थ - **भोई** - आप, **भगवई** - हे भगवती !।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी किसी स्त्री को बुलाते समय अथवा बुलाने पर भी उसके नहीं सुनने पर इस प्रकार कहे-हे आयुष्मती! हे भगिनी! हे आदरणीय! हे भगवती! हे श्राविके! हे उपासिके! हे धार्मिके! हे धर्मप्रिये! इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा बोले।

विवेचन - साधु साध्वी को किसी भी गृहस्थ के प्रति हलके एवं अवज्ञा पूर्ण निम्न स्तर के शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये इससे सुनने वाले के मन को आघात लगता है एवं साधु की असभ्यता और अशिष्टता प्रकट होती है। इससे विपरीत साधु साध्वी को सदैव ऐसी मधुर निर्दोष एवं कोमल भाषा का प्रयोग करना चाहिये जिससे श्रोता के मन में हर्ष एवं उल्लास पैदा हो एवं साधु के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़े।

उपरोक्त सूत्रों में भाषा सम्बन्धी आचार और अनाचार का विवेक बतलाया गया है। क्रोध, मान, माया और लोभ के वश बोली गयी भाषा सत्य होते हुए भी असत्य हो जाती है। क्रोध के वश होकर किसी को कह देना कि तू चोर है, बदमाश है अथवा धमकी देना, झिड़क देना, मिथ्या आरोप लगा देना आदि। अभिमान के वश किसी से कह देना कि मैं उच्च जाति का हूँ तू तो नीच जाति का है, मैं विद्वान् हूँ, तू मूर्ख है आदि। माया के वश किसी को ठगने के लिए बोली गयी भाषा। लोभ के वश किसी से अच्छा खान पान, मान सम्मान आदि पाने के लिये उसकी मिथ्या प्रशंसा करना। कठोरता वश जानते अजानते हुए किसी को मर्म स्पर्शी वचन बोल देना। किसी की गुप्त बात प्रकट कर देना। इसी प्रकार सर्व काल और क्षेत्र सम्बन्धी निश्चयात्मक वचन बोल देना।

किसी को सम्बोधित कर बुलाने में भी भाषा का विवेक बतलाया गया है। आमंत्रण में जिस प्रकार पुरुष के लिये हलके शब्दों का प्रयोग करने का निषेध किया है, उसी प्रकार स्त्री के प्रति भी कठोर और निन्दित शब्दों के प्रयोग का निषेध किया है। पुरुष को सम्बोधित करने के लिये पूज्य और आदरणीय सम्बोधनों का कथन किया है उसी प्रकार स्त्री को सम्बोधित करने के लिए भी पूज्य और आदरणीय शब्दों का विधान किया है। शास्त्रकार की दृष्टि में स्त्री और पुरुष दोनों के लिये समान दृष्टि है। यहाँ तक कि स्त्री के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिये तो शास्त्रकार ने भोई (भवती-आप) और भगवती सरीखे उच्च सम्बोधनों का प्रयोग किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो एवं वइज्जा-णभो देवे त्ति वा, गज्ज देवे त्ति वा विज्जु देवे त्ति वा, पवुट्ठ देवे त्ति वा, णिवुट्ठ देवे त्ति वा, पडउ वा वासं, मा वा पडउ, णिप्फज्जउ वा सस्सं, मा वा णिप्फज्जउ, विभाउ वा रयणी, मा वा विभाउ, उदेउ वा सूरिए, मा वा उदेउ, सो वा राया जयउ, मा वा जयउ, णो एयप्पगारं भासं भासिज्जा पण्णवं। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अंतलिक्खे त्ति वा गुज्झाणुचरिए त्ति वा, संमुच्छिए वा, णिवइए वा, पओए वइज्जा वुट्ठवलाहगे त्ति वा।

एवं खलु तस्स भिक्खूस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जएज्जासि त्ति बेमि॥ १३५॥

॥ पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - णभो देवे - आकाश देव, **गज्ज देवे** - गाज-बादलों की गर्जन देव, **विज्जु देवे**- विद्युत् देव, **पवुट्ठ देवे** - देव बरस गया,, **णिवुट्ठ देवे** - देव निरन्तर बरस गया, **वासं** - वर्षा, **मा** - मत, **वा** - अथवा, **पडउ** - गिरे-बरसे, **सस्सं** - धान्य, **णिप्फज्जउ**- उत्पन्न होवे, **रयणी** - रात्रि, **विभाउ**- शोभा युक्त - प्रकाश वाली होवे, **सूरिए** - सूर्य, **उदेउ** - उदय होवे, **जयउ** - विजयी होवे, **पण्णवं** - प्रज्ञावान्, **अंतलिक्खे** - अंतरिक्ष-आकाश, **गुज्झाणुचरिए** - यह आकाश देवताओं के चलने का मार्ग होने से गुह्यानुचरित है, **णिवइए** - झुक रहा है, **पओए** - बादल-मेघ जल देने वाला है, **वुट्ठवलाहगे** - बादल बरस चुका है।

भावार्थ - साधु या साध्वी इस प्रकार न कहे कि आकाश देव है, बादलों की गर्जन देव है, विद्युत बिजली देव है, देव बरसा या देव खूब बरस रहा है, वर्षा हो तो अच्छा या न हो तो अच्छा, धान्य उत्पन्न हो या नहीं हो, रात्रि प्रकाश युक्त हो या न हो, सूर्य उदय हो या न हो, वह राजा विजयी हो या न हो, इस प्रकार की भाषा न बोले।

बुद्धिमान् साधु या साध्वी प्रयोजन होने पर आकाश को अंतरिक्ष कहे, गुह्यानुचरित कहे। यह मेघ जल देने वाला है, यह उमड़ रहा है, यह मेघ बरसता है, या बरस रहा है ऐसा कहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम शील साधु-साध्वी के लिए यह समग्र आचार है अतः ज्ञानादि से युक्त होकर यतना पूर्वक सदैव उसके पालन में यत्नशील रहे।

त्ति बेमि अर्थात् श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् शिष्य! जिस प्रकार मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सुना था उसी प्रकार मैं तुम्हें कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संयमनिष्ठ और विवेक-शील साधु साध्वी को अयथार्थ एवं सदोष भाषा का प्रयोग नहीं करते हुए सदैव मधुर, प्रिय, यथार्थ एवं निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करना चाहिये।

।। चौथे अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त।।

चौथे अध्ययन का दूसरा उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा, तहावि ताइं णो एवं वइज्जा तंजहा - गंडीं गंडी इ वा, कुट्ठीं कुट्ठी इ वा जाव महुमेहुणीं महुमेहुणी इ वा, हत्थछिण्णं वा हत्थच्छिण्णे इ वा एवं पायच्छिण्णे इ वा णक्कछिण्णे इ वा, कण्णछिण्णे इ वा उट्ठछिण्णे इ वा, जे यावण्णे तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं बुइया बुइया कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख णो भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **जहावि** - यद्यपि, **तहावि** - तथापि, **गंडी** - गंड रोग वाला, **कुट्ठी** - कुष्ट रोग वाला, **महुमेहुणी** - मधुमेही, **हत्थछिण्णे** - छिन्न हस्त-जिसका हाथ कट गया हो, **पायछिण्णे**- पैर कटे हुए हो-पैर कटा, **णक्कछिण्णे** - नाक कटी हो-नकटा, **कण्णछिण्णे** - कर्ण छिन्न को कनकटा, **उट्ठछिण्णे** - ओठ कटा हुआ, **बुइया** - सम्बोधित करने पर, **कुप्पंति** - क्रोधित होते हैं।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी यद्यपि अनेक रूपों को देखते हैं तथापि उन्हें देख कर उसे उसी प्रकार संबोधित कर नहीं बुलावे जैसे- गंड रोग वाले को गंडी, कुष्ट रोग वाले को कोढ़ी यावत् मधुमेह के रोगी को मधुमेही, जिसका हाथ कटा हुआ हो उसे हथकटा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पैर कटा हो उसे पैर कटा (लंगड़ा), इसी प्रकार नाक कटा हुआ हो उसे नकटा, कान कट गया हो उसे कनकटा या ओठ कटा हुआ हो उसे कटे हुए ओठ वाला नहीं कहे। इसी प्रकार की अन्य भाषा जिस भाषा के बोलने से लोग क्रोधित हो जाते हैं साधु-साध्वी ऐसी भाषा का प्रयोग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा तहावि ताइं एवं वइज्जा, तंजहा-ओयंसी ओयंसी इ वा, तेयंसी तेयंसी इ वा, जसंसी जसंसी इ वा, वच्चंसी वच्चंसी इ वा, अभिरूवंसी अभिरूवंसी इ वा, पडिरूवंसी पडिरूवंसी इ वा, पासाइयं पासाइए इ वा, दरिसणिज्जं दरिसणीए इ वा, जे यावण्णे तहप्पगारा तहप्पगाराहिं भासाहिं बुइया बुइया णो कुप्पंति माणवा, ते यावि तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **ओयंसी** - ओजस्वी-बलवान्, **तेयंसी** - तेजस्वी-दीप्तिमान्, **जसंसी**- यशस्वी-कीर्तिमान, **वच्चंसी**- वर्चस्वी-प्रभावशाली, **अभिरूवं** - अभिरूप - मनोहर जिसको देखने से आंखों को श्रम न होता हो, **पडिरूवं** - प्रतिरूप - प्रतिक्षण नवीन रूप जैसा दिखाई देता हो, **पासाइयं** - प्रासादीय, **दरिसणिज्जं** - दर्शनीय।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं तथापि ऐसे रूपों को देख कर भी उनमें रहे हुए गुणों को ग्रहण करे और बोलने का प्रयोजन हो तो इस प्रकार बोले-ओजस्वी को ओजस्वी, तेजस्वी को तेजस्वी, यशस्वी को यशस्वी, वर्चस्वी को वर्चस्वी, मनोहर को मनोहर, रूपवान को सुरूप, रमणीय को रमणीय, दर्शनीय को दर्शनीय कह कर बुलावे। ये और जितने भी जो व्यक्ति जैसे हैं उन्हें उसी प्रकार कहने से वे मनुष्य क्रोधित नहीं होते हैं अतः साधु-साध्वी सोच-विचार कर निर्दोष भाषा बोले।

विवेचन - साधु साध्वी को असाध्य रोगों से पीडित एवं अंगहीन व्यक्ति को पापकारी एवं मर्म भेदी शब्दों से संबोधित नहीं करना चाहिये। अपितु आवश्यकता होने पर प्रिय एवं मधुर सम्बोधनों से संबोधित करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा तंजहा-वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा, तहावि ताइं णो एवं वइज्जा, तंजहा-सुक्कडे इ वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुट्ठुकडे इ वा, साहुकडे इ वा, कल्लाणे इ वा, करणिज्जे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **वप्पाणि** - खेतों की क्यारियाँ, **सुक्कडे** - अच्छा किया है, **सुट्ठुकडे**- बहुत सुन्दर किया है, **साहुकडे** - साधुकृत, **कल्लाणे** - कल्याणकारी, **करणिज्जे** - करणीय- करने योग्य।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं जैसे कि खेतों की क्यारियाँ, कोट किला यावत् घर आदि को देखकर उनके विषय में ऐसा नहीं कहे कि - ये अच्छे बने हुए हैं, बहुत सुंदर बनाये हैं, सुन्दर कार्य किया हैं, यह कल्याणकारी है, यह करने योग्य है। साधु साध्वी इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं रूवाइं पासिज्जा तं जहा - वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा, तहावि ताइं एवं वइज्जा तं जहा-आरंभकडे इ वा सावज्जकडे इ वा, पयत्तकडे इ वा, पासाइयं पासाइए इ वा, दरिसणीयं दरिसणीए इ वा, अभिरूवं अभिरूवं त्ति वा पडिरूवं पडिरूवं त्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा॥ १३६॥

कठिन शब्दार्थ - **आरंभकडे** - आरंभ (हिंसा) कृत, **सावज्जकडे** - सावद्य कृत, **पयत्तकडे** - प्रयत्न कृत-प्रयत्नपूर्वक किया गया।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी कई रूपों को देखते हैं जैसे कि खेतों की क्यारियाँ कोट, किल्ला यावत् घर आदि को देख कर और प्रयोजन हो तो इस प्रकार कहे-'यह आरंभ से बनाया गया है, छह काय के जीवों की हिंसा रूप पाप से बनाया गया है, प्रयत्न करके बनाया गया है, यह रमणीय है, यह दर्शनीय है, जो रूप संपन्न हो उसे अभिरूप और जो प्रतिरूप हो उसे प्रतिरूप है। साधु साध्वी इस प्रकार की निरवद्य या जीवोपघात रहित भाषा का प्रयोग करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, उवक्खडियं पेहाए तहावि तं णो एवं वइज्जा तं जहा-सुकडे इ वा, सुट्ठुकडे इ वा, साहुकडे इ वा, कल्लाणे इ वा, करणिज्जे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - उवक्खडियं - तैयार किया हुआ अर्थात् मसाले आदि देकर संस्कार युक्त पकाया हुआ।

भावार्थ - साधु या साध्वी तैयार हुए अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार जो गृहस्थ ने पकाकर तैयार किया है उस आहार को देखकर साधु साध्वी इस प्रकार नहीं बोले कि - यह अच्छा बनाया हुआ है, बढिया बनाया हुआ है, सुन्दर रीति से बनाया हुआ है या कल्याणकारी है और करने योग्य है। साधु साध्वी इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, उवक्खडियं पेहाए एवं वइज्जा तंजहा-आरंभकडे त्ति वा, सावज्जकडे त्ति वा, पयत्तकडे त्ति वा, भद्दयं भद्दे त्ति वा, ऊसढं ऊसढे त्ति वा, रसियं रसिए त्ति वा मणुण्णं मणुण्णे त्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा॥ १३७॥

कठिन शब्दार्थ - भद्दयं - भद्र-सुखकारी, **ऊसढं** - उत्कृष्ट या ताजा अर्थात् वर्ण गंध रसादि युक्त, **मणुण्णं** - मनोज्ञ, **रसियं** - सरस।

भावार्थ - अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार जो गृहस्थ ने पका कर तैयार किया है उस चतुर्विध आहार को देखकर यदि कोई खास प्रयोजन उपस्थित हुआ हो अथवा गृहस्थ ने पूछ लिया हो तो साधु साध्वी इस प्रकार कह सकते हैं कि-यह आरंभ कृत है, सावद्यकृत है, प्रयत्न करके बनाया हुआ है तथा जो भद्र हो उसे भद्र, ताजा को ताजा, सरस को सरस और मनोज्ञ हो तो उसे मनोज्ञ कहे। इस प्रकार असावद्य यावत् जीवोपघात रहित निर्दोष भाषा का प्रयोग कर सकता है। बिना प्रयोजन तो आहार आदि के विषय में साधु साध्वी को मौन ही रखना चाहिए।

विवेचन - साधु साध्वी को आहारादि की प्रशंसा नहीं करनी चाहिये क्योंकि आहारादि छह काय जीवों के आरंभ से बनता है। अतः उसकी प्रशंसा या सराहना करना छहकाय जीवों की हिंसा की अनुमोदना करना है जबकि साधु हिंसा का तीन करण तीन योग से पूर्ण त्यागी होता है अतः साधु साध्वी को ऐसी सावद्य भाषा नहीं बोलनी चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मणुस्सं वा, गोणं वा, महिसं वा, मिगं वा, पसुं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा, पक्खिं वा, सरीसिवं वा, जलयरं वा से तं परिवूढकायं पेहाए णो एवं वइज्जा - थूले इ वा, पमेइले इ वा, वट्टे इ वा, वज्झे इ वा, पाइमे इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **गोणं** - वृषभ (बैल) को, **महिसं** - भैंसे को, **मिगं** - मृग (हिरण) को, **पसुं** - पशु को, **पक्खिं** - पक्षी को, **सरीसिवं** - सर्प को, **जलयरं** - जलचर जीव को, **परिवूढकायं** - पुष्ट शरीर वाले को, **थूले** - स्थूल, **पमेइले** - गाढ़ी चर्बी (मेद) वाला, **वट्टे** - गोलाकार, **वज्झे** - वध्य-वध करने योग्य, **पाइमे** - पकाने योग्य।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी मनुष्य, बैल, भैंसे, मृग, पशु, पक्षी, जलचर जीवों को सर्प अथवा पुष्ट शरीर वाले प्राणी को देखकर इस प्रकार न कहे कि - यह स्थूल (मोटा) है, मेद (चर्बी) वाला है गोलाकार (गोल-मटोल) है, मारने योग्य है, पकाने योग्य है। इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवघातक भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मणुस्सं वा जाव जलयरं वा से तं परिवूढकायं पेहाए एवं वइज्जा-परिवूढकाए त्ति वा, उवचियकाए त्ति वा, थिर संघयणे त्ति वा, उवचिय मंससोणिए त्ति वा, बहुपडिपुण्ण-इंदिए त्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **उवचियकाए** - उपचितकाय-बड़े शरीर वाला, **थिर संघयणे** - स्थिर संहनन वाला, **उवचिय मंससोणिए** - उपचित मांस और रुधिर वाला, **बहुपडिपुण्ण-इंदिए** - परिपूर्ण इन्द्रिय वाला।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी पुष्ट शरीर वाले मनुष्य यावत् जलचर प्राणी को देखकर प्रयोजन हो तो इस प्रकार कहे कि - यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचितकाय है, दृढ़ संहनन वाला है या इसके शरीर में मांस और रुधिर अच्छा है और परिपूर्ण इन्द्रिय वाला है, ऐसी निरवद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा का प्रयोग करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा विरूवरूवाओ गाओ पेहाए णो एवं वइज्जा, तंजहा-गाओ दुज्झाओ त्ति वा, दम्मे त्ति वा, गोरहे त्ति वा, वाहिम त्ति वा, रहजोग्ग त्ति वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **गाओ** - गायों आदि को, **दुज्झाओ** - दुहने योग्य, **दम्मे** - यह बैल दमन करने-जोतने योग्य, **गोरहा** - छोटा बछड़ा, **वाहिम** - वहन करने योग्य, **रहजोग्ग** - रथ में जोतने योग्य।

भावार्थ - साधु या साध्वी विविध प्रकार की गौ-गायों तथा गो जाति के पशुओं को देखकर इस प्रकार नहीं कहे कि-ये गायें दुहने योग्य हैं, यह बैल दमन करने योग्य है, यह बछड़ा है, यह जोतने योग्य है, यह भार वहन करने योग्य है अथवा यह रथ में जोतने योग्य है इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातक भाषा साधु साध्वी नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा विरूवरूवाओ गाओ पेहाए एवं वइज्जा तंजहा- जुवं गवि त्ति वा, धेणु त्ति वा, रसवई त्ति वा, हस्से इ वा, महल्ले इ वा, महव्वए इ वा, संवहणि त्ति वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **जुवं गवे** - युवा बैल, **रसवई** - दूध देने वाली, **हस्से** - ह्रस्व, **महल्ले** - महान्, **महव्वए** - बड़ी आयु वाला, **संवहणि** - बहुत भार उठाने वाला।

भावार्थ - संयम शील साधु या साध्वी नाना प्रकार की गायों और गो जाति के पशुओं को देख कर यदि बोलने का प्रयोजन हो तो इस प्रकार कह सकता है कि - यह बैल युवा है, यह गाय प्रौढ है, दूध देने वाली है, यह बैल छोटा है, यह बड़ा है, यह बड़ी आयु का है, यह शकट गाड़ी आदि के भार को उठाने वाला है, इस प्रकार की असावद्य (निरवद्य) यावत् जीवोपघात रहित भाषा साधु साध्वी बोल सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाइं वणाणि वा रुक्खा महल्ला पेहाए णो एवं वइज्जा, तंजहा - पासायजोग्गा इ वा, तोरणजोग्गा इ वा, गिहजोग्गा इ वा, फलिहजोग्गा इ वा, अग्गलजोग्गा इ वा, णावाजोग्गा इ वा, उदगजोग्गा इ वा, दोणजोग्गा इ वा, पीढ चंगबेर णंगल कुलिय जंतलट्ठी णाभि गंडी आसणजोग्गा इ वा, सयणजाण उवस्सयजोग्गा इ वा एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **गंतुं** - जाकर, **उज्जाणाइं** - उद्यान आदि में, **पासायजोग्गा** - प्रासाद-महल के योग्य, **अग्गलजोग्गा** - अर्गला के योग्य, **पीढ** - पीढ, **चंगबेर** - काठ का बर्तन विशेष अर्थात् कठौती, **णंगल** - हल, **कुलिय**- कुल्हाडी, **जंत** - यंत्र, **लट्ठी** - लाठी, **णाभि** - चक्र की नाभि, **गंडी** - गंडी-सुनार का काष्ठो पकरण-एरण, **आसणजोग्गा**- आसन के योग्य, **सयण** - शयन, **जाण** - यान-शकट गाड़ी आदि, **उवस्सयजोग्गा** - उपाश्रय के योग्य अर्थात् उपाश्रय में लगने वाली लकड़ी के योग्य।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी प्रयोजनवश उद्यान आदि में, पर्वतों पर और वनों में जाएं, वहां अत्यंत विशाल वृक्षों को देखकर इस प्रकार न बोले कि - यह वृक्ष प्रासाद-महल में लगने वाली लकड़ी के योग्य है अथवा तोरण बनाने के योग्य है अथवा घर के योग्य है तथा इसका फलक-पाटिया बन सकता है, इसकी अर्गला बन सकती है और यह नौका के लिए अच्छा है। इसकी उदक द्रोणी (नाव में से पानी बाहर निकालने का साधन) अच्छी बन सकती है। यह पीठ बाजोट, चक्रनाभि अथवा गंडी (सुनार की एरण) के लिए अच्छा है। इसका आसन अच्छा बन सकता है। यह पलंग के योग्य है इससे यान-शकट गाड़ी आदि बनाये जा सकते हैं और यह उपाश्रय में लगने वाले स्तंभ आदि के योग्य है। साधु साध्वी को इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाणि वणाणि य रुक्खा महल्ला पेहाए एवं वइज्जा, तंजहा-जाइमंता इ वा, दीहवट्टा इ वा, महालया इ वा, पयायसाला इ वा, विडिमसाला इ वा, पासाइया इ वा, जाव पडिरूवा इ वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **जाइमंता** - जातिमंत, **दीह** - दीर्घ, **वट्टा** - वृत्त-गोल, **महालया** - बड़े विस्तार वाले, **पयायसाला**-प्रयात शाखा-जिनमें शाखाएं फूट गई हैं, **विडिमसाला**-जिनमें प्रशाखाएं फूट गई हैं।

भावार्थ - वह साधु या साध्वी उद्यान आदि में स्थित वृक्षों को देख कर प्रयोजन होने पर इस प्रकार कह सकता है कि - ये वृक्ष जातिमंत-उत्तम जाति के हैं अथवा दीर्घ-लम्बे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और वृत्त यानी गोलाकार हैं, बड़े विस्तार वाले हैं, इनकी अनेक शाखाएँ हैं अथवा इनकी प्रशाखाएं दूर तक फैली हुई हैं अथवा ये वृक्ष प्रासादीय-प्रसन्नता देने वाले हैं यावत् प्रतिरूप-सुन्दर हैं इस प्रकार की असावद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा साधु साध्वी बोल सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुसंभूया वणफला पेहाए तहावि ते णो एवं वइज्जा तंजहा-पक्का इ वा, पायखज्जा इ वा, वेलोइया इ वा, टाला इ वा, वेहिया इ वा, एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **बहुसंभूया** - बहु संभूत-विपुल परिमाण में उत्पन्न, **वणफला** - वन के फल, **पक्का** - पक्व **पायखज्जा** - पका कर खाने योग्य, **वेलोइया** - वेलोचित-तोड लेने योग्य, **टाला**- कोमल, **वेहिया** - वेध्य-खण्ड-खण्ड करने योग्य।

भावार्थ - साधु या साध्वी प्रचुर मात्रा में लगे हुए वनफलों को देख कर इस प्रकार न बोले कि - ये फल पक गए हैं अथवा ये फल पका कर खाने योग्य हैं। अब ये फल तोड लेने योग्य हैं। ये फल अभी कोमल हैं क्योंकि इनमें अभी गुठली नहीं पड़ी है और ये फल खण्ड-खण्ड (टुकडे) कर खाने योग्य हैं। इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा का साधु साध्वी प्रयोग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुसंभूया वणफला अंबा पेहाए एवं वइज्जा तंजहा - असंथडा इ वा बहुणिवट्टिमफला इ वा बहुसंभूया इ वा भूयरूवित्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **असंथडा** - असंतृत या असमर्थ अर्थात् फलों के भार से नम्र या धारण करने में असमर्थ, **बहुणिवट्टिमफला** - बहुनिर्वत्तितफल-बहुत फल लगे हुए।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी बहुत परिमाण में लगे हुए वन के आम आदि फलों को देख कर प्रयोजन होने पर इस प्रकार कह सकता है कि - ये वृक्ष फलों का भार सहन करने में असमर्थ प्रतीत हो रहे हैं अथवा ये वृक्ष बहुत फलों वाले हैं, ये फल बहुत परिपक्व हैं ये अबद्ध अस्थि वाले अर्थात् इनमें अभी गुठली नहीं पड़ी है अतः कोमल फल हैं। इस प्रकार की असावद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा साधु साध्वी बोल सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुसंभूयाओ ओसहीओ पेहाए तहावि ताओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णो एवं वइज्जा, तंजहा-पक्का इ वा, णीलिया इ वा, छवीइया इ वा, लाइमा इ वा, भज्जिमा इ वा, बहुखज्जा इ वा एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **ओसहीओ** - औषधियाँ, **णीलिया** - हरी-कच्ची, **छवीइया** - छवि वाली, **लाइमा** - काटकर फूली या धाणी बनाने योग्य, **भज्जिमा** - भूंजने-सेकने योग्य, **बहुखज्जा** - बहुत खाने योग्य अर्थात् होला बनाने योग्य।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी बहुत परिमाण में उत्पन्न हुई औषधियों (धान्यों के पौंधों) को देखकर इस प्रकार नहीं बोले कि-ये पक गई हैं अथवा यह नीली अर्थात् कच्ची या हरी हैं, ये सुन्दर छवि वाली हैं, ये काटकर फूली या धाणी बनाने योग्य हैं, ये पकाने योग्य हैं या भूंजने-सेकने योग्य हैं, ये भली भांति खाने योग्य हैं अर्थात् होला बनाने योग्य हैं, इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा नहीं बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुसंभूयाओ ओसहीओ पेहाए तहावि एवं वइज्जा तंजहा-रूढा इ वा, बहुसंभूया इ वा, थिरा इ वा, ऊसढा इ वा, गब्भिया इ वा, पसूया इ वा, ससारा इ वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **रूढा** - रूढ, **थिरा** - स्थिर, **ऊसढा** - रस युक्त, **गब्भिया** - गर्भिता-इन में दाने पड़ चुके हैं, **पसूया** - प्रसूता-उत्पन्न हो गये हैं, **ससारा** - ससार-सार युक्त अर्थात् धान्य युक्त।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी बहुत परिमाण में उत्पन्न हुई औषधियों-गेहूँ ज्वार आदि धान्यों के पौधों को देख कर यदि प्रयोजन वश बोलना पडे तो इस प्रकार कह सकता है कि - यह रूढ है- इसमें अंकुर निकला है, यह निष्पन्न प्रायः हो गई है, यह औषधि स्थिर है या यह रस युक्त है यह अभी गर्भ में है, यह उत्पन्न हो गई है इसमें धान्य पड गया है, इस प्रकार की असावद्य यावत् जीवोपघात से रहित भाषा बोले।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वी को भाषा प्रयोग के विषय में विशेष सावधानी रखने का आदेश दिया गया है। साधु साध्वी को ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी जीव की हिंसा की प्रेरणा मिलती हो। साधु साध्वी को सदैव निष्पापकारी भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं सद्दाइं सुणिज्जा तहावि एयाइं णो एवं वइज्जा, तंजहा-सुसद्दे त्ति वा, दुसद्दे त्ति वा एयप्पगारं भासं सावज्जं णो भासिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - सुसद्दे - सुशब्द, दुसद्दे - दुःशब्द।

भावार्थ - संयमशील साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्दों को सुन कर इनके संबंध में इस प्रकार न बोले कि - यह सुशब्द-बहुत अच्छा शब्द है, यह मंगलकारी है अथवा दुःशब्द सुनकर ऐसा न कहे कि यह बहुत बुरा शब्द है, यह अमंगलकारी है। इस प्रकार राग द्वेष के वश होकर सावद्य भाषा न बोले।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगइयाइं सद्दाइं सुणिज्जा तहावि ताइं एवं वइज्जा तंजहा-सुसद्दं सुसद्दे त्ति वा, दुसद्दं दुसद्दे त्ति वा एयप्पगारं असावज्जं जाव भासिज्जा, एवं रूवाइं किण्हे त्ति वा, णीले त्ति वा, लोहिए त्ति वा, हलिद्दे त्ति वा, सुक्किले त्ति वा, गंधाइं सुब्भिगंधे त्ति वा दुब्भिगंधे त्ति वा, रसाइं तित्ताणि वा (तित्ते त्ति वा) कडुए त्ति वा, कसाए त्ति वा, आम्बिले त्ति वा, महुरे त्ति वा फासाइं कक्खडाणि वा (कक्खडे त्ति वा) मउए त्ति वा, गुरुए त्ति वा, लहुए त्ति वा, सीए त्ति वा, उसिणे त्ति वा, णिद्धे त्ति वा, लुक्खे त्ति वा॥ १३९॥

भावार्थ - साधु या साध्वी उन शब्दों को सुन कर सुशब्द को सुशब्द और दुःशब्द को दुःशब्द ही कहे। इस प्रकार असावद्य यावत् जीवोपघात रहित भाषा बोले। इसी प्रकार रूपों के विषय में कृष्ण को कृष्ण यावत् श्वेत को श्वेत कहे। गंधों के विषय में सुगंध को सुगंध और दुर्गंध को दुर्गन्ध कहे, रसादि के विषय में भी तिक्त को तिक्त यावत् मधुर को मधुर कहे। इसी प्रकार स्पर्शों के विषय में कर्कश को कर्कश यावत् उष्ण को उष्ण कहे अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में यह बताया गया है कि कोई खास प्रयोजन उपस्थित होने पर साधु साध्वी को पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श के संबंध में कैसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये। राग और द्वेष के वश होकर साधु साध्वी विपरीत भाषा नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोलते हुए जो जैसा है उसको वैसा ही बतलाए अर्थात् सावधानी पूर्वक यथार्थ एवं निर्दोष वचन का ही प्रयोग करे।

यहाँ पर पांच इन्द्रियों के विषयों का कथन किया गया है -

१. श्रोत्रेन्द्रिय के ३ विषय - जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द।

२. चक्षुरिन्द्रिय के ५ विषय - काला, नीला, लाल, पीला, सफेद वर्ण।

३. घ्राणेन्द्रिय के २ विषय - सुगन्ध और दुर्गन्ध।

४. रसनेन्द्रिय के ५ विषय - तिक्त (तीखा), कटु (कडवा), कषैला, आम्बिल (खट्टा), मधुर (मीठा)।

५. स्पशनेन्द्रिय के ८ विषय - कर्कश (खुर्दरा-कठोर), मृदु (कोमल-सुंहाला), लघु (हलका), गुरु (भारी), स्निग्ध (चीकना), रूक्ष (रूखा), शीत (ठण्डा), उष्ण (गरम)।

ये पांच इन्द्रियों के तेईस विषय हैं और दो सौ चालीस विकार होते हैं इनका विस्तृत वर्णन स्थानाङ्ग सूत्र के पांचवें ठाणे में है।

यहाँ पर पहले सूत्र में राग द्वेष युक्त भावों से 'सुशब्द' आदि को सुशब्द आदि कहने का निषेध किया है। अगले सूत्र में वस्तु स्थिति का यथार्थ निरूपण करते हुए तटस्थ भावपूर्वक सुशब्द को सुशब्द आदि कह सकना बताया है। भाषा बोलने का विवेक बताया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च अणुवीइ णिट्ठाभासी णिसम्मभासी अतुरियभासी विवेगभासी समियाए संजए भासं भासिज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं० ॥ त्ति बेमि॥ १४०॥

॥ बीओ उद्देसो समत्तो॥

॥ चउत्थं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - वंता - त्याग करके, **अणुवीइ** - प्रासंगिक विषय और व्यक्ति के अनुरूप विचार (चिंतन) करके, **णिट्ठाभासी** - निष्ठाभाषी - पहले उस विषय का पूरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्णयात्मक ज्ञान करके बोलने वाला, **णिसम्मभासी**- निशम्यभाषी - अच्छी तरह सुनकर और समझकर-विचार पूर्वक बोलने वाला, **अतुरियभासी** - अत्वरितभाषी - जल्दी-जल्दी या स्पष्ट शब्दों में न बोलने वाला। **विवेगभासी** - विवेकभासी - विवेक पूर्वक भाषी (जिस भाषा प्रयोग से कर्म आत्मा से पृथक् हो वैसा बोलने वाला), **समियाए** - भाषा समिति का ध्यान रख कर, **संजए** - संयत - परिमित शब्दों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी क्रोध, मान, माया और लोभ का त्याग करने वाला, निष्ठाभाषी - एकान्त निरवद्य भाषा बोलने वाला, निशम्यभासी - अच्छी तरह सुनकर और समझ कर विचार पूर्वक बोलने वाला, अत्वरितभाषी - धीरे-धीरे बोलने वाला अर्थात् उतावला उतावला न बोलने वाला और विवेक पूर्वक बोलने वाला हो। साधु साध्वी भाषा समिति से युक्त संयत भाषा बोले।

यही साधु साध्वी का समग्र आचार है। इस प्रकार मैं कहता हूँ। अर्थात् - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से इस प्रकार कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

विवेचन - भाषा अध्ययन का उपसंहार करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि विवेकशील एवं संयमनिष्ठ साधक को कषायों का त्याग करके सोच विचार पूर्वक निरवद्य, निष्पापकारी, मधुर प्रिय एवं यथार्थ भाषा का प्रयोग करना चाहिये।

॥ चौथे अध्ययन का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

❀ भाषाजात नामक चौथा अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रैषणा नामक पांचवां अध्ययन

प्रथम उद्देशक

चौथे अध्ययन में भाषा समिति विषयक वर्णन के पश्चात् आगमकार इस पांचवें वस्त्रैषणा अध्ययन में साधु साध्वी को किस तरह से कैसे वस्त्र ग्रहण करने चाहिये, इसका वर्णन करते हैं। वस्त्र दो प्रकार का कहा गया है - १. द्रव्य वस्त्र और २. भाव वस्त्र। द्रव्य वस्त्र के तीन भेद हैं - १. एकेन्द्रिय जीवों के शरीर से निर्मित कपास, सण आदि के वस्त्र २. विकलेन्द्रिय जीवों के तारों (लारों) से बनाए गये रेशमी वस्त्र और ३. पंचेन्द्रिय जीवों के बालों से बनाए गए ऊन के कम्बल, वस्त्र आदि। ब्रह्मचर्य के अठारह हजार शीलांग गुणों को धारण करना भाव वस्त्र कहलाता है। प्रस्तुत अध्ययन में द्रव्य वस्त्रों के विषय में ही कथन किया गया है।

इस अध्ययन के दो उद्देशक हैं - पहले उद्देशक में वस्त्र ग्रहण करने की विधि और दूसरे उद्देशक में वस्त्र धारण करने का उल्लेख किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा वत्थं एसित्तए, से जं पुण वत्थं जाणिज्जा तंजहा-जंगियं वा भंगियं वा साणियं वा पोत्तगं वा खोमियं वा तूलकडं वा तहप्पगारं वत्थं। जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरसंघयणे से एगं वत्थं धारिज्जा, णो बिइयं, जा णिग्गंथी सा चत्तारि संघाडीओ धारिज्जा एगं दुहत्थ वित्थारं, दो तिहत्थ वित्थाराओ, एगं चउहत्थ वित्थारं तहप्पगारेहिं वत्थेहिं असंधिज्जमाणेहिं अह पच्छा एगमेगं संसीविज्जा॥ १४१॥

कठिन शब्दार्थ - जंगियं - जांगमिक-जंगम-चलने फिरने वाले त्रस जीवों - पंचेन्द्रिय के बालों से बना हुआ, **भंगिय** - भांगिक-विकलेन्द्रिय जीवों की लार से बना हुआ, **साणियं** - साणिक-सण (तृण विशेष) आदि से बना हुआ, **पोत्तगं** - पोतक-ताड पत्रों आदि से बना हुआ, **खोमियं** - क्षोमिक-कपास आदि से बना हुआ, **तूलकडं** - तूलकृत-आक आदि की रुई से बना हुआ, **जुगवं** - युगवान्-तीसरे चौथे आरे का जन्मा हुआ अथवा समय के उपद्रव से रहित, **अप्पायंके** - अल्पांतक-रोग रहित, **संघाडीओ** - संघाटिका, **असंधिज्जमाणेहिं** - नहीं मिलने पर, **संसीविज्जा** - सी ले (सीवे)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी वस्त्र की गवेषणा करनी चाहें तो वे वस्त्र के विषय में इस प्रकार जाने कि-ऊँट, भेड आदि की ऊन से बना हुआ, विकलेन्द्रिय जीवों की लारों से बना हुआ, सन तथा वल्कल आदि से बना हुआ, ताड आदि के पत्तों से बना हुआ, कपास आदि से बना हुआ और आक आदि की रूई से बना हुआ वस्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य वस्त्र को मुनि ग्रहण कर सकता है। जो निर्ग्रन्थ तरुण-युवावस्था में है तथा तीसरे या चौथे आरे का जन्मा हुआ है अथवा समय के उपद्रव से रहित बलवान्, रोग रहित और दृढ़ संहनन वाला है वह एक ही वस्त्र को धारण करे, दूसरा वस्त्र धारण न करे। जो साध्वी है वह चार संघाटिका-चादरें (साडियाँ) धारण करे। उसमें एक चादर दो हाथ चौड़ी परिमाण वाली, दो चादरें तीन हाथ चौड़ी परिमाण वाली और एक चादर चार हाथ चौड़ी परिमाण वाली लम्बी होनी चाहिए। इस प्रकार के एक वस्त्र के न मिलने पर एक वस्त्र को दूसरे के साथ सी ले अर्थात् जोड़ ले।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी १. जांगमिक २. भांगिक ३. सानिक ४. पोतक ५. क्षोमिक और ६. तूलकृत इन छह प्रकार के वस्त्रों में से किसी प्रकार का वस्त्र ग्रहण कर सकते हैं। युवक, नीरोगी, शक्ति संपन्न और हृष्ट पुष्ट शरीर वाला साधु एक ही वस्त्र ग्रहण करे, दूसरा नहीं। साध्वी के लिए चार चादरों का विधान किया गया है उसमें से उपाश्रय में रहते समय दो हाथ चौड़ी चादर, गोचरी एवं जंगल आदि जाते समय तीन हाथ चौड़ी चादर का एवं व्याख्यान के समय चार हाथ परिमाण वाली चौड़ी चादर का उपयोग करना चाहिये।

स्थानाङ्ग सूत्र और बृहत्कल्प सूत्र आदि में भी साधु साध्वी द्वारा ग्रहण करने योग्य वस्तुओं का उल्लेख किया गया है। यद्यपि यहां छह प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है किन्तु वर्तमान में साधु साध्वी प्रायः सूती और ऊनी वस्त्र ही धारण करते हैं। यहाँ एक वस्त्र धारण करने का उल्लेख किया है। प्राचीन धारणा के अनुसार गिनती की अपेक्षा एक वस्त्र नहीं किन्तु जाति की अपेक्षा एक ही जाति के वस्त्र समझने चाहिए क्योंकि गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी आदि के भी गिनती की अपेक्षा अनेक (साधु की मर्यादा अनुसार) परन्तु जाति की अपेक्षा एक का उल्लेख मिलता है।

रेशमी वस्त्र जिसके लिये कीड़ों को मारा जाता है वह तो साधु साध्वी को ग्रहण करना उचित ही नहीं है किन्तु आजकल एक ऐसा वस्त्र मिलने लगा है जिसके लिये कीड़ों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को मारना नहीं पड़ता है। इसे टसर का रेशम कहते हैं यह रूई की तरह होता है और उसी तरह कातकर इसका धागा बनाया जाता है इसे भी भंगिय वस्त्र कह सकते हैं, इस प्रकार का अथवा अलसी का बना हुआ वस्त्र साधु साध्वी ग्रहण कर सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा परं अद्धजोयणमेराए वत्थ पडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए ॥ १४२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अद्धजोयणमेराए** - आधे योजन की मर्यादा से, **परं** - आगे, **अभिसंधारिज्जा** - विचार करे।

भावार्थ - साधु या साध्वी वस्त्र याचना करने हेतु आधे योजन की मर्यादा से आगे जाने का विचार न करे।

विवेचन - आगम में जैसे साधु साध्वी को आधे योजन से आगे जाकर आहार पानी लाने का आगमों में निषेध किया गया है (बृहत्कल्प सूत्र ४, १२, भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक १) वैसे ही क्षेत्र की मर्यादा का उल्लंघन कर अर्थात् आधे योजन से आगे जाकर वस्त्र ग्रहण करने का भी निषेध किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा अस्सिं (अस्सं) पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं जहा पिंडेसणाए भाणियव्वं। एवं बहवे साहम्मिया, एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ, बहवे समण, माहण, अतिहि, किवण, वणीमग तहेव पुरिसंतरकडं जहा पिंडेसणाए॥ १४३ ॥

कठिन शब्दार्थ - **साहम्मियं** - साधर्मिक को, **समुद्दिस्स** - उद्देश्य कर, **पुरिसंतरकडं**- पुरुषान्तर कृत।

भावार्थ - साधु या साध्वी वस्त्र के विषय में यह जाने कि कोई गृहस्थ पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ साधु साध्वी को देने की प्रतिज्ञा से किसी एक या अनेक साधु साध्वियों के उद्देश्य से प्राणियों आदि की हिंसा करके वस्त्र तैयार करे तो साधु साध्वी उसे ग्रहण नहीं करे। यदि वह अन्य बहुत से शाक्य आदि श्रमणों के लिए तैयार किया हो और पुरुषान्तर कृत हो गया हो तो साधु उसे ग्रहण कर सकता है। यह सारा विषय पिण्डैषणा अध्ययन की तरह समझना चाहिये।

पिण्डैषणा अध्ययन में जैसे एक साधर्मिक साधु एवं बहुत से साधर्मिक साधु, इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह एक साधर्मिणी साध्वी एवं बहुत सी साधर्मिणी साध्वियाँ एवं बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से जैसे औद्देशिक, क्रीत आदि तथा अपुरुषान्तर कृत आदि विशेषणों से युक्त आहार को ग्रहण करने का निषेध किया गया है उसी प्रकार यहाँ शेष पांचों आलापकों में बताए हुए बहुत से साधर्मिक आदि का उद्देश्य रख कर प्राणी आदि के समारंभ से निर्मित, क्रीत आदि तथा अपुरुषान्तकृत आदि विशेषणों से युक्त ऐसे वस्त्र ग्रहण के निषेध का तथा पुरुषान्तर कृत आदि होने पर ग्रहण करने का सारा वर्णन उसी प्रकार जान लेना चाहिए।

विवेचन - वस्त्र ग्रहण करने की सारी विधि आहार ग्रहण करने की विधि की तरह है अतः सूत्रकार ने पिण्डैषणा अध्ययन की भलामण दी है। तदनुसार साधु साध्वी को आधाकर्म आदि दोषों से रहित वस्त्र ही ग्रहण करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा, असंजए भिक्खुपडियाए कीयं वा धोयं वा रत्तं वा घट्ठं वा मट्ठं वा संमट्ठं वा संपधूमियं वा तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतरकडं जाव णो पडिगाहिज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा, पुरिसंतरकडं जाव पडिगाहिज्जा॥ १४४॥

कठिन शब्दार्थ - **कीयं** - क्रीत-खरीदा हुआ, **धोयं** - धोया हुआ, **रत्तं** - रंगा हुआ, **घट्ठं** - घिसा हुआ, **मट्ठं** - घिसकर चिकना या मुलायम किया हुआ, **संपधूमियं** - अगरबत्ती आदि के धूप से सुवासित किया हुआ।

भावार्थ - साधु या साध्वी वस्त्र के विषय में यह जाने कि किसी असंयमी गृहस्थ ने साधु के निमित्त वस्त्र खरीदा है, धोया है, रंगा है, घिसा है, चिकना या मुलायम किया है, संस्कारित किया है या अगरबत्ती इत्र आदि के धूप से सुवासित किया है तो तथा प्रकार के वस्त्र को जो कि पुरुषान्तर कृत नहीं हुआ हो तो ऐसे अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित वस्त्र को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर साधु साध्वी मिलने पर भी उसे ग्रहण नहीं करे, यदि वह पुरुषान्तर कृत यावत् आसेवित है तो मिलने पर प्रासुक एवं एषणीय जान कर साधु-साध्वी उसे ग्रहण कर सकते हैं।

विवेचन - साधु के लिए खरीदा गया वस्त्र साधु को लेना नहीं कल्पता परन्तु यदि उसका किसी व्यक्ति ने अपने लिए उपयोग कर लिया हो तो फिर वह वस्त्र साधु के लिये अकल्पनीय नहीं रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहले सूत्र में क्रीतादि दोष युक्त वस्त्र लेने का निषेध किया है, वहाँ प्राण, भूत, जीव, सत्त्वादि की हिंसा होने से मना है। दूसरा सूत्र विशुद्ध कोटि का है। जीवहिंसा का कारण न होने से पुरुषान्तरकृतादि होने पर उनको लेना बताया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण वत्थाइं जाणिज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं तंजहा-आईणगाणि वा, सहिणाणि वा, सहिणकल्लाणाणि वा, आयाणि वा, कायाणि वा, खोमियाणि वा, दुगुल्लाणि वा, पट्टाणि वा, मलयाणि वा, पत्तुण्णाणि वा, अंसुयाणि वा, चीणंसुयाणि वा, देसरागाणि वा, अमिलाणि वा, गज्जलाणि वा, फालियाणि वा, कोयवाणि वा, कंबलगाणि वा, पावरणाणि वा, अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं वत्थाइं महद्धणमोल्लाइं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **महद्धणमोल्लाइं** - बहुमूल्य, **आईणगाणि** - आजिनक-मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न, **सहिणाणि** - श्लक्षण-अत्यंत सूक्ष्म, **सहिणकल्लाणाणि** - सूक्ष्म कल्याणकारी, **आयाणि** - सूक्ष्म रोमों से निर्मित, **कायाणि** - कायक-इन्द्र नील वर्ण की कपास से निष्पन्न, **खोमियाणि** - क्षोमिक-सामान्य कपास से निर्मित, **दुगुल्लाणि** - दुकूल-गौड देश की विशिष्ट कपास से निष्पन्न **पट्टाणि** - पट्ट सूत्र से निष्पन्न, **मलयाणि** - मलयज सूत्र से बना हुआ, **पत्तुण्णाणि** - वल्कल के तंतुओं से निर्मित, **अंसुयाणि** - अंशुक-देश विदेश में बने महार्घ वस्त्र, **चीणंसुयाणि** - चीनांशुक-चीन में बना रेशमी वस्त्र।

भावार्थ - साधु या साध्वी नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों के विषय में जाने जैसे कि-मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न, अत्यंत सूक्ष्म वर्ण और सौन्दर्य से सुशोभित वस्त्र, भेड के सूक्ष्म रोमों से निर्मित वस्त्र, इन्द्र नील वर्ण कपास से निष्पन्न, सामान्य कपास से बना हुआ, गौड देश की विशिष्ट कपास से निष्पन्न, पट्टसूत्र (रेशम) से निष्पन्न, मलयज सूत्र से बना हुआ या वल्कल के तंतुओं से बना हुआ वस्त्र, अंशु, चीनांशुक आदि नाना प्रकार के देशों में बने विशिष्ट वस्त्र, आमिल देश, गजफल देश, फलिय देश और कोयवदेश में बने असाधारण वस्त्र विशिष्ट प्रकार के कम्बल और इसी प्रकार के अन्य भी बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होने पर भी साधु साध्वी उन्हें ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण आईणपाउरणाणि वत्थाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणिज्जा, तंजहा-उद्दाणि वा, पेसाणि वा, पेसलाणि वा, किण्हमिगाईणगाणि वा, णील मिगाईणगाणि वा, गोरमिगाईणगाणि वा, कणगाणि वा, कणगकंताणि वा, कणगपट्टाणि वा, कणगखइयाणि वा, कणगफुसियाणि वा, वग्घाणि वा, विवग्घाणि वा (विगाणि वा), आभरणाणि वा, आभरणविचित्ताणि वा, अण्णयराणि वा, तहप्पगाराणि आईणपाउरणाणि वत्थाणि लाभे संते णो पडिगाहिज्जा॥ १४५॥

कठिन शब्दार्थ - **आईणपाउरणाणि** - चर्म एवं चर्म रोम से निष्पन्न वस्त्र, **उद्दाणि** - सिंधु देश के मृगों के चर्म से निष्पन्न, **पेसाणि** - सिंधु देश के पशुओं के सूक्ष्म चर्म से निष्पन्न, **पेसलाणि** - चर्म के सूक्ष्म रोमों से निष्पन्न, **किण्हमिगाईणगाणि** - कृष्ण मृग के चर्म से बने हुए, **कणगाणि** - कनक-सोने की झाल से बनाये हुए, **कणगकंताणि** - कनक के समान कांति वाले, **कणगपट्टाणि** - कनक रस से बने हुए, **कणगखइणाणि** - सोने के तारों से निर्मित, **कणगफुसियाणि** - सोने के स्तबकों से निर्मित, **वग्घाणि** - व्याघ्र चर्म से निर्मित, **आभरणविचित्ताणि** - विचित्र प्रकार के आभरणों से विभूषित।

भावार्थ - साधु या साध्वी चर्म एवं रोम से निष्पन्न वस्त्रों के विषय में यह जाने कि- सिन्धुदेश के मत्स्य के चर्म से बने हुए, सिंधुदेश के पशुओं के चर्म से बने हुए तथा उस चर्म पर स्थित सूक्ष्म रोमों से बने हुए, कृष्ण नील और श्वेत मृग के चर्म से निर्मित, स्वर्णजाल से सुशोभित स्वर्ण के समान कांति वाले, स्वर्ण तारों से खचित, स्वर्ण रस के स्तबकों से विभूषित बहुमूल्य वस्त्र अथवा व्याघ्र या वृक के चर्म से बने हुए सामान्य और विशेष प्रकार के आभरणों से सुशोभित अन्य प्रकार के चर्म एवं रोमों से बने वस्त्रों के मिलने पर भी साधु-साध्वी उसे ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देश और विदेश में बने हुए रेशम सूत्र चर्म एवं रोमों से बने बहुमूल्य वस्त्रों को ग्रहण करने का निषेध किया है। क्योंकि ऐसे बहुमूल्य वस्त्रों को देख कर चोरों के मन में दुर्भाव पैदा हो सकता है और साधु साध्वियों के मन में भी वस्त्रों के प्रति ममत्व भाव पैदा हो सकता है। चर्म एवं मुलायम रोमों से बने वस्त्रों में पशुओं की हिंसा भी होती है अतः प्रभु ने साधु साध्वियों के लिए ऐसे कीमती और महारंभी वस्त्र ग्रहण करने का निषेध किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्चेयाइं आययणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणिज्जा चउहिं पडिमाहिं वत्थं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उद्देसिय वत्थं जाइज्जा तंजहा - जंगियं वा भंगियं वा साणयं वा पोत्तयं वा खोमियं वा तूलकडं वा, तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाइज्जा, परो वा णं दिज्जा फासुयं एसणीयं लाभे संते पडिग्गाहिज्जा, पढमा पडिमा १। अहावरा दुच्चा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पेहाए वत्थं जाइज्जा तंजहा - गाहावई वा जाव कम्मकरी वा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसो त्ति वा, भगिणि इ वा, दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं वत्थं ? तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाइज्जा, परो वा से दिज्जा फासुयं एसणीयं लाभे संते पडिग्गाहिज्जा। दुच्चा पडिमा २। अहावरा तच्चा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा तंजहा-अंतरिज्जं वा, उत्तरिजगं वा, तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाइज्जा जाव पडिगाहिज्जा। तच्चा पडिमा ३। अहावरा चउत्था पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उज्झियधम्मियं वत्थं जाइज्जा, जं च अण्णे बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा णावकंखंति तहप्पगारं उज्झियधम्मियं वत्थं सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा फासुयं जाव पडिगाहिज्जा। चउत्था पडिमा ४॥ इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं जहा पिंडेसणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **उवाइकम्म** - अतिक्रम करके, **अंतरिज्जं** - अंदर पहनने के योग्य।

भावार्थ - साधु या साध्वी पूर्वोक्त दोष स्थानों को छोड़ कर चार प्रतिमाओं-अभिग्रह विशेषों से वस्त्र की गवेषणा करे, उनमें से पहली प्रतिमा है - वह साधु या साध्वी मन में निश्चित किये हुए ऊन यावत् अर्क तूल निर्मित वस्त्र अथवा तथाप्रकार के वस्त्र की स्वयं याचना करे या कोई गृहस्थ देवे तो प्रासुक और एषणीय जान कर उसे ग्रहण कर ले। यह पहली प्रतिमा है।

अब दूसरी प्रतिमा के विषय में कहते हैं - वह साधु या साध्वी पहले वस्त्र को देख कर याचना करे। गृहपति यावत् दास दासी आदि गृहस्थों से वह साधु पहले ही वस्त्रों को देख कर इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ! भाई! अथवा बहिन! क्या तुम मुझे इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रों में से किसी वस्त्र को दोगे या दोगी ? तथाप्रकार के वस्त्र की साधु या साध्वी पहले स्वयं याचना करे या गृहस्थ यदि बिना मांगे ही देवे तो प्रासुक तथा एषणीय मिलने पर ग्रहण कर ले, यह दूसरी प्रतिमा है।

अब तीसरी प्रतिमा कहते हैं - वह साधु या साध्वी वस्त्र के विषय में जाने जैसे कि- गृहस्थ के अन्दर के पहनने के योग्य अथवा ऊपर पहनने योग्य चादर आदि तथा प्रकार के वस्त्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ बिना मांगे ही स्वयं देवे तो उस वस्त्र को प्रासुक और एषणीय जान कर मिलने पर ग्रहण करे। यह तीसरी प्रतिमा है।

अब चौथी प्रतिमा कहते हैं - वह संयमशील साधु या साध्वी उज्झित धर्म वाला अर्थात् जिसे गृहस्थ ने भोग लिया है और जो उसके पुनः काम में आने वाला नहीं है इस प्रकार के वस्त्र की याचना करे जिसको अन्य शाक्यादि श्रमण यावत् भिखारी लोग भी नहीं लेना चाहते। इस प्रकार के ऐसे उज्झित धर्म वाले वस्त्र को स्वयं मांगे अथवा गृहस्थ स्वयं ही साधु को दे तो प्रासुक यावत् एषणीय जान कर ग्रहण करे यह चौथी प्रतिमा है। इन चार प्रतिमाओं के विषय में जैसा पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है वैसा ही समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वस्त्र ग्रहण करने की चार प्रतिमा-विशेष प्रतिज्ञाओं का वर्णन किया गया है, यथा -

१. उद्दिष्ट प्रतिमा - अपने मन में पहले संकल्पित वस्त्र की याचना करना उद्दिष्ट प्रतिमा (प्रतिज्ञा) है।

२. प्रेक्षित प्रतिमा - किसी गृहस्थ के यहां वस्त्र देख कर उस देखे हुए वस्त्र की ही याचना करना प्रेक्षित प्रतिमा है।

३. परिभुक्त प्रतिमा - गृहस्थ के अंतर परिभोग या उत्तरीय परिभोग या उसके पहने हुए वस्त्र की याचना करना परिभुक्त प्रतिमा है।

४. उज्झितधर्मा प्रतिमा - मैं वही वस्त्र ग्रहण करूँगा जो कि उज्झित धर्म वाला- फैंकने योग्य है। यह उज्झित प्रतिमा कहलाती है।

इस तरह के अभिग्रहों को धारण करके वस्त्र की याचना करने की विधि ठीक उसी तरह से बताई गई है जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिया णं एयाए एसणाए एसमाणं परो वइज्जा-आउसंतो समणा! एज्जाहि तुमं मासेण वा दसराएण वा पंचराएण वा सुए वा सुयतरे वा, तो ते वयं आउसो! अण्णयरं वत्थं दाहामो, एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोइज्जा - आउसो इ वा! भइणि!, इ वा, णो खलु मे कप्पइ एयप्पगारे संगार-वयणे पडिसुणित्तए, अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि, से सेवं वयंतं परो वइज्जा-आउसंतो समणा! अणुगच्छाहि तो ते वयं अण्णयरं वत्थं दाहामो, से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसो! इ वा, भइणि ! इ वा णो खलु मे कप्पइ एयप्पगारे संगारवयणे पडिसुणित्तए अभिकंखसि मे दाउं? इयाणिमेव दलयाहि। से सेवं वयंतं परो णेया वइज्जा-आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा! आहरेयं वत्थं समणस्स दाहामो, अवियाइं वयं पच्छावि अप्पणो सयट्ठाए पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स जाव चेइस्सामो एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - दस राएण - दस रात्रि अर्थात् दस दिन के बाद, **सुय** - कल, **संगारवयणे** - संकेत वचन अर्थात् प्रतिज्ञा वचन, **आहर** - लाओ, **पडिसुणित्तए** - सुनना अर्थात् स्वीकार करना।

भावार्थ - कदाचित् इन वस्त्रैषणाओं से वस्त्र की गवेषणा करने वाले साधु साध्वी के प्रति कोई गृहस्थ कहे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! तुम इस समय जाओ और एक मास के बाद या दस दिन के बाद या पांच दिन के बाद अथवा कल या कल के अन्तर से (परसों) आना तब हम तुमको वस्त्र देंगे। इस प्रकार के शब्दों को सुन कर हृदय में धारण कर वह साधु साध्वी इस प्रकार कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनी! मुझे इस प्रकार का प्रतिज्ञा वचन सुनना नहीं कल्पता अर्थात् मैं आप के इस प्रतिज्ञा वचन को स्वीकार नहीं कर सकता। यदि तुम मुझे इसी समय देना चाहते हो तो दे दो। साधु साध्वी के इस प्रकार कहने पर वह नेता-गृहस्थ घर के किसी सदस्य को कहे कि-हे आयुष्मन्! अथवा हे बहिन ! वह वस्त्र लाओ और साधु को दे दो। हम अपने लिये बाद में प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों का समारंभ करके और वस्त्र बना लेंगे। गृहस्थ के इस प्रकार के शब्दों को सुन कर पश्चात् कर्म लगने से उस वस्त्र को अप्रासुक तथा अनेषणीय जान कर साधु साध्वी ग्रहण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिया णं परो णेया वइज्जा - आउसो त्ति! वा भइणि त्ति वा आहर एयं वत्थं सिणाणेण वा, कक्केण वा, लोद्धेण वा, वण्णेण वा, चुण्णेण वा, पउमेण वा आघंसित्ता वा पघंसित्ता वा समणस्स णं दाहामो एयप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोइज्जा, आउसो त्ति वा, भइणि त्ति वा! मा एयं तुमं वत्थं सिणाणेण वा जाव पघंसाहि वा अभिकंखसि मे दाउं? एमेव दलयाहि, से सेवं वयंतस्स परो सिणाणेण वा पघंसित्ता दलइज्जा, तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - सिणाणेण - स्नानादि सुगंधित द्रव्यों से, **आघंसित्ता** - घर्षण करके।

भावार्थ - कदाचित् गृहस्थ-गृहस्वामी घर के किसी सदस्य से इस प्रकार कहे कि - हे आयुष्मन् या बहन! वह वस्त्र लाओ उसे हम धो कर सुगंधित द्रव्यों से घर्षित कर साधु साध्वी को देंगे? यह सुन कर साधु साध्वी उसे ऐसा करने से मना करे। साधु साध्वी के मना करने पर भी यदि वह गृहस्थ वस्त्र को धोकर, सुगंधित द्रव्यों से प्रघर्षित करके देवे तो तथाप्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से णं परो णेया वइज्जा - आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा आहर एयं वत्थं सीओदग वियडेण वा उसिणोदग वियडेण वा उच्छोलित्ता वा पहोलित्ता वा समणस्स णं दाहामो एयप्पगारं णिग्घोसं तहेव णवरं मा एयं तुमं वत्थं सीओदग वियडेण वा उसिणोदग वियडेण वा उच्छोलेहि वा पहोलेहि वा, अभिकंखसि मे दाउं, सेसं तहेव जाव णो पडिगाहिज्जा॥ से णं परो णेया वइज्जा आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा आहरेयं वत्थं कंदाणि वा जाव हरियाणि वा विसोहित्ता समणस्स णं दाहामो एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म जाव भइणि त्ति वा, मा एयाणि तुमं कंदाणि वा जाव विसोहेहि णो खलु मे कप्पइ एयप्पगारं वत्थं पडिग्गाहित्तए। से सेवं वयंतस्स परो कंदाणि वा जाव विसोहित्ता दलइज्जा तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - उच्छोलित्ता - उत्क्षालन कर अर्थात् एक बार धो कर, **पहोलेत्ता** - प्रक्षालन कर अर्थात् बार-बार धो कर, **विसोहित्ता**-विशुद्ध कर अर्थात् साफ कर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - वह गृहस्थ-गृहस्वामी यदि घर के किसी भी व्यक्ति को कहे कि - हे आयुष्मन् या बहिन! वह वस्त्र लाओ, हम उसे शीतल जल से या उष्ण जल से उत्क्षालन करके अर्थात् एक बार धो कर तथा प्रक्षालन करके अर्थात् बार-बार धो कर साधु साध्वी को देंगे। इस प्रकार के शब्द सुन कर साधु साध्वी उसे ऐसा करने के लिए मना करे और कहे कि यदि तुम मुझे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो। मना करने पर भी यदि गृहस्थ उस वस्त्र को ठंडे या गर्म जल से धोकर देना चाहे तो उसे अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे। इसी प्रकार गृहस्थ उस वस्त्र को कंद से यावत् हरी (वनस्पति) से विशुद्ध करके देना चाहे और मना करने पर भी वह क्रिया करे तो उस वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे और कहे कि इस प्रकार का वस्त्र ग्रहण करना मुझे नहीं कल्पता है।

सिया से परो णेया वत्थं णिसिरिज्जा, से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसो इ वा, भइणि इ वा तुमं चेव णं संतियं वत्थं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जिस्सामि केवली बूया आयाणमेयं, वत्थंतेणं उबद्धे सिया कुंडले वा, गुणे वा, हिरण्णे वा, सुवण्णे वा, मणी वा जाव रयणावली वा पाणे वा, बीए वा, हरिए वा, अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा जाव जं पुव्वामेव वत्थं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **णिसिरिज्जा** - देवे, **अंतोअंतेणं** - चारों ओर से, **पडिलेहिज्जिस्सामि**- प्रतिलेखना करूँगा, **वत्थंतेण**-वस्त्र के अन्त में, **गुणे**-धागा-डोरा, **रयणावली** - रत्नावली-रत्नों की माला।

भावार्थ - कदाचित् वह गृहस्थ साधु साध्वी को वस्त्र देवे तो उससे कहे कि हे आयुष्मन् ! मैं तुम्हारे इस वस्त्र की चारों ओर से प्रतिलेखना करूँगा अर्थात् इसे अंदर बाहर चारों ओर से अच्छी तरह से देखूंगा, क्योंकि बिना प्रतिलेखन किये वस्त्र लेने को केवली भगवान् ने कर्म बंधन का कारण कहा है। कदाचित् उस वस्त्र के अंत में, सिरे पर कुण्डल, डोरा, चांदी, सोना, मणि यावत् रत्नावली आदि बंधी हुई हो अथवा प्राणी, बीज या हरी वनस्पति बंधी हो। अतः तीर्थंकरों ने साधु साध्वियों के लिये पहले ही यह आदेश दे रखा है कि वह वस्त्र को चारों ओर से प्रतिलेखना करके ग्रहण करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्पष्ट किया गया है कि साधु साध्वी सभी दोषों से रहित निर्दोष वस्त्र को अच्छी तरह देख कर ग्रहण करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'**तुमं चेव णं संतियं वत्थं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जिस्सामि**' का आशय इस प्रकार है - 'तुम्हारे ही इस वस्त्र को अंदर बाहर चारों ओर से खोलकर भलीभांति देखूँगा।' अर्थात् मैं प्रतिलेखन करत हूँ तब तक यह वस्त्र तुम्हारे स्वामित्व का या तुम्हारा है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा सअंडं जाव संताणगं तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं अणलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं रोइज्जंतं ण रुच्चइ तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण वत्थं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं रोइज्जंतं रुच्चइ तहप्पगारं वत्थं फासुयं जाव पडिग्गाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **संताणगं** - मकडी के जाले आदि से युक्त, **अथिरं** - अस्थिर, **अधुवं** - अध्रुव **अधारणिज्जं** - धारण करने के अयोग्य, **रोइज्जंतं** - रुचि को देख कर, **रुच्चइ** - रुचता है।

भावार्थ - साधु या साध्वी अण्डों से युक्त यावत् मकडी के जाले आदि से युक्त तथाप्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे। यदि कोई वस्त्र अण्डों और मकडी के जालों आदि से रहित है परन्तु अभीष्ट कार्य की सिद्धि में असमर्थ है अस्थिर है या जीर्ण शीर्ण है या गृहस्थ ने उस वस्त्र को थोडे काल के लिए देना स्वीकार किया है, धारण करने के अयोग्य है, दाता उसे देने की पूरी रुचि नहीं रखता है ऐसे वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी यदि जाने कि यह वस्त्र अण्डों से रहित यावत् मकडी के जालों से रहित, अभीष्ट कार्य करने में समर्थ, स्थिर ध्रुव-जिसकी साधु को सदा के लिए आज्ञा दे दी गई हो, धारण करने के योग्य तथा दाता की देने की रुचि को देख कर साधु के लिए भी कल्पनीय हो तो तथा प्रकार के वस्त्र को प्रासुक और एषणीय जान कर मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - '**अधारणिज्जं**' पद की व्याख्या करते हुए टीकाकार का कहना है कि लक्षण हीन उपधि को धारण करने से ज्ञान, दर्शन, और चारित्र का उपघात होता है। जो अप्रशस्त हो, खंजन आदि के चिह्न (धब्बे) जिस पर अंकित हो ऐसे वस्त्र 'लक्षणहीन' कहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं। टीका में इनका विस्तृत वर्णन किया है। **अणलं, अथिरं, अधुवं** और **अधारणिज्जं** इन चार पदों के १६ भंग बनते हैं उनमें १५ भंग अशुद्ध माने गये हैं और अंतिम भंग शुद्ध माना गया है। कुछ प्रतियों में '**रोइज्जंतं**' के स्थान पर '**देइज्जंतं**' और कुछ प्रतियों में '**चइज्जंतं**' पाठ भी मिलता है।

प्रस्तुत सूत्र में आये हुए "**रोइज्जंतं ण रुच्चइ**" का आशय इस प्रकार है - रुचि की जाने पर भी रुचि नहीं होती है अथवा इस प्रकार उपर्युक्त चारों (**अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं**) विशेषताओं से युक्त प्रशस्त वस्त्र रुचि कर एवं देय होने पर भी दाता की रुचि न हो अथवा साधु को लेना पसंद या कल्पनीय न हो।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो णवए मे वत्थे त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा जाव पघंसिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो णवए मे वत्थे त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सीओदग वियडेण वा उसिणोदग वियडेण वा जाव पहोइज्जा॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा दुब्भिगंधे मे वत्थेत्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा तहेव सीओदग वियडेण वा उसिणोदग वियडेण वा आलावओ॥ १४७॥

कठिन शब्दार्थ - **णवए** - नवीन।

भावार्थ - "मेरे पास नवीन वस्त्र नहीं है" ऐसा विचार कर साधु साध्वी पुराने वस्त्र को सुगंधित द्रव्य आदि से आघर्षित-प्रघर्षित नहीं करे और शीतल जल से या उष्ण जल से धोने का भी प्रयत्न नहीं करे। इसी प्रकार दुर्गन्ध युक्त वस्त्र को भी सुगंधित करने की दृष्टि से जल आदि से नहीं धोवे। यह आलापक भी पूर्ववत् ही है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विभूषा के लिए साधु-साध्वी को वस्त्रादि धोने एवं उन्हें सुगंधित बनाने का निषेध किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा वत्थं आयावित्तए वा पयावित्तए वा, तहप्पगारं वत्थं णो अणंतरहियाए पुढवीए णो ससिणिद्धाए पुढवीए जाव संताणए आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा वत्थं आयावित्तए वा पयावित्तए वा तहप्पगारं वत्थं थूणंसि वा गिहेलुयंसि वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसुयालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरे तहप्पगारे अंतलिक्खजाए दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले णो आयाविज्ज वा णो पयाविज्ज वा॥

कठिन शब्दार्थ - **अणंतरहियाए** - सचित्त (आर्द्र) पृथ्वी पर, **संताणए** - मकडी के जाले आदि से युक्त स्थान पर, **थूणंसि** - स्थूणा-स्तंभ खूंटी आदि पर, **गिहेलुयंसि** - घर की देहली (थली-थलकन) पर, **उसुयालंसि** - ऊखल पर, **कामजलंसि** - स्नानपीठ-चौकी पर, **अंतलिक्खजाए** - अंतरिक्षजात-अंतरिक्षस्थान पर, **दुब्बद्धे** - दुर्बद्ध-अच्छी तरह से बंधा हुआ नहीं है, **दुण्णिक्खित्ते** - दुर्निक्षिप्त-जो अच्छी तरह से भूमि पर स्थापित न किया गया हो, **अणिकंपे** - अनिष्कंप-निश्चल नहीं, **चलाचले** - चलाचल।

भावार्थ - वह साधु या साध्वी यदि वस्त्र को धूप में सूखाना चाहे तो वह वस्त्र को सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध पृथ्वी पर, तथा ऊपर से सचित्त मिट्टी गिरती हो ऐसी पृथ्वी पर, सचित्त शिला पर, सचित्त मिट्टी के ढेले यावत् मकडी के अण्डों और जालों से युक्त जमीन पर न सूखावे। वस्त्र को स्तंभ, खूटी आदि पर, घर की देहली (थली-थलकन) पर या ऊखल पर, स्नान की चौकी पर तथा अन्य तथाप्रकार के अंतरिक्ष भूमि से ऊँचे स्थान पर जो दुर्बद्ध-भलीभांति बांधा हुआ नहीं है, दुर्निक्षिप्त-जो अच्छी तरह से भूमि पर स्थापित न किया गया हो तथा कंपनशील और चलाचल हो, वहाँ वस्त्र को आताप या परिताप न दे अर्थात् एक बार सूखावे नहीं या बारबार सूखावे नहीं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा वत्थं आयावित्तए वा पयावित्तए वा तहप्पगारं वत्थं कुलियंसि वा भित्तंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाए जाव णो आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा वत्थं आयावित्तए वा पयावित्तए वा तहप्पगारं वत्थं खंधंसि वा मंचंसि-मालंसि-पासायंसि-हम्मियतलंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाए जाव णो आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा॥ से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे झाम थंडिलंसि वा जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव वत्थं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ १४८॥

॥ वत्थेसणस्स पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **कुलियंसि** - घर की दीवार पर, **भित्तंसि** - नदी के तट पर, **सिलंसि** - शिला पर, **लेलुंसि**- शिला खंड पर, **अहे**-अथ, **झामथंडिलंसि**-दग्ध अर्थात् अचित्त बनी हुई भूमि पर।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि वस्त्र को धूप में सूखाना चाहे तो घर की दीवार पर, नदी के तट पर, शिला पर, शिला खंड पर, स्तंभ पर, मंच पर, माले पर, प्रासाद और प्रासाद विशेष पर अथवा अन्य इसी प्रकार के अंतरिक्ष जात-ऊंचे स्थानों पर जो कि दुर्बद्ध, दुनिक्षिप्त, कंपित एवं चलाचल हो वहाँ पर नहीं सूखावें। यदि सूखाना हो तो वस्त्र को लेकर एकान्त स्थान में जाए, एकान्त स्थान में जाकर जो भूमि अग्नि दग्ध हो यावत् इसी प्रकार की अन्य निरवद्य निर्दोष अचित्त भूमि की प्रतिलेखना और प्रमार्जना कर के यतना पूर्वक वस्त्र को सूखाए।

यही साधु साध्वी का समग्र-संपूर्ण आचार है जिसका पालन करने के लिये सदा यत्नशील रहे- ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीवादि युक्त सचित्त स्थान एवं ऊँचे स्थानों पर वस्त्र को सूखाने का निषेध किया है क्योंकि ऐसे स्थानों पर हवा के झोकों से वस्त्र के गिरने या उसके हिलने डूलने से वायुकायिक एवं अन्य जीवों की विराधना होने की संभावना रहती है। अतः संत-सती को ऐसे ऊँचे स्थानों पर वस्त्र नहीं सूखाना चाहिए, जो अच्छी तरह से बन्धा हुआ नहीं है, निश्चल नहीं है, चलायमान है। स्पष्ट है कि साधु साध्वी को प्रासुक एवं निर्दोष भूमि पर ही वस्त्र सूखाने चाहिये ताकि किसी भी प्राणी की विराधना न हो।

उपर्युक्त सूत्रों में बहुत दिनों तक वस्त्र धोने के साधु-साध्वियों के लिए निषेध किया गया है। एक-दो दिन के लिए नहीं तथा अंतिम के कुछ सूत्रों में वस्त्रों को सूखाने की विधि भी बताई है। इन आगम पाठों से यह स्पष्ट होता है कि साधु-साध्वी आवश्यकता होने पर आगमोक्त विधि निषेधों का ध्यान रखते हुए वस्त्रों को धो सकते हैं।

॥ पांचवें अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांचवें अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

पांचवें अध्ययन के प्रथम उद्देशक में वस्त्र ग्रहण करने की विधि बताई गई है। आगमकार इस दूसरे उद्देशक में वस्त्र धारण करने की विधि का उल्लेख करते हुए फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा, अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारिज्जा णो धोइज्जा, णो रइज्जा, णो धोयरत्ताइं वत्थाइं धारिज्जा अपलिउंचमाणे गामंतरेसु ओमचेलिए, एयं खलु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

कठिन शब्दार्थ - **अहापरिग्गहियाइं** - यथापरिगृहीत, **धोयरत्ताइं** - धोये और रंगे हुए, **अपलिउंचमाणे** - गोपन नहीं करते हुए, **ओमचेलिए** - असार (साधारण) वस्त्र अथवा अल्प वस्त्रधारी।

भावार्थ - भगवान् द्वारा दी गई आज्ञा के अनुरूप साधु साध्वी एषणीय और निर्दोष वस्त्र की याचना करे और जैसे भी वस्त्र मिले उन्हें धारण करे। परन्तु विभूषा के लिए उन वस्त्रों को न धोएँ और न रंगे तथा धोए हुए और रंगे हुए वस्त्रों को धारण भी नहीं करे। ग्रामादि में वस्त्रों को नहीं छिपाते हुए असार (साधारण) और अल्प वस्त्रों को धारण कर सुख पूर्वक विचरण करे। वस्त्रधारी मुनि का यही सम्पूर्ण आचार है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि - साधु साध्वी को प्रभु आज्ञा के अनुसार जिस रूप में निर्दोष वस्त्र प्राप्त हुआ है उसी रूप में उसे ग्रहण करें। विभूषा के लिए साधु वस्त्र को धोए एवं रंगे नहीं। कुछ वस्त्रों का रंग स्वाभाविक मटमैला या पीला होने से उन्हें धारण करने में कोई दोष नहीं है। रंगने का आशय नील, टीनोपोल आदि द्रव्यों से अच्छा चमकीला बनाना होता है। क्योंकि वस्त्र का उपयोग केवल लज्जा ढकने व शीतादि से बचने के लिए होता है न कि शारीरिक विभूषा के लिए। साधु की साधना शरीर व वस्त्रों को सुन्दर बनाने के लिए नहीं अपितु आत्मा को स्वच्छ निर्मल और पूर्ण स्वतंत्र बनाने के लिए है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिउकामे सव्वं चीवरमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा, एवं बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा गामाणुगामं वा दूइज्जिज्जा। अह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुण एवं जाणिज्जा तिव्वदेसियं वा वासं वासमाणं पेहाए जहा पिंडेसणाए णवरं सव्वं चीवरमायाए॥

कठिन शब्दार्थ - **चीवरं** - वस्त्र को, **आयाए** - लेकर, **विहारभूमिं** - विहार-स्वाध्याय भूमि, **वियारभूमिं** - वियार-मल मूत्र त्यागने की भूमि।

भावार्थ - वह साधु अथवा साध्वी आहारादि के लिये गृहस्थ के घर में जाते समय अपने वस्त्र साथ में लेकर उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे। इसी प्रकार वसति (उपाश्रय) आदि से बाहर विहार-स्वाध्याय करने की भूमि में अथवा शौचार्थ स्थंडिल भूमि-मल आदि का त्याग करने की भूमि में अथवा ग्रामानुग्राम विहार करते समय अपने सभी वस्त्रों को साथ लेकर ही निकले। यदि वह यह जाने कि तीव्र वर्षा होती दिखाई दे रही है यावत् तिरछे उडने वाले त्रस प्राणी गिर रहे हैं तो यह सब देख कर साधु वैसा ही आचरण करे जैसा पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है। इतनी विशेषता है कि वह अपने सभी वस्त्रों को साथ ले कर जाए।

विवेचन - टीकाकार ने बतलाया है कि ये विधान जिनकल्पी मुनि के लिए है किन्तु मूल सूत्र में '**वत्थधारिस्स**' यह विशेषण दिया है इसलिए स्थविर कल्पी के लिए भी समझने में बाधा नहीं है। यहाँ पहले सूत्र में गोचरी (भिक्षा), स्वाध्याय और शौच तथा ग्रामानुग्राम विहार के लिए जाते आते समय सभी वस्त्र साथ में लेकर जाने का विधान है। दूसरे सूत्र में अत्यन्त वर्षा हो रही हो, धूँअर पड़ रही हो, आँधी या तूफान के कारण तेज हवा चल रही हो, त्रसप्राणी इधर-उधर गिर रहे हों उस समय वस्त्र साथ में लेकर जाने का विधान नहीं है और यहाँ तक कि उपाश्रय से बाहर निकलने का भी निषेध है। ये दोनों विधान परस्पर सापेक्ष हैं। इनमें आत्म-विराधना और प्राणी विराधना की संभावना से विधि निषेध हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा एगइओ मुहुत्तगं मुहुत्तगं पाडिहारियं बीयं वत्थं जाइज्जा जाव एगाहेण वा दुयाहेण वा तिया चउ पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छिज्जा, तहप्पगारं वत्थं णो अप्पणा गिण्हिज्जा, णो अण्णमण्णस्स दिज्जा, णो पामिच्चं कुज्जा, णो वत्थेण वत्थपरिणामं करिज्जा, णो परं उवसंकमित्ता एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! अभिकंखसि वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा? थिरं वा संतं णो पलिच्छिंदिय पलिच्छिंदिय परिट्ठविज्जा तहप्पगारं वत्थं ससंधियं वत्थं तस्स चेव णिसिरिज्जा णो अत्ताणं साइज्जिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **मुहुत्तगं** - मुहूर्त्त मात्र का, **पाडिहारियं** - प्रातिहारिक, **विप्पवसिय**- ठहर कर, **पलिच्छिंदिय** - छेदन करके, **ससंधियं** - ससंधित-जोड़ा हुआ।

भावार्थ - कोई साधु साध्वी मुहूर्त्त आदि नियत काल के लिये किसी अन्य साधु साध्वी से प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करता है और एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन अथवा पांच दिन तक अन्य किसी ग्रामादि में निवास कर वापिस आता है और वह वस्त्र उपहत (खराब) हो जाता है तथा वह साधु जिसका वह वस्त्र था लेना स्वीकार नहीं करे तो उस वस्त्र को परस्पर न देवे, उधार भी नहीं करे और न अदला बदली करे तथा न ही अन्य किसी के पास जाकर यह कहे कि आयुष्मन् श्रमण! आप इस वस्त्र को ले लो। वस्त्र के दृढ़ होने पर उसके टुकड़े टुकड़े करके परठे भी नहीं, किन्तु उपहत वस्त्र उसी को दे दे। स्वयं न भोगे।

विवेचन - जो लेकर पुनः उसी को दिया जाए उसे 'प्रातिहारिक' कहते हैं। प्रातिहारिक वस्त्र यदि फट गया है या मैला हो गया है तो वह वस्त्र का स्वामी उस वस्त्र को उपहत करने वाले उसी साधु को दे दे।

से एगइओ तहप्पगारं णिग्घोसं सुच्चा णिसम्म जे भयंतारो तहप्पगाराणि वत्थाणि ससंधियाणि मुहुत्तगं मुहुत्तगं जाइत्ता जाव एगाहेण वा जाव पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छंति तहप्पगाराणि वत्थाणि णो अप्पणा गिण्हंति णो अण्णमण्णस्स दलयंति अणुवयंति, तं चेव जाव णो साइज्जंति बहुवयणेण भाणियव्वं से हंता अहमवि मुहुत्तगं पाडिहारियं वत्थं जाइत्ता जाव एगाहेण वा जाव पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छिस्सामि, अवियाइं एयं ममेव सिया माइट्ठाणं संफासे णो एवं करिज्जा॥ १५०॥

कठिन शब्दार्थ - **बहुवयणेण** - बहुवचन से, **माइट्ठाणं** - मातृ स्थान को, माया कपट को।

भावार्थ - कोई साधु साध्वी इस प्रकार के शब्द को सुन कर अर्थात् अमुक साधु अमुक साधु से कुछ समय के लिए वस्त्र मांग कर ले जाता है और एक दिन से लेकर पांच दिन तक किसी ग्राम में निवास करके आता है तब वह वस्त्र उपहत हो जाने पर वह उसे ग्रहण नहीं करता है अपितु उसी को दे देता है। बहुवचन-बहुत से साधुओं के संबंध में भी इसी तरह समझना चाहिए। ऐसा सुन कर वस्त्र हड़पने की भावना से यह विचार करे कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि मैं भी मुहूर्त्त आदि का उद्देश्य रख कर इनसे प्रातिहारिक वस्त्र की याचना कर एक दिन यावत् पांच दिन पर्यन्त किसी अन्य ग्रामादि में निवास कर वापस लौट जाऊँ जिससे वह वस्त्र उपहत हो जाने से मेरा हो जायेगा। इस प्रकार विचार कर यदि साधु साध्वी प्रातिहारिक वस्त्र को ग्रहण करे तो उसे मातृस्थान का स्पर्श होता है अर्थात् माया का दोष लगता है एवं साध्वाचार का उल्लंघन होता है। अतः साधु साध्वी ऐसा न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो वण्णमंताइं वत्थाइं विवण्णाइं करिज्जा, णो विवण्णाइं वत्थाइं वण्णमंताइं करिज्जा, अण्णं वा वत्थं लभिस्सामि त्ति कट्टु णो अण्णमण्णस्स दिज्जा, णो पामिच्चं कुज्जा णो वत्थेण वत्थपरिणामं कुज्जा, णो परं उवसंकमित्तु एवं वइज्जा-आउसंतो समणा! अभिकंखसि मे वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा? थिरं वा णं संतं णो पलिच्छिंदिय पलिच्छिंदिय परिट्ठविज्जा, जहा मेयं वत्थं पावगं परो मण्णइ, परं च णं अदत्तहारी पडिपहे पेहाए तस्स वत्थस्स णियाणाए णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छिज्जा, जाव अप्पुस्सुए तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - विवण्णाइं - विवर्ण-खराब वर्ण वाला, **अदत्तहारी** - बिना दिये लेने वाला-चोर, **पडिपहे** - प्रतिपथ-मार्ग में आते हुए को, **अप्पुस्सुए** - अल्पोत्सुक-राग द्वेष से रहित।

भावार्थ - साधु या साध्वी सुन्दर वर्ण वाले वस्त्रों को विवर्ण-खराब वर्ण वाला न करे और विवर्ण (असुन्दर) वस्त्रों को वर्ण युक्त न करे तथा मैं अन्य वस्त्र प्राप्त कर लूंगा ऐसा विचार करके अपना पुराना वस्त्र किसी अन्य साधु को न दे और न किसी से उधार वस्त्र ले और न ही अपने वस्त्र की परस्पर अदला बदली भी करे। अन्य साधु के पास जाकर इस प्रकार न कहे- हे आयुष्मन् श्रमण ! क्या तुम मेरे वस्त्र को धारण करना या पहनना चाहते हो? मेरे इस वस्त्र को लोग अच्छा नहीं समझते हैं अतः वस्त्र के सुदृढ़ होने पर उसके खण्ड खण्ड (टुकड़े-टुकड़े) करके परठे भी नहीं। चोर को मार्ग में सामने आते हुए देख कर उस वस्त्र की रक्षा करने के लिए उनसे डर कर उन्मार्ग से गमन न करे यावत् राग द्वेष रहित होकर यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणिज्जा इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा वत्थपडियाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संपिंडिया गच्छिज्जा णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छिज्जा जाव गामाणुगामं दूइज्जिज्जा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा पडियागच्छेज्जा ते णं आमोसगा एवं वइज्जा-आउसंतो ! आहरेयं वत्थं देहि, णिक्खिवाहि जहा इरियाए णाणत्तं वत्थं पडियाए।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ १५१॥

॥ वत्थेसणा समत्ता॥

कठिन शब्दार्थ - **विहं** - अटवी, **संपिंडिया** - एकत्रित होकर, **णिक्खिवाहि** - रख दे।

भावार्थ - ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए मार्ग में कोई अटवी आ जाय और अटवी को पार करते समय बहुत से चोर वस्त्र छीनने के लिए एकत्रित होकर आए हों तो साधु-साध्वी उनसे डर कर उन्मार्ग में गमन न करें। यदि वे चोर कहें कि हे आयुष्मन् श्रमण! यह वस्त्र हमें दे दो, यहां रख दो? तब जैसा ईर्याध्ययन में वर्णन किया है उसी प्रकार करे। इतना विशेष है कि यहां पर वस्त्र के विषय में समझना।

यही साधु और साध्वी का समग्र-संपूर्ण आचार है। अतः ज्ञान, दर्शन, और चारित्र तथा पांच समितियों से युक्त मुनि विवेक पूर्वक आत्म-साधना में संलग्न रहे। ऐसा मैं कहता हूँ अर्थात् श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि - हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आगमकार ने स्पष्ट कर दिया है कि साधु साध्वी सदैव निर्भय हो कर विचरे। मार्ग में यदि चोर मिल जाए और वे वस्त्र मांगे तो साधु साध्वी वस्त्रों को जमीन पर रख दे, उन्हें हाथ में न दे और उससे करुणा पूर्वक याचना भी न करे। यदि अवसर देखे तो उन्हें धर्म का उपदेश देकर सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न करे। वस्त्र केवल संयम साधना में सहायक है अतः उन पर किसी प्रकार का ममत्व न रखे।

॥ पांचवें अध्ययन का दूसरा उद्देश्यक समाप्त॥

❀ वस्त्रैषणा नामक पांचवां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पात्रैषणा नामक छठा अध्ययन

प्रथम उद्देशक

आगमकार ने प्रथम अध्ययन में आहार ग्रहण करने की विधि का, दूसरे अध्ययन में आहार करने एवं ठहरने के स्थान का, तीसरे अध्ययन में ईर्यासमिति का, चौथे अध्ययन में भाषा समिति और पांचवें अध्ययन में कैसा वस्त्र ग्रहण करना चाहिये, इसका वर्णन किया है। अब इस छठे अध्ययन में आहार ग्रहण करने के लिये कैसा पात्र होना चाहिये, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा पायं एसित्तए, से जं पुण पायं जाणिज्जा तंजहा - अलाउयपायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापायं वा तहप्पगारं पायं जे णिग्गंथे तरुणे जाव थिरसंघयणे से एगं पायं धारिज्जा णो बिइयं। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा परं अद्धजोयणमेराए पायपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - पायं - पात्र को, **अलाउयपायं** - तुंबे का पात्र, **दारुपायं** - लकडी का पात्र, **मट्टियापायं** - मिट्टी का पात्र, **अद्धजोयणमेराए** - आधे योजन की मर्यादा से, **पायपडियाए** - पात्र ग्रहण की प्रतिज्ञा से।

भावार्थ - साधु या साध्वी जब कभी पात्र की गवेषणा करनी चाहें तो सबसे पहले यह जाने कि तुंबे का पात्र, काष्ठ का पात्र और मिट्टी का पात्र साधु ग्रहण कर सकता है। उक्त प्रकार के पात्र ग्रहण करने वाला साधु यदि तरुण है, बलीष्ठ है, स्वस्थ है, स्थिर संहनन वाला है तो वह एक जाति का पात्र ही धारण करे, दूसरा नहीं। वह अर्द्ध योजन की मर्यादा से उपरान्त पात्र लेने के लिए जाने का मन में संकल्प भी न करे।

विवेचन - साधु या साध्वी तीन प्रकार के पात्र में से किसी एक प्रकार के पात्र ग्रहण कर सकते हैं - १. तुंबे के २. लकडी के और ३. मिट्टी के। तरुण नीरोग दृढ संहनन वाले साधु के लिए जो एक पात्र का विधान किया है वह उपर्युक्त तीन प्रकार के पात्रों में से किसी भी एक जाति के पात्र को रखना समझना चाहिये अर्थात् संख्या की दृष्टि से एक पात्र का विधान नहीं समझ कर जाति की अपेक्षा एक पात्र का विधान समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण पायं जाणिज्जा अस्सिं (अस्सं) पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं जहा पिंडेसणाए चत्तारि आलावगा पंचमे बहवे समणमाहणा पगणिय पगणिय तहेव॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अस्संजए भिक्खुपडियाए बहवे समण माहणा वत्थेसणाऽऽलावओ। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण पायाइं जाणिज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं तंजहा - अयपायाणि वा तउपायाणि वा तंबपायाणि वा सीसगपायाणि वा हिरण्णपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा रीरिअपायाणि वा हारपुडपायाणि वा मणिकायकंसपायाणि वा संखसिंगपायाणि दंतपायाणि वा चेलपायाणि वा सेलपायाणि वा चम्मपायाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं पायाइं अफासुयाइं जाव णो पडिगाहिज्जा॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण पायाइं जाणिज्जा विरूवरूवाइं महद्धणबंधणाइं तंजहा - अयबंधणाणि वा जाव चम्मबंधणाणि वा अण्णयराइं तहप्पगाराइं महद्धणबंधणाइं अफासुयाइं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - अयपायाणि - लोहे के पात्र, **तउपायाणि** - रांगे के पात्र, **तंबपायाणि** - तांबे के पात्र, **सीसगपायाणि** - सीसे के पात्र, **हिरण्णपायाणि** - चांदी के पात्र, **सुवण्णपायाणि** - सोने के पात्र, **रीरिअपायाणि** - पीतल के पात्र, **हारपुडपायाणि** - लोहे विशेष (स्टील) के पात्र, **मणिकायकंसपायाणि** - मणि, कांच और कांसी के पात्र, **संखसिंगपायाणि** - शंख और शृंग के पात्र, **दंतपायाणि** - दांत के पात्र, **चेलपायाणि** - वस्त्र के थैलीनुमा पात्र, **सेलपायाणि** - पत्थर के पात्र, **चम्मपायाणि** - चर्म के पात्र (चमड़े की कुप्पी जैसा)।

भावार्थ - साधु या साध्वी पात्र के विषय में जाने कि साधु साध्वी को देने की प्रतिज्ञा से किसी गृहस्थ ने एक साधर्मी साधु साध्वी का उद्देश्य रख कर अर्थात् साधु साध्वी के निमित से प्राणी भूत जीव और सत्त्व का समारंभ करके पात्र बनवाया है, शेष वर्णन जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में किया गया है उसी तरह चार आलापक जानने चाहिये। पांचवें आलापक में बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि के लिए अर्थात् उनका उद्देश्य रख कर पात्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनाया है शेष वर्णन जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में आहार के विषय में किया गया है उसी प्रकार यहाँ पात्र के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए। शेष वर्णन वस्त्रैषणा के आलापकों के समान पात्रैषणा के लिए भी समझना चाहिये।

साधु या साध्वी पात्र के विषय में ऐसा जाने कि जो पात्र नाना प्रकार के और बहुत मूल्य के हैं जैसे लोह पात्र, रांगे के पात्र, ताम्बे, सीसे, चांदी और सोने के पात्र, पीतल के पात्र, लोह विशेष के पात्र, मणि, कांच और कांसी के पात्र, शंख और श्रृंग के पात्र, दांत के पात्र, वस्त्र के पात्र, पत्थर और चर्म के पात्र दूसरे भी इसी प्रकार के पात्र जो बहुमूल्य हैं उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जान कर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

यदि काष्ठ आदि के कल्पनीय पात्र पर लोहे स्वर्ण आदि के बहुमूल्य बन्धन लगे हों तब भी साधु साध्वी उस पात्र को अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे।

विवेचन - आहार, वस्त्र आदि की तरह साधु साध्वी को वह पात्र भी ग्रहण नहीं करना चाहिए जो उनके लिए बनाया गया है। साधु साध्वी को आधाकर्म आदि दोषों से रहित तुम्बे, काष्ठ एवं मिट्टी के पात्र ही ग्रहण करना चाहिये। इन तीन जाति के पात्र के सिवाय दूसरी जाति के पात्र यथा-प्लास्टिक या अन्य किसी प्रकार के पात्र ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि इस आगम में दूसरी जाति के पात्र ग्रहण करने का निषेध किया गया है।

इच्चेयाइं आययणाइं उवाइक्कम्म अह भिक्खू जाणिज्जा चउहिं पडिमाहिं पायं एसित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उद्दिसिय उद्दिसिय पायं जाइज्जा, तंजहा-अलाउयपायं वा, दारुपायं वा, मट्टियापायं वा तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाइज्जा जाव पडिगाहिज्जा। पढमा पडिमा १। अहावरा दोच्चा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पेहाए पायं जाइज्जा तंजहा-गाहावइं वा जाव कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोइज्जा, आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं पायं तंजहा - लाउयपायं वा जाव तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाइज्जा परो वा से दिज्जा जाव पडिगाहिज्जा। दोच्चा पडिमा २। अहावरा तच्चा पडिमा-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण पायं जाणिज्जा संगइयं वा वेजइयंतियं वा तहप्पगारं पायं सयं वा जाव पडिगाहिज्जा। तच्चा पडिमा ३। अहावरा चउत्था पडिमा - से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उज्झिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धम्मियं पायं जाइज्जा जाव अण्णे बहवे समणा माहणा जाव वणीमगा णावकंखंति तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाव पडिगाहिज्जा चउत्था पडिमा ४। इच्चेइयाणं चउण्हं पडिमाणं अण्णयरं पडिमं, जहा पिंडेसणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **संगइयं** - स्वांगिक-गृहस्थ का भोगा हुआ, **वेजइयंतियं** - दो या तीन पात्रों में बारी-बारी से भोजन किया जाता हो।

भावार्थ - ये सब पूर्वोक्त पात्र संबंधी दोषों के स्थान हैं। इनको छोड़ कर पात्र ग्रहण करना चाहिए।

साधु साध्वी यह जाने कि उसे चार प्रतिमाओं-अभिग्रह विशेषों से पात्र की गवेषणा करनी है। उन चार प्रतिमाओं में से पहली प्रतिमा है- साधु या साध्वी नाम लेकर पात्र की याचना करे जैसे कि-तुम्बे का पात्र, काष्ठ का पात्र, मिट्टी का पात्र, तथाप्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे यावत् ग्रहण करे। यह पहली प्रतिमा है। दूसरी प्रतिमा-साधु या साध्वी देख कर पात्र की याचना करे जैसे कि गृहपति यावत् काम करने वाले दास दासी आदि से वह पात्र देख कर इस प्रकार कहे-हे आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा भगिनी! क्या मुझे इन पात्रों में से कोई एक पात्र दोगे या दोगी? इस तरह पात्र की स्वयंमेव याचना करे अथवा बिना मांगे कोई देवे यावत् ग्रहण करे। यह दूसरी प्रतिमा है। तीसरी प्रतिमा-साधु या साध्वी स्वयं गृहस्थ के द्वारा उपभुक्त भोगे हुए पात्र या दो तीन ऐसे पात्र जिनमें खाद्य पदार्थ पड़े हो अथवा उनमें भोजन किया जा रहा हो। ऐसे तथाप्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ बिना मांगे देवे तो यावत् ग्रहण करे, यह तीसरी प्रतिमा है। चौथी प्रतिमा-साधु या साध्वी उज्झित धर्म वाले पात्र की याचना करे यावत् अन्य बहुत से शाक्यादि श्रमण जिसे नहीं चाहते तथाप्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ बिना मांगे देवे तो प्रासुक एवं एषणीय जान कर मिलने पर ग्रहण करे। यह चौथी प्रतिमा है। इन चार प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा को ग्रहण करे शेष वर्णन पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णित प्रतिमाओं की तरह जानना चाहिए।

विवेचन - तीसरी प्रतिमा में आये हुए '**संगइयं वा वेजइयंतियं वा**' शब्दों का अर्थ वृत्तिकार एवं चूर्णिकार ने इस प्रकार किया है - **संगइयं** - दाता के द्वारा परिभुक्त। (चूर्णि० दो या तीन पात्रों का गृहस्थ बारी बारी से उपयोग करता है, साधु के याचना करने पर एक पात्र देता है, ऐसे पात्र के लेने में दोष नहीं।) **वेजइयंतियं** - उसमें भोजन किया जा रहा है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा पात्र (चूर्णि० जिस पात्र में भोजन करके राजा आदि के उत्सव या मृत्युकृत्य पर खाद्य को रख कर या भूनकर छोड़ दिया जाता है, वह पात्र) वृत्तिकार के मत से **संगइयं** - दाता द्वारा उस पात्र में प्रायः स्वयं भोजन किया गया हो, वह स्वांगिक पात्र।

से णं एयाए एसणाए एसमाणं पासित्ता परो वइज्जा, आउसंतो समणा! एज्जासि तुमं मासेण वा जहा वत्थेसणाए। से णं परो णेया वइज्जा, आउसो त्ति वा, भइणि त्ति वा आहरेयं पायं तिल्लेण वा, घएण वा, णवणीएण वा, वसाए वा अब्भंगित्ता वा तहेव सिणाणाइ तहेव सीओदगाइं कंदाइं तहेव॥

कठिन शब्दार्थ - कंदाइं - कंदादि के विषय में।

भावार्थ - इस प्रकार पात्र की गवेषणा करते हुए साधु को देख कर यदि कोई गृहस्थ उसे कहे कि "आयुष्मन् श्रमण! इस समय तो तुम जाओ। एक मास के बाद यावत् कल या परसों तक आकर पात्र ले जाना आदि। शेष सारा वर्णन वस्त्रैषणा की तरह समझना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ साधु को देख कर अपने कौटुम्बिक जनों में से किसी पुरुष या स्त्री को बुला कर यह कहे कि आयुष्मन् या बहन! वह पात्र लाओ हम उस पर तेल, घृत, नवनीत या वसा आदि लगा कर साधु को देंगे। शेष स्नानादि शीतउदक तथा कंदमूल विषयक सारा वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन के समान जानना चाहिये।

से णं परो णेया वइज्जा "आउसंतो समणा! मुहुत्तगं मुहुत्तगं अच्छाहि जाव ताव अम्हे असणं वा उवकरिंसु वा उवक्खडिंसु वा तो ते वयं आउसो। सपाणं सभोयणं पडिग्गहगं दाहामो, तुच्छए पडिग्गहए दिण्णे समणस्स णो सुट्ठु साहु भवइ" से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा णो खलु मे कप्पइ आहाकम्मिए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, भुत्तए वा, पायए वा मा उवकरेहि मा उवक्खडेहि अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि से सेवं वयंतस्स परो असणं वा पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, उवकरित्ता उवक्खडित्ता सपाणं सभोयणं पडिग्गहगं दलइज्जा तहप्पगारं पडिग्गहगं अफासुयं जाव णो पडिग्गाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - तुच्छए - तुच्छ (खाली) **सुट्ठु** - अच्छा, **साहु** - श्रेष्ठ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - यदि कोई गृह नायक साधु साध्वी से इस प्रकार कहे कि-हे आयुष्मन् श्रमण! आप मुहूर्त्त पर्यंत यहीं ठहरें। जब तक हम अशनादि चारों प्रकार का आहार तैयार कर लेंगे अथवा उपसंस्कृत-बगार आदि देकर संस्कार युक्त बनाकर के आप के पात्र को भर देंगे क्योंकि साधु साध्वी को खाली पात्र देना अच्छा और उचित नहीं लगता। तब साधु साध्वी उसे इस प्रकार कहे कि-हे आयुष्मन् गृहस्थ! या भगिनी! मुझे आधाकर्मिक आहार पानी ग्रहण करना नहीं कल्पता। अतः मेरे लिए आहारादि को तैयार मत करो और उपसंस्कृत भी मत करो। यदि तुम मुझे पात्र देने की इच्छा रखते हो तो उसे ऐसे ही दे दो, साधु साध्वी के इस प्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ आहार आदि बना कर उससे पात्र को भर कर दे तो साधु साध्वी को उसे अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।

सिया से परो उवणित्ता पडिग्गहगं णिसिरिज्जा से पुव्वामेव आलोएज्जा आउसो त्ति वा भइणि त्ति वा तुमं चेव णं संतियं पडिग्गहगं अंतोअंतेणं पडिलेहिस्सामि, केवली बूया आयाणमेयं अंतो पडिग्गहगंसि पाणाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा अह भिक्खूणं एस पइण्णा जाव पुव्वामेव पडिग्गहगं अंतोअंतेणं पडिलेहिज्जा, सअंडाइं सव्वे आलावगा भाणियव्वा जहा वत्थेसणाए, णाणत्तं तिल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा सिणाणाइ जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय-पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव आमज्जिज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिएहिं सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ १५२॥

॥ पाएसणाज्झयणे पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **उवणित्ता** - लाकर, **संतियं** - विद्यमान।

भावार्थ - कदाचित् उस साधु साध्वी को गृहस्थ घर के भीतर से लाकर पात्र को देवे तो वह साधु साध्वी पहले ही उसे देखे और देख कर इस प्रकार कहे कि-हे आयुष्मन्! गृहस्थ! अथवा भगिनि। मैं तुम्हारे इस पात्र की अंदर बाहर चारों ओर से प्रतिलेखन करूँगा। क्योंकि केवली भगवान् ने बिना प्रतिलेखन किए पात्र लेने को कर्म बंधन का कारण बताया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। पात्र के भीतर कदाचित् क्षुद्र जीव जंतु हों अथवा बीज हो या हरी वनस्पति हो, इसलिए साधु साध्वियों को तीर्थंकरों की आज्ञा है कि पहले ही पात्र को भीतर और बाहर-चारों ओर से प्रतिलेखन करे अच्छी तरह से देखे। यदि वह अंडादि से युक्त हो तो उसे ग्रहण न करे। इत्यादि सभी आलापक कहने चाहिये। जैसे कि वस्त्रैषणा के विषय में कथन किया गया है उसी प्रकार पात्रैषणा के संबंध में जानना। इसमें इतना विशेष है कि - तैल से या घृत से अथवा नवनीत से वसा (चर्बी) से अथवा औषधि विशेष से या सुगंधित पदार्थों से यावत् अन्य किसी पदार्थ से पात्र संस्पर्शित हुआ हो तो तथाप्रकार की स्थंडिल भूमि में जाकर प्रतिलेखन कर अर्थात् भूमि को देख कर उसे प्रमार्जित कर यतना पूर्वक पात्र को साफ करे. यावत् धूप में सूखाए तक वस्त्रैषणा अध्ययन की तरह ही समझ लेना चाहिए।

यही साधु साध्वियों का समग्र आचार है। जो साधु साध्वी रत्नत्रयी से युक्त पांच समितियों से समित है वे इस आचार को पालने का यत्न करे। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

।। छठे अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त।।

छठे अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविट्ठे समाणे पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहगं अवहट्टु पाणे पमज्जिय रयं तओ संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा। केवली बूया आयाणमेयं अंतो पडिग्गहगंसि पाणे वा बीए वा हरिए वा परियावज्जिज्जा, अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा एस पइण्णा जाव जं पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहं अवहट्टु पाणे पमज्जियं रयं तओ संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा ॥ १५३ ॥

कठिन शब्दार्थ - रयं - रज को, परियावज्जिज्जा - नाश हो जायगा।

भावार्थ - साधु या साध्वी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाने से पहले अपने पात्र का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भलीभांति प्रतिलेखन करे। यदि पात्र में प्राणी आदि हों तो उन्हें निकाल कर यतना पूर्वक एकान्त में छोड़ दे और रज (धूल) को प्रमार्जित करे। तत्पश्चात् साधु अथवा साध्वी आहार पानी के लिए उपाश्रय से बाहर निकले या गृहस्थ के घर में प्रवेश करे। केवली भगवान् कहते हैं कि - हे आयुष्मन् शिष्य ! प्रतिलेखन प्रमार्जन किये बिना पात्र ले जाना कर्म बंधन का कारण है। क्योंकि यदि पात्र में प्राणी-क्षुद्र जीव जंतु, बीज अथवा हरी तथा सचित्त रज आदि हो तो उनकी विराधना हो सकती है अतः साधु साध्वी को आहार पानी के लिए जाने से पूर्व पात्र का सम्यक्तया प्रतिलेखन प्रमार्जन कर लेना चाहिये तत्पश्चात् ही आहार के लिए यतना पूर्वक उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

विवेचन - जीवों की विराधना न हो इसके लिए प्रतिलेखन प्रमार्जन आवश्यक है। साधु-साध्वी सायंकाल को पात्र साफ करके बांध करके रखता है और प्रातः उनका प्रतिलेखन कर लेता है, फिर भी आहार पानी के लिए जाते समय पुनः प्रतिलेखन प्रमार्जन आवश्यक है। कभी कभी कोई क्षुद्र जीव जंतु या रज (धूल) आदि पात्र में प्रवेश कर जाय। यदि बिना देखे बिना पूंजे पात्र का उपयोग करे तो उसमें जीव विराधना संभव है। इसीलिए केवली भगवान् ने बिना प्रतिलेखन प्रमार्जन किए पात्र लेकर आहार पानी को जाना कर्म बंध का कारण बताया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविट्ठे समाणे सिया से परो आहट्टु अंतोपडिग्गहगंसि सीओदगं परिभाइत्ता णीहट्टु दलइज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहगं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा, से य आहच्च पडिग्गहिए सिया खिप्पामेव उदगंसि साहरिज्जा, से पडिग्गहमायाए पाणं परिट्ठविज्जा ससिणिद्धाए च णं भूमीए णियमिज्जा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदउल्लं वा ससिणिद्धं वा पडिग्गहं णो आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा। अह पुण एवं जाणिज्जा विगओदए मे पडिग्गहए छिण्णसिणेहे तहप्पगारं पडिग्गहं तओ संजयामेव आमज्जिज्ज वा जाव पयाविज्ज वा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं जाव पविसिउकामे पडिग्गहमायाए गाहा वइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा गामाणुगामं दूइज्जिज्जा तिव्वदेसियाए जहा बिइयाए वत्थेसणाए णवरं इत्थ पडिग्गहे।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जइज्जासि त्ति बेमि॥ १५४॥

॥ पाएसणा समत्ता॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतोपडिग्गहगंसि** - पात्र में, **परिभाइत्ता** - विभाग करके, **णीहट्टु** - निकाल कर, **ससिणिद्धाए** - स्निग्ध, **णियमिज्जा** - परठ दे, **आमज्जिज्ज** - प्रमार्जित करे, **पयाविज्ज** - धूप में सूखाए।

भावार्थ - गृहपति के घर में प्रवेश करते हुए साधु या साध्वी को कदाचित् कोई गृहस्थ घर के भीतर से बाहर लाकर अन्य किसी पात्र में सचित्त पानी को डाल कर दे तो तथाप्रकार के पात्र को जो कि पानी से भरा हुआ है गृहस्थ के हाथ में है या अन्य पात्र में है उसे अप्रासुक और अनेषणीय जान कर साधु साध्वी ग्रहण न करे। कदाचित् असावधानी से वह जल ग्रहण कर लिया हो तो साधु साध्वी शीघ्र ही उस पानी को डालने योग्य भाजन में डाल दे। यदि गृहस्थ पानी वापिस लेना न चाहे तो पानी युक्त पात्र को किसी एकान्त स्थान में ले जाकर पानी को निर्दोष स्थान पर परठ दे। साधु या साध्वी पानी को परठने के बाद जिससे पानी की बूंदे टपक रही हो अथवा जो पानी से गीला है उस पात्र को प्रमार्जित न करे यावत् धूप में नहीं सूखाए और जब इस प्रकार जाने कि मेरा पात्र पानी से रहित हो गया है और गीला भी नहीं है तो साधु उसे यतना पूर्वक प्रमार्जित करे यावत् धूप में सूखाए।

साधु या साध्वी जब आहार लेने के लिए गृहस्थ के घर में जाए अथवा स्थंडिल भूमि या स्वाध्याय भूमि में जाए तो अपने पात्र साथ में लेकर जाए। ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी पात्र को साथ में ही लेकर जाए। यदि थोड़ी बहुत वर्षा हो रही हो तो जैसा द्वितीय वस्त्रैषणा अध्ययन में वर्णन किया है उसी अनुसार समझना चाहिये। विशेष इतना ही है कि वहाँ सभी वस्त्रों को साथ में लेकर जाने का निषेध है जबकि यहाँ अपने सभी पात्रों को लेकर जाने का निषेध है।

यही साधु या साध्वी का समग्र आचार है। प्रत्येक साधु साध्वी को इसके पालन करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का सदैव यत्न करना चाहिये। ऐसा मैं कहता हूँ अर्थात् श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि - हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्पष्ट बताया गया है कि साधु या साध्वी सचित्त पानी को ग्रहण न करे और यदि कभी असावधानी से सचित्त पानी ग्रहण कर लिया हो तो उसे अपने उपयोग में नहीं लेवे और गृहस्थ को वापिस लौटा दे, यदि गृहस्थ वापिस लेना स्वीकार नहीं करे तो एकान्त स्थान में जाकर निर्दोष भूमि में परठ दे।

टीकाकार ने सचित्त पानी देने के चार कारण बताए हैं -

१. **गृहस्थ की अनभिज्ञता** - वह यह नहीं जानता हो कि साधु साध्वी सचित्त पानी लेते हैं या नहीं।

२. **शत्रुता** - साधु साध्वी को बदनाम करके उसे लोगों के सामने सदोष पानी ग्रहण करने वाला बताने की दृष्टि से।

३. **अनुकम्पा** - साधु साध्वी को प्यास से व्याकुल देख कर अचित्त जल न होने के कारण दया भाव से।

४. **विमर्षता** - किसी विचार के कारण उसे ऐसा करने को विवश होना पडा हो। गृहस्थ चाहे जिस परिस्थिति एवं भावना वश सचित्त पानी दे परन्तु साधु साध्वी को किसी भी परिस्थिति में सचित्त जल का उपयोग नहीं करना चाहिए।

वस्त्र आदि की तरह पात्र के संबंध में भी यह बताया गया है कि साधु साध्वी जब भी आहार पानी के लिए गृहस्थ के घर में जाए या शौच के लिए बाहर जाए या स्वाध्याय भूमि में जाए तो अपने पात्र साथ में लेकर जाए। इससे स्पष्ट होता है कि साधु साध्वी को बिना पात्र के कहीं नहीं जाना चाहिए।

उपर्युक्त सूत्र में **'से पडिग्गहमायाए पाणं परिट्ठविज्जा'** पाठ का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - गृहस्थ के यहाँ से मिट्टी आदि के अन्य पात्र की याचना करके उस पात्र सहित सचित्त पानी को परठ देवे। साधु के स्वयं के पास में रहे हुए पात्र को परठने का विधान यहाँ नहीं समझना चाहिये।

पूज्य बहुश्रुत गुरुदेव का इस सम्बन्ध में इस प्रकार फरमाना था - प्रस्तुत अध्ययन में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आये हुए "पाणं" शब्द का अर्थ - पानी, अर्थकार करते हैं ऐसा ही टीकाकार भी पानी जाचने का ही टीका में अर्थ करते हैं। यह उद्देशक भी पात्र याचना के लिए न होकर आहार पानी आदि के लिए साधु जावे तो पात्र व्यवस्था कैसे रखनी, इसके विषय में है। जैसे - साधु आहार पानी याचने के लिए जावे तो पात्रादि देख लेवे। पूंज लेवे। शीतोदक आ जावे और अगर दूसरी कोई व्यवस्था न हो तो शीतोदक का पात्र पानी सहित परठा देवे। अगर पानी की दूसरी व्यवस्था हो जावे किन्तु पात्र गीला हो तो उसको पौंछे नहीं। सूखावे नहीं। सूखने पर पौंछे एवं सूखावे। साधु गोचरी जावे, विहार करे, स्थंडिल जावे, स्वाध्याय के लिए जावे अपने सभी पात्र साथ में ले जावे। अगर वर्षा संभावनादि कारण हो तो न ले जावे। पात्र याचना का विधान प्रथम उद्देशक में आया है। इसमें पात्र व्यवस्था का विधान है। इस सूत्र के टीका के अर्थ में 'शीतोदक' करते हैं और मूल में **'तहप्पगार पडिग्गहं'** शब्द है। प्रोफेसर रवजीभाई देवराज कृत आचारांग के भाषांतर में इसी सूत्र का अर्थ करते हुए नीचे टिप्पण दिया है कि **'तहप्पगारं पडिग्गहं'** की जगह 'तहप्पगारं सीओदगं इति शुद्धः पाठः संभाव्यते।' ऐसा लिखा है और यह ठीक भी जंचता है। निश्चितता तो ज्ञानी जाने।

॥ छठे अध्ययन का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

❀ पात्रैषणा नामक छठा अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवग्रह प्रतिमा नामक सातवां अध्ययन

प्रथम उद्देशक

छठे अध्ययन में पात्रैषणा का वर्णन करने के बाद आगमकार इस सातवें अध्ययन में अवग्रह का वर्णन फरमाते हैं क्योंकि साधु साध्वी वस्त्र पात्र आदि उपकरण किसी गृहस्थ की आज्ञा से ही ग्रहण करते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से अवग्रह चार प्रकार का कहा गया है। सामान्य रूप से अवग्रह के पांच भेद इस प्रकार हैं - १. देवेन्द्र अवग्रह २. राज अवग्रह ३. गृहपति अवग्रह ४. शय्यातर अवग्रह और ५. साधर्मिक अवग्रह। प्रस्तुत अध्ययन में इन अवग्रहों का वर्णन करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

समणे भविस्सामि अणगारे अकिंचणे अपुत्ते अपसू परदत्तभोई पावं कम्मं णो करिस्सामि त्ति समुट्ठाए सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, से अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा णेव सयं अदिण्णं गिण्हिज्जा, णेवण्णेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा, अदिण्णं गिण्हंते वि अण्णे ण समणुजाणिज्जा, जेहिं वि सद्धिं संपव्वइए तेसिं पि जाइं छत्तगं वा मत्तगं वा दंडगं वा जाव चम्मछेयणगं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णविय अपडिलेहिय अपडिलेहिय अपमज्जिय अपमज्जिय णो उग्गिण्हिज्जा वा परिगिण्हिज्जा वा, तेसिं पुव्वामेव उग्गहं जाइज्जा अणुण्णविय पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव उग्गिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥ १५५॥

कठिन शब्दार्थ - **अकिंचणे** - अकिंचन-परिग्रह से रहित, **अपुत्ते** - अपुत्र-पुत्र आदि से रहित, **अपसू** - अपशु-पशुओं से रहित, **परदत्तभोई** - परदत्तभोजी-दूसरे का दिया हुआ भोजन करने वाला, **छत्तगं** - छत्र, **चम्मछेयणगं** - चर्मछेदक, **उग्गहं** - अवग्रह-आज्ञा विशेष।

भावार्थ - दीक्षित होते समय दीक्षार्थी प्रतिज्ञा करता है कि - मैं अनगार-घर से रहित, अकिंचन-परिग्रह से रहित, पुत्रादि संबंधियों से रहित, द्विपद चतुष्पदादि पशुओं से रहित एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परदत्तभोजी-दूसरे का दिया हुआ भोजन करने वाला श्रमण-तपस्वी साधु बनूंगा। मैं किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं करूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा में उद्यत होकर हे भगवन् ! मैं सर्व प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूं।

इस प्रतिज्ञा से साधु ग्राम और नगर यावत् राजधानी में प्रवेश करके बिना दिए हुए अदत्त पदार्थ को स्वयं ग्रहण न करे, दूसरों से ग्रहण न करावे और ग्रहण करने वाले का अनुमोदन भी न करे इतना ही नहीं किंतु जिनके साथ दीक्षित हुआ है या जिनके साथ रहता है उनके छत्र, दंड, मात्रक यावत् चर्मछेदनक आदि उपकरण विशेष हैं उनको बिना आज्ञा लिए और बिना प्रतिलेखन प्रमार्जन किए ग्रहण न करे किंतु पहले ही उनके पास अवग्रह की याचना करे अर्थात् आज्ञा मांगे, आज्ञा लेकर उनका प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उन पदार्थों को एक बार अथवा अधिक बार ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सुत्र में साधु के तीसरे अस्तेय महाव्रत का वर्णन किया गया है। साधु साध्वी कोई भी पदार्थ बिना किसी व्यक्ति की आज्ञा के ग्रहण न करे क्योंकि दीक्षा लेते समय वह तीन करण तीन योग से अदत्तादान का त्याग करता है।

प्रस्तुत सूत्र पाठ में छाता (छत्रक) और चर्मछेदनक आदि उपकरण का उल्लेख है जब कि दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में **'छत्तस्स य धारणट्ठाए'** कह कर इसको अनाचीर्ण बताया है। फिर मूल पाठ में इन शब्दों का उल्लेख किस प्रकार हुआ? वृत्तिकार और चूर्णिकार तो इसका समाधान इस प्रकार देते हैं कि, कोंकण आदि देशों में जहाँ अत्यन्त वृष्टि होती है वहाँ वर्षा कल्प आदि के समय साधु-साध्वी अपवाद में छत्र रख सकते हैं और चर्म छेदनक भी किसी कार्य के लिये प्रातिहारिक रूप में गृहस्थ के यहाँ से ला सकते हैं परन्तु उपकरण के रूप में इन्हें साथ नहीं रख सकते हैं।

पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. ने इसका समाधान देते हुए लिखा है कि छत्र शब्द से कम्बल और छाता दोनों में से कोई भी पदार्थ हो सकता है। इसी तरह चर्म छेदनक का अर्थ चाकू (नख छेदनक-नेलकटर) किया है परन्तु ये दोनों समाधान आगमानुकूल सन्तोष जनक प्रतीत नहीं होते हैं।

बहुश्रुत गुरुदेव इस संबंध में ऐसा फरमाया करते थे कि यहाँ पर 'छत्र' शब्द से वृद्ध अवस्था आदि के कारण से सूर्य की धूप सहन नहीं होने से आँख पर कपड़े आदि की पट्टी लगाई जाती है उसे यहाँ पर ग्रहण किया गया है और 'चर्म छेदनक' शब्द से - पतले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चमड़े आदि को काटने का लकड़ी आदि का उपकरण विशेष समझना चाहिये। व्यवहार सूत्र के आठवें उद्देशक में वय स्थविर साधुओं के लिए आवश्यकता होने पर इन छत्र आदि उपकरणों को रखने की विधि बताई है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समहिट्ठए ते उग्गहं अणुण्णविज्जा कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो जाव आउसो! जाव आउसंतस्स उग्गहे जाव साहम्मिया एइ तावं उग्गहं उग्गिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।

से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहयंसि जे तत्थ साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवागच्छिज्जा जे तेण सयमेसित्तए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, तेण ते साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवणिमंतिज्जा, णो चेव णं परवडियाए ओगिज्झिय ओगिज्झिय उवणिमंतिज्जा॥ १५६॥

कठिन शब्दार्थ - **ईसरे** - ईसर-स्वामी, **समहिट्ठए** - अधिष्ठाता, **अहालंदं** - यथालन्द-जितने समय के लिए आज्ञा दें, **अहापरिण्णाय** - यथापरिज्ञात, **साहम्मिया** - साधर्मिक, **संभोइया** - सांभोगिक, **समणुण्णा** - समनोज्ञ-उग्र क्रिया करने वाले, **परवडियाए** - दूसरे के लिये लाए हुए।

भावार्थ - साधु या साध्वी धर्मशाला आदि में जाकर और भली भांति देख कर एवं विचार कर उस स्थान की आज्ञा मांगे। उस स्थान के स्वामी या अधिष्ठाता से आज्ञा मांगते हुए कहे कि - हे आयुष्मन् गृहस्थ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो अर्थात् जितने समय के लिए जितने क्षेत्र में निवास करने की तुम आज्ञा दोगे, उतने समय तक उतने ही क्षेत्र में हम निवास करेंगे। अन्य जितने भी साधर्मिक साधु आयेंगे वे भी उतने काल तक उतने क्षेत्र में ठहरेंगे उक्त काल के बाद हम अन्यत्र विहार कर जाएंगे।

इस प्रकार गृहस्थ की आज्ञा लेकर वहां रहे हुए साधु के पास अन्य साधर्मी, साम्भोगिक तथा समान समाचारी वाले और समनोज्ञ-उग्र विहार करने वाले साधु अतिथि के रूप में आ जाय तो वह साधु अपने द्वारा लाये हुए आहारादि का उसे आमंत्रण करे परन्तु दूसरों के लिए लाए हुए आहारादि के लिए उन्हें निमंत्रित नहीं करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मकान ग्रहण करने संबंधी अवग्रह का उल्लेख किया गया है। साधु अपने ठहरने योग्य निर्दोष एवं प्रासुक स्थान को देख कर उसके स्वामी (मकान मालिक) से अथवा अधिष्ठाता (मकान की देखरेख के लिये रखा हुआ व्यक्ति अर्थात् अपनी अनुपस्थिति में जिसे वह मकान देखरेख रखने के लिए दे रखा हो) से उस मकान में ठहरने की आज्ञा मांगे। किसी भी साधु या साध्वी को आज्ञा लिए बिना किसी भी मकान में नहीं ठहरना चाहिए।

साधु का एक माण्डले पर बैठ कर आहार पानी करने का संबंध उसी साधु के साथ होता है जो साधर्मिक, साम्भोगिक और समान आचार विचार वाला है। इसी प्रकार साध्वी का साध्वी के साथ समझना चाहिए।

असम्भोगी साधु के साथ कैसा व्यवहार रखना चाहिए इसका वर्णन करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा जाव से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ साहम्मिया अण्णसंभोइया समणुण्णा उवागच्छिज्जा जे तेण सयमेसित्तए पीढे वा फलए वा सिज्जा वा संथारए वा तेण ते साहम्मिए अण्णसंभोइए समणुण्णे उवणिमंतिज्जा णो चेव णं परवडियाए उगिज्झिय उगिज्झिय उवणिमंतिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - **अण्णसंभोइया** - अन्य सांभोगिक-जिनके साथ एक माण्डले पर बैठ कर आहार-पानी करने का सम्भोग नहीं है, **सयं** - स्वयं के, **एसित्तए** - गवेषणा किये हुए।

भावार्थ - आज्ञा प्राप्त कर धर्मशाला आदि में ठहरे हुए साधु के पास यदि उत्तम आचार वाले असंभोगी साधर्मी साधु अतिथि के रूप में आ जाएं तो वह स्थानीय साधु अपने गवेषणा किए हुए पीठ (चौकी) फलक (पट्टा) शय्या संस्तारक आदि के द्वारा अन्य सांभोगिक साधुओं को निमंत्रित करे किंतु दूसरे द्वारा गवेषित पीठ फलकादि द्वारा निमंत्रित न करे।

विवेचन - शास्त्र विधान से जो साधर्मिक होते हुए भी सांभोगिक और समनोज्ञ साधु होते हैं, उन्हीं के साथ आहारादि या वंदनादि का व्यवहार होता है। किन्तु अन्य सांभोगिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के साथ शयनीय उपकरणों का लेन-देन खुला होता है। इस भेद को बताने के लिए ही ये तीन शब्द (**साधर्मिक, समनोज्ञ, सांभोगिक**) दिये हैं।

से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा जाव से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ गाहावईण वा गाहावइपुत्ताण वा सूई वा पिप्पलए वा कण्णसोहणए वा णहच्छेयणए वा तं अप्पणो एगस्स अट्ठाए पाडिहारियं जाइत्ता णो अण्णमण्णस्स दिज्ज वा अणुपइज्ज वा सयं करणिज्जं त्ति कट्टु से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा गच्छित्ता पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे कट्टु भूमीए वा ठवित्ता इमं खलु इमं खलु त्ति आलोइज्जा, णो चेव णं सयं पाणिणा परपाणिंसि पच्चप्पिणिज्जा।। १५७॥

कठिन शब्दार्थ - **पिप्पलए** - कैंची, **कण्णसोहणए** - कर्णशोधनक, **णहच्छेयणए** - नख छेदनक, **अणुपइज्ज** - बार-बार दे, **उत्ताणए** - उत्तानक-ऊंचा हाथ करके।

भावार्थ - आज्ञा प्राप्त कर धर्मशाला आदि में ठहरा हुआ कोई साधु या साध्वी गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र आदि से सूई, कैंची, कर्णशोधनक, नखछेदनक आदि उपकरण अपने स्वयं के प्रयोजन के लिये प्रातिहारिक के रूप में मांग कर लाया हो तो वह उन उपकरणों को अन्य साधुओं को न दे किंतु अपना कार्य करके उन प्रातिहारिक वस्तुओं को लेकर गृहस्थ के यहाँ जाए और लम्बा हाथ करके उन उपकरणों को भूमि पर रख कर गृहस्थ से कहे कि - यह तुम्हारी अमुक वस्तु है, इसे संभाल लो, देख लो परन्तु उन सूई आदि वस्तुओं को साधु अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ पर रख कर न सौंपे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा अणंतरहियाए पुढवीए ससणिद्धाए पुढवीए जाव संताणए तहप्पगारं उग्गहं णो उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा थूणंसि वा गिहेलुगंसि वा उसुयालंसि वा कामजलंसि वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाए दुब्बद्धे जाव णो उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतलिक्खजाए** - अंतरिक्षजात, **दुब्बद्धे** - दुर्बद्ध-अस्थिर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु साध्वी यदि ऐसे अवग्रह (स्थान) को जाने जो सचित्त पृथ्वी यावत् मकडी के जाले आदि से युक्त हो तो उस स्थान की गृहस्थ से एक बार या अनेक बार आज्ञा न मांगे।

साधु साध्वी यदि ऐसे अवग्रह को जाने, जो भूमि से बहुत ऊँचा हो, ठूंठ, देहली, खूंटी, ऊखल, मूसल आदि पर टिकाया हुआ एवं अच्छी तरह से बंधा हुआ या गडा (रखा) हुआ न हो, अस्थिर और चलाचल हो तो ऐसे अवग्रह को एक या अनेक बार ग्रहण नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा कुलियंसि वा, भित्तिंसि वा, सिलंसि वा, लेलुंसि वा जाव णो उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा खंधंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे जाव णो उग्गहं उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा ससागारियं सागणियं सउदयं सइत्थिं सखुड्डुपसुभत्तपाणं णो पण्णस्स णिक्खमणपवेसे जाव धम्माणुओगचिंताए, सेवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए ससागारिए जाव सखुड्डुपसुभत्तपाणे णो उग्गहं उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

कठिन शब्दार्थ - **कुलियंसि** - कुड्य दीवार-मिट्टी की भींत, **सखुड्डुपसुभत्तपाणं** - बालक, पशु और उनके खाने पीने के योग्य अन्नपानादि से युक्त, **धम्माणुओगचिंताए** - धर्मानुयोगचिंता अर्थात् धर्म चिन्तन करने का स्थान।

भावार्थ - साधु साध्वी जो उपाश्रय कच्ची दीवार पर या ऊँचे एवं विषम स्थान पर स्थित हो दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अस्थिर और चलाचल हो उसकी याचना न करे। जो अवग्रह स्तंभ, मचान, ऊपर की मंजिल, प्रासाद या तलघर में स्थित हो ऐसे दुर्बद्ध या चलाचल स्थान की अवग्रह-अनुज्ञा एक बार या अधिक बार ग्रहण न करे। जो स्थान गृहस्थों से युक्त हो, अग्नि और जल से युक्त हो तथा स्त्री, पुरुष और नपुंसक आदि से युक्त हो तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बालक, पशु और उनके खाने पीने के योग्य अन्नपानादि से युक्त हो तो बुद्धिमान् साधु के लिए ऐसा स्थान निर्गमन-प्रवेश वाचना यावत् धर्मानुयोग चिंतन के योग्य नहीं है। अतः साधु साध्वी तथाप्रकार के उपाश्रय के विषय में अवग्रह की याचना नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पंथे पडिबद्धं णो पण्णस्स जाव चिंताए से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा तहेव तिल्ल-सिणाण-सीओदग-वियडादि णिगियाइ वा जहा सिज्जाए आलावगा णवरं उग्गह वत्तव्वया।।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण उग्गहं जाणिज्जा आइण्णसंलिक्खे णो पण्णस्स जाव चिंताए तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं उगिण्हिज्जा वा पगिण्हिज्जा वा। एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ १५८॥

॥ पढमो उद्देसो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **णिगियाइ** - नग्न होती है, **उग्गह वत्तव्वया** - अवग्रह की वक्तव्यता, **आइण्णसंलिक्खे** - चित्रों से आकीर्ण।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे अवग्रह को जाने जिसमें जाने का मार्ग गृहस्थ के घर के बीचों बीच से जाता है तो प्रज्ञावान् साधु का ऐसे स्थान में निकलना और प्रवेश करना यावत् धर्मानुयोग चिंतन के लिए योग्य नहीं है। अतः ऐसे उपाश्रय की अवग्रह अनुज्ञा ग्रहण नहीं करे।

बुद्धिमान् साधु साध्वी जिस उपाश्रय में गृहपति यावत् उनकी दासियाँ परस्पर आक्रोश करती हों-लड़ती झगड़ती हों, तैलादि की मालिश करती हों, स्नानादि करती हों, नग्न हो कर बैठती हों, आदि वर्णन शय्या अध्ययन के आलापकों की तरह यहाँ समझ लेना चाहिये। इतना विशेष है कि वहाँ शय्या के विषय में वर्णन है तो यहाँ अवग्रह के विषय में है अर्थात् इस प्रकार के उपाश्रय की भी साधु याचना न करे। साधु साध्वी ऐसे उपाश्रय के बारे में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने जो चित्रों से आकीर्ण हो, ऐसा उपाश्रय बुद्धिमान् साधु के निर्गमन-प्रवेश यावत् धर्मानुयोग चिंतन के लिए योग्य नहीं है अतः ऐसे उपाश्रय की भी आज्ञा नहीं लेनी चाहिये।

यह साधु और साध्वी का समग्र आचार है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - साधु साध्वी को ऐसे स्थान में नहीं ठहरना चाहिये जहां जीवों की हिंसा होती हो, संयम की विराधना होती हो, मन में विकार उत्पन्न होता हो और स्वाध्याय एवं ध्यान में बाधा पड़ती हो।

।। सातवें अध्ययन का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

सातवें अध्ययन का द्वितीय उद्देशक

से आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेसु वा परियावसहेसु वा अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा, जे तत्थ ईसरे समहिट्ठाए ते उग्गहं अणुण्णविज्जा कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो जाव आउसो ! जाव आउसंतस्स उग्गहे जाव साहम्मियाए ताव उग्गहं उगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो। से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि जे तत्थ समणाण वा माहणाण वा दंडए वा छत्तए वा जाव चम्मछेयणए वा तं णो अंतोहिंतो बाहिं णीणिज्जा बहियाओ वा णो अंतो पविसिज्जा सुत्तं वा णो पडिबोहिज्जा, णो तेसिं किंचि वि अप्पत्तियं पडिणीयं करिज्जा ॥ १५९ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अंतोहिंतो** - भीतर से, **णीणिज्जा** - निकाले, **सुत्तं** - सुप्त-सोए हुए को, **पडिबोहिज्जा** - प्रतिबोधित-जागृत करे, **अप्पत्तियं** - अप्रीतिक-मन को पीडा देने वाले, **पडिणीयं** - प्रत्यनीकता-प्रतिकूलता।

भावार्थ - साधु धर्मशाला आदि स्थानों में जा कर और विचार कर अवग्रह की याचना करे। अवग्रह की आज्ञा मांगते हुए उक्त स्थानों के स्वामी या अधिष्ठाता से कहे कि हे आयुष्मन् गृहस्थ! आप हमें यहां जितने समय और जितने क्षेत्र में ठहरने की आज्ञा देंगे, उतने समय और उतने क्षेत्र में ही हम ठहरेंगे तथा हमारे जितने भी साधर्मिक साधु आयेंगे वे भी आपकी आज्ञानुसार उतने काल और उतने ही क्षेत्र में ठहरेंगे। उसके बाद विहार कर जायेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थ की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु उस स्थान में शाक्यादि श्रमणों या ब्राह्मणों के छत्र यावत् चर्मछेदनक आदि पडे हुए हों उनको भीतर से बाहर न निकाले और न ही बाहर से भीतर रखे तथा किसी सोये हुए श्रमण या ब्राह्मण को जागृत न करे और उनके साथ किंचिन्मात्र भी अप्रीतिकर कार्य-प्रतिकूल व्यवहार न करे जिससे उनके मन को पीडा पहुँचे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी किसी भी स्थान पर ठहरते समय इस बात का विशेष लक्ष्य रखे कि उसके किसी भी व्यवहार से मकान के मालिक अथवा वहां आने जाने वाले व्यक्तियों को किसी प्रकार का संक्लेश न पहुँचे।

उपर्युक्त मूल पाठ में आये हुए **'से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि'** शब्दों का आशय इस प्रकार समझना चाहिए - 'वह साधु वहाँ पर अवग्रह के अनुज्ञा पूर्वक अवग्रह को ग्रहण करने के बाद फिर क्या करे?'

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा अंबवणं उवागच्छित्तए जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समहिट्ठाए से उग्गहं अणुजाणाविज्जा - कामं खलु जाव विहरिस्सामो, से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि अह भिक्खू इच्छिज्जा अंबं भुत्तए वा से जं पुण अंबं जाणिज्जा सअंडं जाव ससंताणगं तहप्पगारं अंबं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा।

भावार्थ - यदि कोई साधु या साध्वी आम्रवन में ठहरना चाहे तो उस बगीचे के मालिक या अधिष्ठाता से अवग्रह की आज्ञा मांगते हुए कहे कि - हे आयुष्मन् गृहस्थ! मैं यहां ठहरना चाहता हूं। आप जितने समय के लिये जितने क्षेत्र की आज्ञा देंगे उतने समय ठहर कर विहार कर दूंगा। आज्ञा प्राप्त होने पर साधु किसी कारण से आम खाना चाहे तो जो आम अण्डों से यावत् मकडी के जालों से युक्त हो तो उन्हें अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर ग्रहण नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण अंबं जाणिज्जा अप्पंडं जाव अप्पसंताणगं अतिरिच्छछिण्णं अव्वोछिण्णं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा॥

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण अंबं जाणिज्जा, अप्पंडं जाव संताणगं तिरिच्छछिण्णं वोच्छिण्णं फासुयं जाव पडिगाहिज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा अंबभित्तगं वा अंबपेसियं वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंबचोयगं वा अंबसालगं वा अंबडालगं वा भुत्तए वा पायए वा, से जं पुण जाणिज्जा अंबभित्तगं वा जाव अंबडालगं वा सअंडं जाव संताणगं अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा अंबभित्तगं वा जाव अप्पंडं जाव संताणगं अतिरिच्छछिण्णं वा अवोच्छिण्णं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहिज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा, अंबभित्तगं वा जाव अप्पंडं जाव संताणगं तिरिच्छिछिण्णं वोच्छिण्णं फासुयं जाव पडिगाहिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **अतिरिच्छछिण्णं** - तिरछा छेदन नहीं किया हुआ, **अव्वोछिण्णं** - अखंडित, **अंबभित्तगं** - अर्द्ध आम, **अंबसालगं** - आम्र का रस, **अंबडालगं** - आम्रफल के सूक्ष्म सूक्ष्म खण्ड।

भावार्थ - साधु या साध्वी यह जाने कि आम्रफल अण्डों से रहित यावत् मकडी के जालों से रहित है किन्तु तिरछे छेदन नहीं किये हुए हैं तथा जो अखंडित हैं तो उन्हें उसको अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे।

जो अण्डों से रहित यावत् मकडी के जालों से रहित हैं, तिरछे कटे हुए हैं, खंड खंड किये हुए है उन्हें प्रासुक और एषणीय जान कर ग्रहण कर सकता है।

यदि साधु या साध्वी आम्रफल का अर्द्ध भाग आम की पेशी (फाड) आम की छाल, आम की गिरी अथवा आम का रस अथवा आम्र के सूक्ष्म सूक्ष्म खंड खाना या पीना चाहे परन्तु वे अण्डों यावत् मकडी के जालों से युक्त हो तो उनको अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण नहीं करे।

साधु या साध्वी आम्रफल को अथवा उसके आधे भाग यावत् आम के टुकड़ों को जो कि अंडादि से रहित हैं किंतु तिरछे छेदन किये हुए नहीं हैं और खण्ड खण्ड किये हुए नहीं है तो उसे अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे।

साधु या साध्वी यह जाने कि आम का आधा भाग यावत् आम्रफल के सूक्ष्म खंड किये हुए हैं, अंडादि से रहित हैं तिरछे छेदन किये हुए है खण्ड खण्ड किये हुए हैं तथा परिपक्व होने से अचित्त हो गये हैं उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जान कर ग्रहण कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पूरे पके हुए आम में गुठली एवं बींट में जीव होते हैं। इन दोनों भागों को पृथक् कर देने पर छिलका सहित पूरा आम अचित्त होता है। इस प्रकार अचित्त आम के विभागों के ग्रहण करने की विधि का प्रस्तुत सूत्र में विधान किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा उच्छुवणं उवागच्छित्तए, जे तत्थ ईसरे जाव उग्गहंसि एवोग्गहियंसि॥ अह भिक्खू इच्छिज्जा उच्छुं भुत्तए वा पायए वा, से जं उच्छुं जाणिज्जा सअंडं जाव णो पडिगाहिज्जा, अतिरिच्छछिण्णं तहेव तिरिच्छछिण्णे वि तहेव॥

कठिन शब्दार्थ - उच्छुवणं - इक्षु वन में।

भावार्थ - यदि साधु या साध्वी इक्षु वन में ठहरना चाहें तो उस वन के स्वामी या अधिष्ठाता से आज्ञा लेकर ठहरे। आज्ञा प्राप्त होने पर यदि वह इक्षु (गन्ना) खाना चाहे तो इक्षु के संबंध में पहले यह जाने कि जो इक्षु अंडों से युक्त यावत् मकडी के जालों से युक्त है तिरछा कटा हुआ नहीं है, उसको ग्रहण न करे। यदि इक्षु अण्डादि से रहित और तिरछा छेदन किया हुआ हो तो उसको प्रासुक और एषणीय जान कर प्राप्त होने पर ग्रहण कर सकता है। शेष वर्णन आम्र के अनुसार ही जानना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण अभिकंखिज्जा अंतरुच्छुयं वा उच्छुगंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुसालगं वा उच्छुडालगं वा भुत्तए वा पायए वा॥ से जं पुण जाणिज्जा अंतरुच्छयं वा जाव डालगं वा सअंडं जाव णो पडिगाहिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणिज्जा अंतरुच्छुयं वा जाव डालगं वा अप्पंडं वा जाव णो पडिग्गाहिज्जा अतिरिच्छछिण्णं तहेव॥

कठिन शब्दार्थ - अंतरुच्छुयं - इक्षु के पर्व का मध्य भाग।

भावार्थ - यदि साधु या साध्वी इक्षु के पर्व का मध्य भाग, इक्षुगंडिका, इक्षु त्वचा-छाल, इक्षु रस और इक्षु के सूक्ष्म खंड आदि को खाना पीना चाहे तो वह अंडादि यावत् मकडी के जालों से युक्त हो तो उन्हें अप्रासुक एवं अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे। साधु साध्वी यह जाने कि ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के टुकड़े अण्डों यावत् मकडी के जालों से रहित होने पर भी तिरछे काटे हुए न हो तथा वे खंड खंड भी न किये हुए हों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो साधु उन्हें अप्रासुक अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे। यदि वह यह जान ले कि इक्षु अंडों यावत् मकडी के जालों से रहित हैं तथा तिरछे काटे हुए भी हैं तो उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जान कर मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इक्षु को ग्रहण करने की विधि बताई गई है। आँवला आदि के मुरब्बे की तरह इक्षु के टुकड़े के भी मुरब्बे बनाएं हुए हों तो फिर वे टुकड़े पूरे अचित्त एवं पूरा भाग खाने योग्य हो जाने से उनको ग्रहण करने पर छिलके आदि को फैंकना नहीं पड़ता है। इस प्रकार के इक्षु को साधु-साध्वी ग्रहण कर सकते हैं। इक्षु के वन (बगीचे) में इक्षु संबंधी अनेक वस्तुओं का निर्माण होता है। वहाँ पर मुरब्बे आदि भी बनाए जाते हैं। इक्षु रस तो निकालने के कुछ देर (१५-२० मिनिट) बाद अचित्त हो जाने से अन्य सचित्त वस्तुओं के संघट्टे में नहीं हो तो ग्रहण किया जा सकता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा ल्हसुणवणं उवागच्छित्तए, तहेव तिण्णि वि आलावगा, णवरं ल्हसुणं॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा ल्हसुणं वा ल्हसुणकंदं वा ल्हसुणचोयगं वा ल्हसुणणालगं वा भुत्तए वा से जं पुण जाणिज्जा ल्हसुणं वा जाव ल्हसुणबीयं वा सअंडं जाव णो पडिगाहिज्जा एवं अतिरिच्छछिण्णे वि तिरिच्छछिण्णे जाव पडिगाहिज्जा॥ १६०॥

कठिन शब्दार्थ - **ल्हसुणवणं** - लहसुन के वन में, **ल्हसुणणालगं** - लहसुन की नाल को।

भावार्थ - साधु अथवा साध्वी यदि किसी कारण से लहसुन के वन में ठहरना चाहें तो पूर्व की भांति तीनों ही आलापक समझ लेने चाहिये, केवल इतना विशेष है कि यहां पर लहसुन का अधिकार है। साधु या साध्वी लहसुन को, लहसुन के कंद, लहसुन की छाल यावत् लहसुन बीज को जो अंडादि से युक्त है और तिरछा छेदन किया हुआ नहीं है तो उसे ग्रहण न करे यदि वह अंडों यावत् मकडी के जालों से रहित है, तिरछा छेदन किया हुआ है तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जान कर मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

विवेचन - निशीथ सूत्र उद्देशक १५, ५, १२ एवं उद्देशक १६, ४, ११ में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि साधु साध्वी सचित्त आम्र एवं सचित्त इक्षु ग्रहण करता है तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ वनस्पति आदि विशेष हो और गमनागमन करते समय वनस्पति का संघट्टा (स्पर्श) होने की संभावना रहती हो ऐसे आम्र आदि वनों में साधु साध्वी को नहीं ठहरना चाहिये। चूर्णिकार के मतानुसार तो किसी रोगादि कारण विशेष से औषध के कार्य हेतु वैद्यादि के निर्देश पर ऐसे स्थानों पर उतरने का प्रसंग आवे उस समय की यह स्थिति बतलाई है। लहसुन आदि के गंध से भी कई रोग आदि दूर होते हैं ऐसा आयुर्वेद का कथन है। इसलिये ऐसी परिस्थिति विशेष में ही ऐसे स्थानों में उतरने का कथन है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, जावोग्गहियंसि जे तत्थ गाहावईण वा गाहावइपुत्ताण वा इच्चेयाइं आययणाइं उवाइक्कम्म, अह भिक्खू जाणिज्जा, इमाहिं सत्तहिं पडिमाहिं उग्गहं उग्गिण्हित्तए, तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा - से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अणुवीइ उग्गहं जाइज्जा जाव विहरिस्सामो पढमा पडिमा १। अहावरा दोच्चा पडिमा - जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ - अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं उग्गिण्हिस्सामि अण्णेसिं भिक्खूणं उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि दुच्चा पडिमा २। अहावरा तच्चा पडिमा - जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ - अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं णो उग्गिण्हिस्सामि अण्णेसिं च उग्गहं उग्गहिए णो उवल्लिस्सामि, तच्चा पडिमा ३। अहावरा चउत्था पडिमा - जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं णो उग्गिण्हिस्सामि, अण्णेसिं च उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि, चउत्था पडिमा ४। अहावरा पंचमा पडिमा - जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ अहं च खलु अप्पणो अट्ठाए उग्गहं उग्गिण्हिस्सामि णो दुण्हं, णो तिण्हं, णो चउण्हं, णो पंचण्हं, पंचमा पडिमा ५। अहावरा छट्ठा पडिमा - से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जस्स एवं भवइ जस्स उग्गहे उवल्लिइज्जा जे तत्थ अहासमण्णागए इक्कडे वा जाव पलाले वा तस्स लाभे संवसिज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुओ वा णेसज्जिओ वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विहरिज्जा, छट्ठा पडिमा ६। अहावरा सत्तमा पडिमा - से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहासंथडमेव उग्गहं जाइज्जा, तं जहा - पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहासंथडमेव तस्स लाभे संते संवसिज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुओ वा णेसज्जिओ विहरिज्जा, सत्तमा पडिमा ७। इच्चेयासिं सत्तण्हं पडिमाणं अण्णयरं जहा पिंडेसणाए॥

कठिन शब्दार्थ - उवल्लिस्सामि - आश्रय लूंगा, निवास करूंगा, **अहासमण्णागए** - यथा समन्वागत-पहले से जैसा है, वैसा ही, **अहासंथडं** - जैसा बिछा हुआ हो।

भावार्थ - संयमशील साधु या साध्वी धर्मशाला आदि में आज्ञा लेने पर गृहपति अथवा गृहपति के पुत्रों से संबंधित ये जो उपरोक्त कर्म बंध के स्थान हैं उनका त्याग कर इन सात प्रतिमाओं के द्वारा अवग्रह की याचना करे, वे प्रतिमा इस प्रकार हैं -

१. धर्मशाला आदि स्थानों का विचार कर वहां का स्वामी जितने समय के लिए जितने क्षेत्र में ठहरने की आज्ञा देगा उतने समय तक उतने क्षेत्र में मैं ठहरूंगा। यह पहली प्रतिमा है।

२. मैं अन्य साधुओं के लिए अवग्रह की याचना करूंगा तथा उनके द्वारा याचना किये गये स्थान में ठहरूंगा। यह दूसरी प्रतिमा है।

३. तीसरी प्रतिमा में कोई साधु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं अन्य साधु के लिए अवग्रह की याचना करूंगा परंतु दूसरे भिक्षुओं द्वारा याचना किए गए अवग्रह स्थानों में मैं नहीं ठहरूंगा।

४. इसके पश्चात् चौथी प्रतिमा में साधु अभिग्रह करता है कि मैं दूसरे के द्वारा याचना किए गए अवग्रह स्थान में ठहरूंगा परन्तु अन्य के लिए अवग्रह की याचना नहीं करूंगा। यह चौथी प्रतिमा है।

५. पांचवीं प्रतिमा में कोई साधु यह अभिग्रह धारण करता है कि मैं अपने लिए ही अवग्रह की याचना करूंगा किंतु अन्य दो, तीन, चार और पांच आदि साधुओं के लिए अवग्रह की याचना नहीं करूंगा। यह पांचवीं प्रतिमा है।

६. छठी प्रतिमा में कोई साधु इस प्रकार का अभिग्रह करता है कि मैं जिस स्थान की याचना करूंगा यदि उस अवगृहीत स्थान में तृण आदि का संस्तारक मिल जायगा तो उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण करूंगा अन्यथा उत्कुटुक आसन अथवा निषद्या आसन द्वारा रात्रि व्यतीत करूंगा। यह छठी प्रतिमा है।

७. सातवीं प्रतिमा में कोई साधु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं जिस स्थान की याचना करूंगा उस स्थान में पृथ्वी शिला, काष्ठ शिला तथा पलाल (पराल) आदि बिछा हुआ होगा तो उसे ग्रहण करूंगा अन्यथा उत्कुटुक आदि आसन के द्वारा रात्रि व्यतीत करूंगा। यह सातवीं प्रतिमा है।

इन पूर्वोक्त सात प्रतिमाओं में से किसी साधु ने यदि कोई प्रतिमा ग्रहण की हुई है तो वह अन्य साधुओं की निन्दा नहीं करे। शेष वर्णन पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णित सात पिण्डैषणा प्रतिमाओं के वर्णन के अनुसार जानना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अवग्रह से संबंधित सात प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है।

इसमें प्रथम प्रतिमा सामान्य साधुओं के लिए है। दूसरी प्रतिमा का अधिकारी मुनिगच्छ में रहने वाले साम्भोगिक एवं उत्कृष्ट संयमनिष्ठ असाम्भोगिक साधुओं के साथ प्रेम भाव रखने वाला होता है। तीसरी प्रतिमा उन साधुओं के लिए है जो आचार्य आदि के पास रह कर अध्ययन करना चाहते हैं। चौथी प्रतिमा उनके लिए है जो गच्छ में रहते हुए जिनकल्पी बनने का अभ्यास कर रहे हैं। पाँचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमा केवल जिनकल्पी मुनि से सम्बद्ध है। ये भेद वृत्तिकार ने किये हैं। मूल पाठ में किसी कल्प के मुनि का संकेत नहीं किया गया है। वहाँ तो इतना ही उल्लेख किया गया है कि मुनि इन सात प्रतिमाओं को ग्रहण करते हैं, चाहे वे जिन कल्प पर्याय में हों या स्थविर कल्प पर्याय में हों। सामान्य रूप से प्रत्येक साधु अपनी शक्ति के अनुसार अभिग्रह ग्रहण कर सकता है। इसी कारण सूत्रकार ने यह उल्लेख किया है कि स्थान संबंधी समस्त दोषों का त्याग करके साधु को अवग्रह की याचना करनी चाहिये।

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं - इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं पंचविहे उग्गहे पण्णत्ते तंजहा - देविंद उग्गहे १ राय उग्गहे २ गाहावइ उग्गहे ३ सागारिय उग्गहे ४ साहम्मिय उग्गहे ५।

एवं खलु तस्स भिक्खुस्स भिक्खुणीए वा सामग्गियं॥ १६२॥

॥ सत्तमं अज्झयणं उग्गह पडिमा समत्ता॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने उन भगवन्तों के मुखारविन्द से इस प्रकार सुना है कि - इस जिन प्रवचन में स्थविर भगवंतों ने पांच प्रकार का अवग्रह कहा है। यथा - १. देवेन्द्र अवग्रह २. राज अवग्रह ३. गृहपति अवग्रह ४. सागारिक अवग्रह और ५. साधर्मिक अवग्रह।

इस प्रकार यह साधु साध्वी का समग्र आचार है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांच प्रकार के अवग्रह का वर्णन किया गया है। अवग्रह का अर्थ है - स्वामित्व। उसके पांच भेद बतलाये गये हैं। यथा - १. देवेन्द्रावग्रह-शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र, इन दोनों का स्वामीपन अनुक्रम से दक्षिण लोकार्द्ध और उत्तर लोकार्द्ध में है। इसलिये उनकी आज्ञा लेना-'देवेन्द्रावग्रह' कहलाता है। २. राजावग्रह-भरतादि क्षेत्रों के छह खण्डों पर चक्रवर्त्ती का अवग्रह होता है। ३. गाथापति (गृहपति) का अवग्रह जैसे माण्डलिक राजा का अपने अधीन देश पर अवग्रह होता है। ४. सागारिक अवग्रह-जैसे गृहस्थ का अपने घर पर अवग्रह होता है। ५. साधर्मिक अवग्रह-समान धर्म वाले साधु, परस्पर साधर्मिक कहलाते हैं, उनका पांच कोस तक क्षेत्र में साधर्मिकावग्रह होता है। अर्थात् शेष-काल में एक मास और चातुर्मास में चार महीने तक साधर्मिकावग्रह होता है। ढ़ाई कोस दक्षिण की ओर, ढ़ाई कोस उत्तर की ओर, इस प्रकार पांच कोस और ढ़ाई कोस पूर्व की ओर तथा ढ़ाई कोस पश्चिम की ओर, इस प्रकार पांच कोस का अवग्रह होता है।

इस अवग्रह अध्ययन में तो याचना सम्बन्धी विधि बताई है। दूसरे शय्या अध्ययन में योग्य-अयोग्य शय्या सम्बन्धी विधि बताई है।

॥ सातवें अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

❀ अवग्रह प्रतिमा नामक सातवां अध्ययन समाप्त ❀

॥ प्रथम चूला समाप्त ॥

❋ ❋ ❋ ❋

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तसप्तिका नामक द्वितीय चूला

स्थान सप्तिका नामक आठवां अध्ययन

आचारांग सूत्र का द्वितीय श्रुतस्कंध चार चूलाओं में विभक्त है। पहली चूला और दूसरी चूला में सात-सात अध्ययन हैं। तीसरी और चौथी चूला में एक एक अध्ययन है। प्रथम चूला के सातों अध्ययन विभिन्न उद्देशकों में विभक्त हैं जबकि द्वितीय चूला के सातों अध्ययन में उद्देशक नहीं हैं। प्रथम चूला के अंतिम सातवें अध्ययन में अवग्रहों से याचना किए गये स्थान में साधु को किस तरह से कायोत्सर्ग आदि क्रियाएं करनी चाहिये इसका वर्णन द्वितीय चूला में किया गया है। द्वितीय चूला के सातों अध्ययनों का संबंध अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये गये स्थानों में साधना करने की विधि से है इसलिये इसका नाम 'सप्तसप्तिका चूला' रखा गया है। इसके प्रथम अध्ययन में साधु को उपाश्रय में कायोत्सर्ग आदि किस प्रकार करना चाहिये, इसका उल्लेख करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा ठाणं ठाइत्तए, से अणुपविसिज्जा गामं वा, णगरं वा, सण्णिवेसं वा जाव रायहाणिं वा से जं पुण ठाणं जाणिज्जा- सअंडं जाव मक्कडासंताणयं तं तहप्पगारं ठाणं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा एवं सिज्जा गमेण णेयव्वं जाव उदयपसूयाइं त्ति॥

कठिन शब्दार्थ - **ठाइत्तए** - स्थित होना।

भावार्थ - किसी ग्राम, नगर, सन्निवेश यावत् राजधानी में ठहरने के इच्छुक साधु साध्वी पहले ग्रामादि में जाकर उस स्थान को जाने अर्थात् स्थान का अन्वेषण करे जो स्थान अंडों यावत् मकडी के जालों से युक्त हो उसे मिलने पर भी अप्रासुक और अनेषणीय जान कर ग्रहण न करे। इसी प्रकार अन्य सूत्र भी शय्या अध्ययन के समान जान लेना चाहिये यावत् उदक प्रसूत कन्दादि अर्थात् जिस स्थान में कन्द मूल आदि वनस्पति विद्यमान हो उसे भी ग्रहण न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में शय्यैषणा अध्ययन की तरह स्थान संबंधी गवेषणा में विवेक का वर्णन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्चेयाइं आययणाइं उवाइक्कम्म अह भिक्खू इच्छिज्जा चउहिं पडिमाहिं ठाणं ठाइत्तए, तत्थिमा पढमा पडिमा - अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा अवलंबिज्जा काएण विप्परिकम्माइ सवियारं ठाणं ठाइस्सामि। पढमा पडिमा। अहावरा दुच्चा पडिमा - अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा अवलंबिज्जा काएण विप्परिकम्माइ णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि। दुच्चा पडिमा। अहावरा तच्चा पडिमा - अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा अवलंबिज्जा णो काएण विप्परिकम्माइ णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि त्ति तच्चा पडिमा। अहावरा चउत्था पडिमा - अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा णो अवलंबिज्जा काएण णो विप्परिकम्माइ णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि त्ति वोसट्ठकाए वोसट्ठ- केसमंसुलोमणहे संणिरुद्धं वा ठाणं ठाइस्सामि त्ति। चउत्था पडिमा।

इच्चेयासिं चउण्हं पडिमाणं जाव पग्गहियतरायं विहरिज्जा, णो किंचि वि वइज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जाव जइज्जासि त्ति बेमि॥ १६३॥

॥ ठाणसत्तिक्कयं समत्तं॥ ॥ अट्ठमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **उवसज्जिज्जा** - आश्रय लूंगा, **अवलंबिज्जा** - सहारा लूंगा, **विप्परिकम्माइ**- संकोचन प्रसारण करूंगा, **वोसट्ठ-केस-मंसु-लोमणहे** - केश, दाढी, मूंछ, रोम, नख के ममत्व को त्याग कर, **संणिरुद्धं**-सम्यक् रूप से निरोध करके, **पग्गहियतरायं**- किसी एक प्रतिमा को ग्रहण करके।

भावार्थ - इन पूर्वोक्त कर्मोपदान रूप दोष स्थानों को छोड़ कर साधु साध्वी आगे कही जाने वाली चार प्रतिमाओं के अनुसार किसी स्थान में ठहरने की इच्छा करे अर्थात् कायोत्सर्गादि क्रिया करे-

१. पहली प्रतिमा में साधु प्रतिज्ञा करता है कि मैं अचित्त स्थान में रहूंगा, अचित्त भींत आदि का सहारा लूंगा, हाथ पैर आदि का संकुचन प्रसारण करूंगा और पैरों से मर्यादित भूमि में पैरों से संक्रमण (विचरण) आदि करूंगा। यह पहली प्रतिमा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. दूसरी प्रतिमा में साधु अभिग्रह करता है कि मैं अचित्त स्थान में आश्रय लूंगा, अचित्त भींत आदि का सहारा लूंगा, हाथ पैर आदि का संकुचन प्रसारण करूंगा किन्तु मर्यादित भूमि में पैरों से थोडा-सा भी विचरण नहीं करूंगा।

३. तीसरी प्रतिमा में साधु अभिग्रह करता है कि मैं अचित्त स्थान में रहूंगा, अचित्त भींत आदि का सहारा लूंगा परंतु हाथ पैर आदि का संकुचन प्रसारण नहीं करूंगा और मर्यादित भूमि में पैरों से थोडा सा भी भ्रमण नहीं करूंगा।

४. चौथी प्रतिमा में साधु प्रतिज्ञा करता है कि मैं अचित्त स्थान में ठहरूंगा परंतु भींत आदि का सहारा नहीं लूंगा, हाथ पैर आदि का संचालन और पैरों से भ्रमण नहीं करूंगा। कुछ काल के लिये काया के ममत्व भाव को छोड़ कर केश, दाढी, मूंछ, रोम, नख के ममत्व भाव का त्याग कर सम्यक् प्रकार से काया का निरोध करके अचित्त स्थान में ठहरूंगा अर्थात् यदि कोई केशादि का उत्पाटन करेगा तो भी ध्यान से विचलित नहीं होऊंगा। यह चौथी प्रतिमा का स्वरूप है।

इन पूर्वोक्त चार प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा को ग्रहण कर विचरे किन्तु अन्य किसी मुनि की (जिसने प्रतिमा ग्रहण नहीं की) निन्दा न करे उसके विषय में कुछ न कहे।

निश्चय ही यह साधु साध्वियों का सम्पूर्ण आचार है यावत् इसका पालन करने का यत्न करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन – प्रस्तुत सूत्र में कायोत्सर्ग की विधि एवं कायोत्सर्ग करने वाले साधक की चार प्रतिमाएं बताई गयी हैं।

।। प्रथम स्थान सप्तिका समाप्त ।।

❀ स्थान सप्तिका नामक आठवां अध्ययन समाप्त ❀

।। द्वितीय चूला समाप्त ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय सप्तिका

निषीधिका नामक नववां अध्ययन

आठवें अध्ययन में कायोत्सर्ग का वर्णन करने के बाद सूत्रकार ने इस नववें अध्ययन में स्वाध्याय विषयक वर्णन किया है। स्वाध्याय भूमि कैसी हो? और साधक को किस तरह स्वाध्याय में संलग्न रहना चाहिये? इसका स्पष्टीकरण देते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा णिसीहियं फासुयं गमणाए, से जं पुण णिसीहियं जाणिज्जा - सअंडं सपाणं जाव मक्कडासंताणयं तहप्पगारं णिसीहियं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो चेइस्सामि॥ से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखिज्जा णिसीहियं गमणाए, से जं पुण णिसीहियं जाणिज्जा अप्पंडं अप्पपाणं अप्पबीयं जाव मक्कडासंताणयं तहप्पगारं णिसीहियं फासुयं एसणिज्जं लाभे संते चेइस्सामि, एवं सिज्जागमेणं णेयव्वं जाव उदयप्पसूयाइं॥ जे तत्थ दुवग्गा तिवग्गा चउवग्गा पंचवग्गा वा अभिसंधारिंति णिसीहियं गमणाए ते णो अण्णमण्णस्स कायं आलिंगिज्ज वा विलिंगिज्ज वा चुंबिज्ज वा दंतेहिं वा णहेहिं वा अच्छिंदिज्ज वा वुच्छिंदिज्ज वा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए समिए सया जएज्जा सेयमिणं मण्णिजासि त्ति बेमि॥ १६४॥

॥ णिसीहिया सत्तिक्कयं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **अभिसंधारिंति** - सन्मुख होते हों, **दुवग्गा** - द्वि वर्ग-दो साधु, **आलिंगिज्ज** - आलिंगन करे, **विलिंगिज्ज** - विशेष रूप से आलिंगन करे, **चुंबिज्ज** - चुम्बन करे।

भावार्थ - जो साधु या साध्वी प्रासुक-निर्दोष स्वाध्याय भूमि में जाने की इच्छा रखते हों वे स्वाध्याय भूमि के बारे में जाने। जो स्वाध्याय भूमि अण्डे यावत् मकडी के जालों से युक्त हैं उसे अप्रासुक और अनेषणीय जान कर गृहस्थ से कहे कि मैं इस प्रकार की भूमि में नहीं ठहरूंगा अर्थात् मैं इसका उपयोग नहीं करूंगा। जो स्वाध्याय भूमि अंडे प्राणी, बीज यावत् मकडी के जालों आदि से रहित हैं उसे प्रासुक और एषणीय जान कर कहे कि मैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहां पर ठहरूंगा। शेष वर्णन दूसरे शय्या अध्ययन के अनुसार जानना चाहिये यावत् जहां पर उदकप्रसूत-पानी से उत्पन्न वनस्पति कन्दादि हो वहां पर न ठहरे।

वास्तव में निषीधिका (स्वाध्याय भूमि) की अन्वेषणा तभी की जाती है, जब आवास स्थान संकीर्ण छोटा, खराब या स्वाध्याय-ध्यान के योग्य न हो।

उस स्वाध्याय भूमि में गए हुए दो, तीन, चार या पांच साधु परस्पर शरीर का आलिंगन न करें, विशेष रूप से आलिंगन न करें, मुख चुम्बन न करें, दांतों से या नखों से शरीर का छेदन भी न करें और जिससे विशेष मोहानल-मोह रूपी अग्नि प्रदीप्त हो इस प्रकार की पारस्परिक कुचेष्टा न करें। जिस प्रकार साधु के लिये कहा है वैसे साध्वी, साध्वी के परस्पर इन कुचेष्टाओं का निषेध समझ लेना चाहिए।

यही साधु साध्वियों का समग्र आचार है। जो सर्व अर्थों से सहित है, पांच समितियों से युक्त है इसमें सदा संयम पालन करने में यत्नशील हो तथा इस आचार का पालन करना श्रेय है-कल्याण रूप है इस प्रकार माने। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - शोभन रीति से मर्यादा पूर्वक अस्वाध्याय काल का परिहार करते हुए शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय के पांच भेद हैं -

१. **वाचना** - शिष्य को सूत्र अर्थ का पढ़ाना वाचना है।

२. **पृच्छना** - वाचना ग्रहण करके संशय होने पर पुनः पूछना पृच्छना है। या पहले सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान में शंका होने पर प्रश्न करना पृच्छना है।

३. **परिवर्त्तना** - पढ़े हुए भूल न जाय इसलिये उन्हें फेरना परिवर्त्तना है।

४. **अनुप्रेक्षा** - सीखे हुए सूत्र के अर्थ का विस्मरण न हो जाय इसलिये उसका बार बार मनन करना अनुप्रेक्षा है।

५. **धर्मकथा** - उपरोक्त चारों प्रकार से शास्त्र का अभ्यास करने पर भव्य जीवों को शास्त्रों का व्याख्यान सुनाना धर्मकथा है।

साधक को अपने योगों को अन्य प्रवृत्तियों से हटा कर आत्म-साधना की ओर लगाना चाहिये और इसके लिए उसे सर्वथा निर्दोष प्रासुक एवं शान्त-एकान्त स्थान में स्वाध्याय करनी चाहिये।

।। द्वितीय सप्तिका समाप्त ।।

❀ निषीधिका नामक नववां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय सप्तिका

उच्चार प्रस्रवण नामक दशवां अध्ययन

नववें अध्ययन में स्वाध्याय का वर्णन करने के पश्चात् सूत्रकार उच्चार प्रस्रवण नामक इस दसवें अध्ययन में मल मूत्र के त्याग की विधि का वर्णन करते हुए फरमाते हैं -

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा उच्चार पासवण किरियाए उब्बाहिज्जमाणे सयस्स पायपुंछणस्स असईए तओ पच्छा साहम्मियं जाइज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिल्लं जाणिज्जा-सअंडं सपाणं जाव मक्कडा संताणयं तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जं पुण थंडिल्लं जाणिज्जा अप्पपाणं जाव संताणयं तहप्पगारंसि थंडिलंसि उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - उब्बाहिज्जमाणे - बाधा होने पर, **सयस्स** - अपने, **पायपुंछणस्स**- पादपुञ्छनक के, **थंडिल्लंसि** - स्थंडिल भूमि में।

भावार्थ - साधु या साध्वी उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) की बाधा होने पर परठने वाले पात्र में उससे निवृत्त होकर मल मूत्रादि को स्थंडिल भूमि में परठ दे। यदि अपना पात्र नहीं हो तो अन्य साधर्मी साधु से पात्र की याचना करके उसमें अपनी बाधा का निवारण करके परठ दे। वह साधु या साध्वी स्थंडिल भूमि के संबंध में यह जाने कि वह भूमि अंडों यावत् मकडी के जालों से युक्त है तो वहां मलमूत्र का व्युत्सर्ग-त्याग नहीं करे। जो स्थंडिल भूमि द्वीन्द्रियादि जीवों यावत् मकडी के जालों से रहित है तो उस भूमि पर मल-मूत्र का विसर्जन करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करने की विधि बताई गई है। साधु साध्वी को कभी भी मल मूत्र का निरोध नहीं करना चाहिये क्योंकि इनके निरोध से शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियाँ और भयंकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं जिनके कारण आध्यात्मिक साधना में रुकावट पड़ सकती है अतः साधु साध्वी के लिये यह आदेश है कि मल मूत्र की बाधा होने पर उसका निवारण कर प्रासुक और निर्दोष भूमि में यतना पूर्वक उसे परठ दे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपरोक्त आगम पाठ से यह भी स्पष्ट होता है कि साधु साध्वी को मल मूत्र का त्याग करने के लिये एक अलग पात्र रखना चाहिये जिसे मात्रक कहते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा अस्सिं (अस्सं) पडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स वा अस्सं पडियाए बहवे साहम्मिया समुद्दिस्स अस्सं पडियाए एगं साहम्मिणिं समुद्दिस्स अस्सं पडियाए बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स अस्सं पडियाए बहवे समण माहण अतिहि किवण वणीमगे पगणिय पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं उद्देसियं चेएइ, तहप्पगारं थंडिल्लं पुरिसंतरकडं जाव बहिया णीहडं वा अणीहडं वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारं पासवणं वोसिरिज्जा।

भावार्थ - साधु या साध्वी यह जाने कि यदि किसी गृहस्थ ने एक साधु या बहुत से साधुओं का उद्देश्य रख कर स्थंडिल बनाया हो अथवा एक साध्वी या बहुत सी साध्वियों का उद्देश्य रख कर स्थंडिल बनाया हो अथवा बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, भिखारी एवं गरीबों को गिन गिन कर उनके लिए प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों की हिंसा करके स्थंडिल भूमि को तैयार किया हो तो इस प्रकार का स्थंडिल पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत हो, किसी अन्य के द्वारा भोगा गया हो अर्थात् काम में ले लिया गया हो या न भोगा गया हो, या अन्य तथाप्रकार के दोष युक्त स्थण्डिल में साधु साध्वी मल मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा बहवे समण माहण-अतिहि-किवण-वणीमग समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं जाव उद्देसियं चेएइ, तहप्पगारं थंडिलं अपुरिसंतरकडं जाव बहिया अणीहडं अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा, अह पुण एवं जाणिज्जा पुरिसंतरकडं जाव बहिया णीहडं अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं वोसिरिज्जा।

भावार्थ - साधु या साध्वी ऐसे स्थंडिल को जाने जो किसी गृहस्थ ने श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि कृपण या भिखारी आदि का उद्देश्य रख कर प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों का आरंभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करके औद्देशिक दोष युक्त बनाया है तो इस प्रकार का स्थंडिल जब तक अपुरुषान्तरकृत है अर्थात् किसी के भोगने में नहीं आया है तब तक इस प्रकार की स्थंडिल भूमि में या अन्य उस प्रकार के दोषों से युक्त स्थंडिल में मल मूत्र का त्याग न करे। यदि साधु या साध्वी यह जान ले कि यह स्थंडिल पुरुषान्तरकृत है यावत् अन्य लोगों के द्वारा भोगा हुआ है तो इस प्रकार के स्थंडिल में साधु साध्वी मल मूत्र का त्याग कर सकते हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा अस्सं (अस्सिं) पडियाए कयं वा कारियं वा पामिच्चियं वा छण्णं वा घट्ठं वा मट्ठं वा लित्तं वा समट्ठं वा संपधूमियं वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरिज्जा।

कठिन शब्दार्थ - कयं - किया, **कारियं** - कराया, **पामिच्चियं** - उधार लिया हो, **संपधूमियं** - अगरबत्ती आदि धूप से सुवासित किया हो।

भावार्थ - साधु या साध्वी इस प्रकार जाने कि किसी गृहस्थ ने साधु के लिये स्थंडिल बनाया है या बनवाया है अथवा उधार लिया है उस पर छत डाली है, संवारा है, विशेष रूप से संवारा है, लीपा पोता है, समतल किया है या दुर्गन्ध दूर करने के लिये धूप से सुवासित किया है इस तरह का अन्य कोई सदोष स्थंडिल हो तो तथा प्रकार के स्थंडिल में साधु साध्वी मल मूत्र को न परठे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, इह खलु गाहावई वा गाहावइपुत्ता वा कंदाणि वा मूलाणि वा जाव हरियाणि वा अंताओ वा बाहिं णीहरंति बहियाओ वा अंतो साहरंति अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - साहरंति - रखते हैं।

भावार्थ - साधु या साध्वी ऐसे स्थंडिल को जाने कि गृहपति या गृहपति के पुत्र साधु साध्वी के लिए कंद, मूल यावत् हरी वनस्पति को अंदर से बाहर निकालते हैं अथवा बाहर से अंदर रखते हैं अथवा अन्य कोई इसी प्रकार का सदोष स्थंडिल है तो तथा प्रकार के स्थंडिल में साधु साध्वी मल मूत्र का त्याग न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, खंधंसि वा पीढंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा अट्टंसि वा पासायंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

भावार्थ - साधु साध्वी इस प्रकार जाने कि जो स्थंडिल भूमि स्तम्भ पर है, पीठ पर है, मंच पर है, माले पर है, अटारी और प्रासाद पर है, अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य विषम स्थान पर है तो तथाप्रकार की स्थंडिल भूमि में साधु साध्वी मल मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा अणंतरहियाए पुढवीए ससिणिद्धाए पुढवीए ससरक्खाए पुढवीए मट्टियामक्कडाए चित्तमंताए सिलाए चित्तमंताए लेलुयाए कोलावासंसि वा दारुयंसि वा जीवपइट्ठियंसि वा जाव मक्कडासंताणयंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥ १६५॥

भावार्थ - साधु या साध्वी सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर, सचित्त रज से युक्त पृथ्वी पर, सचित्त मिट्टी से बनाई गई जगह पर, सचित्त शिला पर, सचित्त पत्थर के टुकड़ों पर, घुन लगे हुए काष्ठ पर अथवा दीमक आदि बेइन्द्रियादि जीवों से युक्त काष्ठ पर यावत् मकडी के जालों से युक्त भूमि पर मल मूत्र का त्याग न करे।

विवेचन - प्रस्तुत मूल पाठ से स्पष्ट होता है कि साधु साध्वी को सचित्त, जीवजन्तु एवं हरियाली से युक्त तथा सदोष भूमि पर मल मूत्र का विसर्जन नहीं करना चाहिये। उसे सदा अचित्त जीव जन्तु आदि से रहित निर्दोष एवं प्रासुक भूमि पर ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, इह खलु गाहावई वा गाहावइपुत्ता वा कंदाणि वा जाव बीयाणि वा परिसाडिंसु वा परिसाडिंति वा परिसाडिस्संति वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **परिसाडिंसु** - फैला रखे हैं, **परिसाडिंति** - फैलाते हैं, **परिसाडिस्संति**- फैलायेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी स्थण्डिल के संबंध में यह जाने कि जिस स्थान पर गृहस्थ या गृहस्थ पुत्रों ने कंदमूल यावत् बीज आदि को सूखाने आदि के लिये फैला रखे हैं, फैला रहे हैं या फैलायेंगे तो ऐसे स्थान पर अथवा इसी प्रकार के अन्य सदोष स्थानों पर साधु साध्वी मल मूत्र आदि का त्याग न करे।

से भिक्खु वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, इह खलु गाहावई वा गाहावइपुत्ता वा सालीणि वा वीहिणी वा मुग्गाणि वा मासाणि वा तिलाणि वा कुलत्थाणि वा जवाणि वा जवजवाणि वा पइरिंसु वा पइरिंति वा पइरिस्संति वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **सालीणि** - शाली (चावल), **वीहिणी** - ब्रीहि-गेहूँ आदि धान्य विशेष, **मुग्गाणि** - मूंग, **मासाणि** - उड़द, **कुलत्थाणि** - कुलत्थ, **जवाणि** - जौ, **जवजवाणि** - जवार, **पइरिंसु** - बोये हुए हैं, **पइरिंति** - बो रहे हैं, **पइरिस्संति** - बोएंगे।

भावार्थ - साधु या साध्वी स्थंडिल के विषय में यह जाने कि जहां पर गृहस्थ या गृहस्थ पुत्रों ने शाली, ब्रीहि, मूंग, उड़द, तिल, कुलत्थ, जौ और जवार आदि बोए हैं, बो रहे हैं या बोएंगे ऐसे स्थान पर या इसी प्रकार के अन्य सदोष स्थंडिल में मल मूत्र आदि का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा आमोयाणि वा घसाणि वा भिलुयाणि वा विज्जलयाणि वा खाणुयाणि वा कडयाणि वा पगडाणि वा दरीणि वा पदुग्गाणि वा समाणि वा विसमाणि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **आमोयाणि** - कचरे के पुंज, **घसाणि** - पोली भूमि, फटी हुई भूमि, **भिलुयाणि** - दरार युक्त भूमि, **विज्जलयाणि** - कीचड वाली जगह, **खाणुयाणि** - कटे हुए धान्य के ठूंठ, **कडयाणि** - ईक्षु आदि काट लेने पर उनके बचे हुए ठूंठ, **पगडाणि**- बडे बडे गहरे खड्डे, **दरीणि** - गुफाएं, **पदुग्गाणि** - किले की दीवार, **विसमाणि** - विषम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी स्थंडिल भूमि के विषय में यह जाने कि जहां पर कूड़े कर्कट के ढेर हों, भूमि फटी हुई या पोली हों, भूमि पर दरारें पड़ी हुई हों, कीचड हो, इक्षु आदि काट लेने पर उनके बचे हुए ठूंठ, स्तंभ या कटे हुए मक्की, जवार आदि धान्य के ठूंठ हो, किले की दीवार या प्राकार आदि हों, इस प्रकार के विषम स्थान हों तो ऐसे स्थानों पर अथवा इसी प्रकार के अन्य सदोष स्थानों पर मल मूत्र का विसर्जन न करे।

विवेचन - ऐसे विषम स्थानों में मल मूत्रादि का विसर्जन करने से संयम की हानि और आत्म-विराधना संभव है। अतः आगमकार ने ऐसे स्थानों पर परठने का निषेध किया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा माणुसरंधणाणि वा, महिसकरणाणि वा, वसहकरणाणि वा, अस्सीकरणाणि वा, कुक्कुडकरणाणि वा, मक्कडकरणाणि वा लावयकरणाणि वा वट्टयकरणाणि वा, त्तित्तिरकरणाणि वा, कवोयकरणाणि वा, कविंजलकरणाणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - माणुसरंधणाणि - भोजन पकाने के चूल्हे आदि, **महिसकरणाणि**- महिषकरण-भैंस आदि के आश्रय स्थान, **अस्सकरणाणि** - अश्वकरण-अश्वों का आश्रय स्थान अथवा अश्व शिक्षा देने का स्थान।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थंडिल के संबंध में जाने कि जहां मनुष्यों के भोजन पकाने के चूल्हे आदि सामान रखे हों तथा भैंस, बैल, घोड़ा, मुर्गा या कुत्ता, लावकपक्षी, बतक, तीतर, कबूतर, कपिंजल (पक्षी विशेष) आदि के आश्रय स्थान हों अथवा इनको शिक्षित करने के स्थान हों ऐसे अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थंडिल भूमि में मल मूत्र आदि का त्याग न करे।

विवेचन - ऐसे स्थानों पर लोक विरोध तथा प्रवचन विघात के भय से साधु साध्वी को मल मूत्र आदि का त्याग नहीं करना चाहिये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, वेहाणसट्ठाणेसु वा, गिद्धपिट्ठट्ठाणेसु वा, तरुपडणट्ठाणेसु वा, मेरुपडणट्ठाणेसु वा, विसभक्खणट्ठाणेसु वा, अगणिपडणट्ठाणेसु वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **वेहाणसट्ठाणेसु** - मनुष्यों को फांसी आदि पर लटकाने के स्थानों में, **गिद्धपिट्ठट्ठाणेसु** - जहां पर मरने की इच्छा से गिद्ध आदि पक्षियों के स्थान पर शरीर को रक्त आदि से संसृष्ट करके लेट जाते हों ऐसे स्थानों पर, **तरुपडणट्ठाणेसु** - तरुप्रपतन स्थान-वृक्ष से गिरकर मरते हों ऐसे स्थानों पर, **मेरुपडणट्ठाणेसु** - पर्वत से गिरने के स्थानों में, **विसभक्खणट्ठाणेसु** - जहां विष भक्षण कर आत्म हत्या करते हों ऐसे स्थानों पर, **अगणिपडणट्ठाणेसु** - अग्नि में गिर कर मरते हों ऐसे स्थानों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थंडिल को जाने जहां फांसी पर लटकाने के स्थान हों, गृद्ध आदि के सामने पड़ कर मरने के स्थान हों अथवा हाथी और ऊँट आदि के मरे हुए कलेवर हों उनमें घुसकर तथा शरीर पर लाल रङ्ग लगाना जिसे देखकर गिद्ध आदि पक्षी नोंच नोंच कर खा जाय इस प्रकार के मरण स्थान हों, वृक्ष से गिर कर मरने के स्थान हों, पर्वत से गिर कर मरने के स्थान हों, विषभक्षण करने के स्थान हों या आग में गिर कर मरने के स्थान हों, ऐसे और अन्य इसी प्रकार के आत्म हत्या करने के या मृत्युदंड देने के स्थान हों, वहां मल मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, आरामाणि वा, उज्जाणाणि वा, वणाणि वा, वणसंडाणि वा, देवकुलाणि वा, सभाणि वा, पवाणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **आरामाणि** - व्यक्तिगत बगीचा, **उज्जाणाणि** - सार्वजनिक बगीचा, **देवकुलाणि** - मन्दिर, **पवाणि** - प्याऊ।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थंडिल स्थान (भूमि) को जाने जहां उपवन, उद्यान, वन, वनखण्ड, देवकुल, सभा या प्याऊ हो अथवा इसी प्रकार के अन्य पवित्र या रमणीय स्थान हो वहां मलमूत्र का विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा अट्टालयाणि वा चरियाणि वा, दाराणि वा, गोपुराणि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **चरियाणि** - चर्या-प्राकार के अंदर आठ हाथ चौडी जगह।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थंडिल भूमि को जाने जहां कोट की अटारी, चर्या, द्वार, गोपुर-नगर के मुख्य द्वार हों ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थंडिल भूमि में मल मूत्र को न परठे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, तियाणि वा, चउक्काणि वा, चच्चराणि वा, चउमुहाणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **तियाणि** - तिराहे, **चउमुहाणि** - चतुर्मुख।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि किसी ऐसे स्थंडिल भूमि के विषय में जाने जहां तिराहे-तीन मार्ग मिलते हों, चौराहे-जहां चार मार्ग मिलते हों, चौक हो, चतुर्मुख स्थान हों ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में मल मूत्र का विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, इंगालडाहेसु वा, खारडाहेसु वा, मडयडाहेसु वा, मडयथूभियासु वा, मडयचेइएसु वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **इंगालडाहेसु** - जहां लकडियां जलाकर कोयले बनाये जाते हों, **खारडाहेसु** - क्षार, राख आदि के स्थान हों, **मडयडाहेसु** - मृतक जलाने के स्थान हों, **मडयथूभियासु** - मृतक स्तूप हों, **मडयचेइएसु** - मृतक चैत्य।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल भूमि को जाने जहां लकडियाँ जला कर कोयले बनाये जाते हों, क्षार या राख बनाये जाते हों, मृतक जलाए जाते हों, मृतक स्तूप हों या मृतक चैत्य हों ऐसे या इसी प्रकार के अन्य स्थानों पर मल मूत्र का त्यांग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, णईयाययणेसु वा, पंकाययणेसु वा, ओघाययणेसु वा, सेयणवहंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **णईयाययणेसु** - नद्यायतन-नदियों के स्थान-तीर्थस्थानों में, **पंकाययणेसु** - पंकायतन-नदी के पास कीचड़ का स्थान, **ओघाययणेसु** - ओघायतन-जलप्रवाह या तालाब के जल में प्रवेश के स्थान में, **सेयणवहंसि** - सेचनपथ-जलसिंचाई का मार्ग-नहर या नाली में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने जहां नदी के तट पर बने तीर्थ स्थान हों, पंक (कीचड़) बहुल स्थान हों, जलप्रवाह वाले पवित्र स्थान हों, जल सिंचन के मार्ग हों, ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थण्डिल भूमि हों वहां मल मूत्र का विसर्जन न करे।

विवेचन - ऐसे स्थानों पर मल मूत्र के त्याग से अप्काय की विराधना होती है तथा लोक दृष्टि में पवित्र माने जाने वाले स्थानों में मल मूत्र के विसर्जन से घृणा या प्रवचन की निन्दा होती है अतः ऐसे स्थंडिल में साधु साध्वी मल मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, णवियासु वा, मट्टियखाणियासु वा, णवियासु गोप्पलिहियासु वा, गवाणीसु वा, खाणीसु वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **णवियासु** - नवीन में, **मट्टियखाणियासु** - मिट्टी की खानों में, **गोप्पलिहियासु** - गायों के चरने के स्थानों में, **गवाणीसु** - सामान्य गायों के चरने के स्थानों में, **खाणीसु** - खानों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी ऐसे स्थंडिल को जाने जहां मिट्टी की नई खाने हों, नई गोचरभूमि हों, सामान्य गायों के चरने के स्थान हों, खाने हों, ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थंडिल भूमि में मल मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, डागवच्चंसि वा, सागवच्चंसि वा, मूलगवच्चंसि वा, हत्थंकरवच्चंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा॥

कठिन शब्दार्थ - **डागवच्चंसि** - डाल प्रधान शाक के खेतों में, जिन शाकों में डालियाँ प्रधान हो ऐसे खेतों में, **सागवच्चंसि** - पत्र प्रधान शाक के खेतों में, **मूलगवच्चंसि**- मूली आदि के खेतों में, **हत्थंकरवच्चंसि** - हस्तंकर वनस्पति के खेतों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल भूमि को जाने जहां डालप्रधान शाक के खेत हैं, पत्रप्रधान शाक के खेत हैं, मूली गाजर आदि के खेत हैं, हस्तंकर वनस्पति विशेष के खेत हैं, ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थंडिल भूमि में मल मूत्र का त्याग न करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण थंडिलं जाणिज्जा, असणवणंसि वा, सणवणंसि वा, धायइवणंसि वा, केयइवणंसि वा, अंबवणंसि वा, असोगवणंसि वा, णागवणंसि वा, पुण्णागवणंसि वा, चुण्णगवणंसि वा, अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु वा पत्तोवेएसु वा, पुप्फोवेएसु वा, फलोवेएसु वा, बीओवेएसु वा, हरिओवेएसु वा णो उच्चारपासवणं वोसिरिज्जा।। १६६ ॥

कठिन शब्दार्थ - असणवणंसि - अशन यानी बीजक वृक्ष के वन में, **सणवणंसि** - सण के वन में, **धायइवणंसि** - धातकी वृक्ष के वन में, **केयइवणंसि** - केतकी के वन में, **पुण्णागवणंसि** - पुन्नाग वृक्षों के वन में, **चुण्णगवणंसि** - चुन्नक (चुल्लक) वृक्षों के वन में, **पत्तोवेएसु** - पत्रों से युक्त पान आदि वनस्पति वाले स्थान में।

भावार्थ - साधु या साध्वी यदि ऐसे स्थंडिल को जाने जहाँ बीजक वृक्ष का वन है, पटसन का वन है, धातकी का वन है, केतकी का वन है, आम्र वन है, अशोक वन है, नाग वन है, पुंनाग वृक्षों का वन है, चुल्लक वृक्षों का वन है, ऐसे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थंडिल भूमि जो पत्रों, पुष्पों, फलों, बीजों या हरियाली से युक्त हों वहाँ मल मूत्र का विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सयपायवं वा परपायवं वा गहाय से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा अणावायंसि असंलोइयंसि अप्पपाणंसि जाव मक्कडासंताणयंसि अहारामंसि वा उवस्सयंसि तओ संजयामेव उच्चार पासवणं वोसिरिज्जा, उच्चारपासवणं वोसिरित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमे अणावायंसि जाव मक्कडासंताणयंसि अहारामंसि वा, झामथंडिलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि अचित्तंसि तओ संजयामेव उच्चारपासवणं परिट्ठविज्जा।।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जाव जइज्जासि त्ति बेमि।। १६७ ॥

कठिन शब्दार्थ - **सयपायवं** - स्व पात्रक, **परपायवं** - परपात्रक, **अणावायंसि** - अनापात-जहाँ लोगों का आवागमन न हो, **असंलोइयंसि** - जहाँ पर कोई देखता न हो, **अहारामंसि** - आराम बगीचे आदि में, **झामथंडिलंसि** - दग्ध भूमि में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - साधु या साध्वी स्वपात्र अथवा परपात्र को लेकर बगीचे या उपाश्रय के एकान्त स्थान में जाए जहाँ पर न कोई आता जाता हो और न कोई देखता हो तथा जहाँ पर द्वीन्द्रिय आदि जीव जन्तु यावत् मकड़ी के जाले भी न हों ऐसी अचित्त भूमि पर बैठकर साधु या साध्वी मल मूत्र का त्याग करे।

उसके पश्चात् वह उस पात्र को लेकर एकान्त स्थान में जाए, जहाँ कोई आता जाता न हो, न कोई देखता हो, जहाँ पर किसी जीव जन्तु की विराधना की संभावना न हो यावत् मकड़ी के जाले न हों ऐसी उद्यान-बाग या दग्ध भूमि वाले स्थंडिल भूमि में साधु साध्वी यतना पूर्वक मल मूत्र परठे।

यही साधु या साध्वी का समग्र आचार है जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप अर्थों में और पांच समितियों से युक्त है। साधु साध्वी को इसके पालन में सदैव-सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

त्ति बेमि अर्थात् सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि साधु साध्वी को एकान्त निर्दोष एवं निरवद्य भूमि में मल मूत्र का त्याग करना चाहिये।

उपर्युक्त सूत्र में यह बताया है कि साधु-साध्वी स्वपात्र में या परपात्र में उच्चारप्रस्रवण विसर्जन करके उसका परिस्थापन करने के लिए एकांत स्थान पर जावे। परिस्थापन भूमि नजदी या दूर भी होना संभव है। अतः वहाँ तक ले जाने में कुछ समय भी लग सकता है इसलिए परिस्थापन भूमि तक जाने के मध्यम कालमान को ग्रहण करके लगभग आधा मुहूर्त्त (२४ मिनिट) तक तो उस उच्चार प्रस्रवण में सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं लगती है। इस सूत्र पाठ का पर्यालोचन करके पूज्य बहुश्रुत गुरुदेव इस प्रकार फरमाया करते थे।

॥ तृतीय सप्तिका समाप्त ॥

❀ उच्चार-प्रस्रवण नामक दसवां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ सप्तिका

शब्द सप्तक नामक ग्यारहवां अध्ययन

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मुइंगसद्दाणि वा, णंदीसद्दाणि वा, झल्लरीसद्दाणि वा, अण्णयराणि वा, तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं विततताइं सद्दाइं कण्णसोयणपडियाए (कण्णसोयपडियाए) णो अभिसंधारिज्जा गमणाए ॥

कठिन शब्दार्थ-मुइंगसद्दाणि - मृदंग के शब्द, **विततताइं** - वितत-विस्तृत, **कण्णसोयणपडियाए**- कान से सुनने की प्रतिज्ञा से।

भावार्थ - साधु या साध्वी मृदंग शब्द, नंदी शब्द या झल्लरी (झालर) के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य वितत शब्दों को कान से सुनने के उद्देश्य से कहीं जाने का मन में संकल्प न करे।

विवेचन - वितत शब्द यानी तार रहित बाजों (वाद्यों) से होने वाला शब्द जैसे मृदंग, नंदी और झालर आदि के स्वर सुनने की लालसा से साधु साध्वी कहीं नहीं जाये।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - वीणासद्दाणि वा, विपंचीसद्दाणि वा, पिप्पीसग(बद्धीसग)सद्दाणि वा, तूणयसद्दाणि वा, पणयसद्दाणि वा, तुंबवीणियसद्दाणि वा, ढंकुणसद्दाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं ताइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए ॥

कठिन शब्दार्थ - तूणयसद्दाणि - तुनतुने के शब्द, **पणयसद्दाणि** - पणक (तंतु वाद्य) के शब्द, **तुम्बवीणियसद्दाणि** - तम्बूरे के शब्द, **ढंकुणसद्दाणि** - ढंकुण (वाद्य विशेष) के शब्द।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई शब्दों को सुनते हैं अर्थात् अनायास कानों में पड़ जाते हैं जैसे कि वीणा के शब्द, विपंची के शब्द, बद्धीसक के शब्द, तूनक के शब्द, पणक के शब्द, तुम्बवीणा के शब्द अथवा ढंकुण के शब्द या इसी प्रकार के विविध शब्दों को सुनने के लिये किसी भी स्थान पर जाने का मन में संकल्प न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - तार से बजने वाले वाद्य के शब्दों को तत कहते हैं। ऐसे वाद्यों के शब्दों को सुनने के लिए अपने स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर कहीं भी जावे नहीं, यहाँ तक कि वहाँ जाने का मन से संकल्प भी न करे। किन्तु अनायास ऐसे शब्द कान में पड़ जाय वे तो रोके नहीं जा सकते हैं किन्तु उन पर राग-द्वेष की परिणिती नहीं होने देनी चाहिए। ऊपर जो वाद्य के नाम बताये गये हैं उनमें से कितने ही प्रसिद्ध हैं और कितने ही अप्रसिद्ध हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - तालसद्दाणि वा, कंसतालसद्दाणि वा, लत्तियसद्दाणि वा, गोहियसद्दाणि वा किरिकिरियसद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं तालसद्दाइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए।

कठिन शब्दार्थ - **कंसतालसद्दाणि** - कांसे का शब्द।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - ताल के शब्द, कंसताल के शब्द, लत्तिका (कांसी) के शब्द, गोधिका (कांख और हाथ में रख कर बजाया जाने वाला वाद्य विशेष) के शब्द, किरिकिरि (बांस की छडी से बजने वाले वाद्य) के शब्द, इसी प्रकार के अन्य ताल शब्दों को सुनने के लिये किसी स्थान में जाने का मन से भी संकल्प नहीं करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - संखसद्दाणि वा, वेणुसद्दाणि वा, वंससद्दाणि वा, खरमुहीसद्दाणि वा, पिरिपिरियसद्दाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं झुसिराइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ १६८॥

कठिन शब्दार्थ - **पिरिपिरियसद्दाणि** - पिरिपिरिका (बांस आदि की नाली से बजने वाले वाद्य विशेष) के शब्द अथवा पिपुडी के शब्द, **झुसिराइं** - शुषिर-पोलार वाले वाद्य विशेष।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - शंख के शब्द, वेणु के शब्द, बांस के शब्द, खरमुखी के शब्द, पिरिपिरिका के शब्द या इसी प्रकार के शुषिर शब्दों को कानों से सुनने की दृष्टि से किसी स्थान में जाने का मन से भी संकल्प न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार प्रकार के वाद्य यंत्रों से निकलने वाले मनोज्ञ एवं मधुर शब्दों को कानों से श्रवण करने के प्रयोजन से किसी स्थान में जाने का निषेध किया है। क्योंकि ये शब्द मोह एवं विकार भाव जागृत करने वाले हैं। अतः साधु साध्वी को इन से सदा बच कर रहना चाहिये।

चार प्रकार के शब्द कहे गये हैं -

१. **वितत शब्द** - तार रहित बाजों से होने वाला शब्द जैसे-मृदंग, नंदी और झालर आदि के शब्द।

२. **तत शब्द** - तार वाले बाजों का शब्द जैसे - वीणा, सारंगी, तुनतुना, तम्बुरा आदि के शब्द।

३. **ताल शब्द** - ताली बजने से होने वाला या कांसी, ताल आदि के शब्द।

४. **शुषिर शब्द** - पोल या छिद्र में से निकलने वाले शब्द जैसे - बांसुरी, तुरही, खरमुही, बिगुल आदि के शब्द।

शब्द चार प्रकार के होने से वाद्य यंत्र भी चार प्रकार के कहे हैं। सभी वाद्य यंत्रों का इन चार भेदों में समावेश हो जाता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - वप्पाणि वा, फलिहाणि वा जाव सराणि वा, सागराणि वा, सरपंतियाणि वा, सरसरपंतियाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - वप्पाणि - वप्रा-खेत तथा खेत की क्यारियाँ, **फलिहाणि** - खाइयाँ।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई शब्दों को सुनते हैं - जैसे कि-खेतों में तथा खेत की क्यारियों में तथा खाइयों में होने वाले शब्द यावत् सरोवरों में, समुद्रों में, सरोवर की पंक्तियों में या सरोवर के बाद सरोवर की पंक्तियों के शब्द तथा अन्य इसी प्रकार के विविध शब्दों को कानों से सुनने की दृष्टि से जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - कच्छाणि वा, णूमाणि वा, गहणाणि वा, वणाणि वा, वणदुग्गाणि वा, पव्वयाणि वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पव्वयदुग्गाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **कच्छाणि** - कच्छों में, **वणदुग्गाणि** - दुर्गम वनों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे - कच्छों-जल बहुल प्रदेशों में, प्रच्छन्न स्थानों में, वृक्षों से सघन प्रदेशों में, वनों में, वन के दुर्गम प्रदेशों में, पर्वतों पर या पर्वतीय दुर्गम प्रदेशों में होने वाले शब्दों तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों को कान से सुनने के लिये जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - गामाणि वा, णगराणि वा, णिगमाणि वा, रायहाणाणि-आसम-पट्टण-संणिवेसाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे - गांवों में, नगरों में, निगमों में, राजधानी में, आश्रम, पत्तन और सन्निवेशों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिये जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - आरामाणि वा, उज्जाणाणि वा, वणाणि वा, वणसंडाणि वा, देवकुलाणि वा, सभाणि वा, पवाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - आरामागारों में, उद्यानों में, वनों में, वनखण्डों में, देवकुलों में, सभाओं में, प्याऊओं में अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - अट्टाणि वा, अट्टालयाणि वा, चरियाणि वा, दाराणि वा, गोपुराणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - अटारियों में, प्राकार से सम्बद्ध अट्टालयों में, नगर के मध्य स्थित राजमार्गों में, द्वारों या नगर द्वारों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने हेतु जाने का मन से भी संकल्प न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - तियाणि वा, चउक्काणि वा, चच्चराणि वा, चउम्मुहाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - तिराहों में, चौको में, चौराहों पर, चतुर्मुख मार्गों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने की प्रतिज्ञा से किसी भी स्थान में जाने का मन से भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - महिसकरणट्ठाणाणि वा, वसभकरणट्ठाणाणि वा, अस्सकरणट्ठाणाणि वा, हत्थिकरणट्ठाणाणि वा जाव कविंजलकरणट्ठाणाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्दों को सुनते हैं जैसे कि - भैंसशाला, वृषभशाला, घुडशाला, हस्तीशाला यावत् कपिंजल पक्षी आदि के रहने के स्थानों में होने वाले शब्दों या इसी प्रकार के अन्य शब्दों को सुनने हेतु कहीं जाने का मन में भी संकल्प न करे।

विवेचन - मूल में यहाँ 'करण' शब्द दिया है किन्तु कहीं पर इसके बदले '**सिक्खावण**' शब्द दिया है। जिसका अर्थ है शिक्षा देना-शिक्षित करना। यह अर्थ भी यहाँ पर संगत होता है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा - महिसजुद्धाणि वा, वसभजुद्धाणि वा, अस्सजुद्धाणि वा, हत्थिजुद्धाणि वा जाव कविंजलजुद्धाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - जहां भैंसों के युद्ध, सांडों के युद्ध, अश्व युद्ध, हस्ति युद्ध यावत् कपिंजल युद्ध होते हैं ऐसे स्थानों या इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के प्रयोजन से जाने का मन से भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ तंजहा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जूहियट्ठाणाणि वा, हयजूहियट्ठाणाणि वा, गयजूहियट्ठाणाणि वा, अण्णयराइं तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥ १६९॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - युगल स्थानों-वर वधू के मिलने के स्थानों (विवाह मण्डपों) में तथा वर वधू के लिये गाये जाने वाले गीतों के स्थानों में, अश्व युगल स्थानों में, हस्ति युगल स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने की दृष्टि से जाने का मन से भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव सुणेइ तंजहा - अक्खाइयट्ठाणाणि वा, माणुम्माणियट्ठाणाणि वा, महया आहयणट्ट-गीय-वाइय-तंति-तलताल-तुडिय-पडुप्पवाइयट्ठा-णाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **अक्खाइयट्ठाणाणि** - कथा कहने के स्थानों में, **माणुम्माणियट्ठा-णाणि**- मान-उन्मान-तोल माप करने के स्थानों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - कथा कहने के स्थानों में, तोल माप करने के स्थानों में अथवा जहां बड़े बड़े नृत्य, नाट्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, वादिन्त्र, ढोल बजाने आदि के आयोजन होते हैं ऐसे स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिये जाने का मन से भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव सुणेइ तंजहा - कलहाणि वा, डिंबाणि वा, डमराणि वा, दोरज्जाणि वा, वेररज्जाणि वा, विरुद्धरज्जाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

भावार्थ - साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि - जहां कलह होते हों, शत्रु सेना का भय हों, देश के भीतर या बाहर विप्लव हो, दो राज्यों के परस्पर विरोधी स्थान हों, वैर के स्थान हों, विरोधी राजाओं के राज्य हों तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों पर होने वाले शब्दों को सुनने की दृष्टि से जाने का मन से भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव सद्दाइं सुणेइ तंजहा - खुड्डियं दारियं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभुत्त मंडियालंकिय णिवुज्झमाणिं पेहाए एगं पुरिसं वा वहाए णीणिज्जमाणं पेहाए अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **खुड्डियं** - छोटी, **दारियं** - दारिका (बालिका), **परिभुत्त** - बहुत से लोगों से घिरी हुई, **मंडिय** - आभूषणों से मंडित, **अलंकिय** - अलंकृत, **णिवुज्झमाणिं**- घोड़े आदि पर बिठा कर ले जाती हुई को, **वहाए** - वध के लिए, **णीणिज्झमाणं** - ले जाते हुए को।

भावार्थ - साधु या साध्वी कई शब्दों को सुनते हैं जैसे कि - वस्त्राभूषणों से मण्डित और अलंकृत तथा बहुत से लोगों से घिरी किसी छोटी बालिका को घोड़े आदि पर बिठा कर ले जाया जा रहा हो अथवा किसी अपराधी को वध के लिए वध स्थान में ले जाया जा रहा हो तथा अन्य इसी प्रकार की किसी शोभायात्रा में होने वाले शब्दों को सुनने की उत्कंठा से वहां जाने का मन से भी संकल्प न करे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में किसी भी शोभा यात्रा में किये जाने वाले जयजयकार तथा वध आदि के प्रसंग पर धिक्कार सूचक नारों या हर्ष शोक सूचक शब्दों को सुनने के उद्देश्य से साधु या साध्वी को वहां जाने का निषेध किया गया है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णयराइं विरूवरूवाइं महासवाइं एवं जाणिज्जा तंजहा - बहुसगडाणि वा, बहुरहाणि वा, बहुमिलक्खूणि वा, बहुपच्चंताणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महासवाइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **महासवाइं** - महास्रव-महान् आस्रव के स्थानों को, **बहुमिलक्खूणि**- बहुम्लेच्छ उत्सवों में।

भावार्थ - साधु या साध्वी अन्य नाना प्रकार के महास्रव स्थानों को इस प्रकार जाने जैसे कि - जहां बहुत से शकट, बहुत से रथ, बहुत से म्लेच्छ, बहुत से सीमा प्रान्तीय लोग इकट्ठे हुए हों अथवा इसी प्रकार अन्य विविध महास्रव स्थान हों वहाँ कानों से शब्द सुनने की प्रतिज्ञा से जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा विरूवरूवाइं महुस्सवाइं एवं जाणिज्जा तंजहा- इत्थीणि वा, पुरिसाणि वा, थेराणि वा, डहराणि वा, मज्झिमाणि वा, आभरण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विभूसियाणि वा, गायंताणि वा, वायंताणि वा, णच्चंताणि वा, हसंताणि वा, रमंताणि वा, मोहंताणि वा, विउलं असणपाणखाइमसाइमं परिभुंजुंताणि वा, परिभाइंताणि वा, विच्छड्डियमाणाणि वा, विगोवयमाणाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं कण्णसोयणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

कठिन शब्दार्थ - **महुस्सवाइं** - महोत्सव, **थेराणि** - वृद्ध, **डहराणि** - बालक, **मज्झिमाणि** - मध्यम वय वाले-युवक, **आभरण विभूसियाणि** - आभरणों से विभूषित किये हुए, **वायंताणि** - बजाते हुए, **रमंताणि** - क्रीडा करते हुए, **मोहंताणि** - रति क्रीडा करते हुए, **परिभाइंताणि** - विभाग या वितीर्ण करते हुए, **विच्छड्डियमाणाणि** - अलग करते हुए, त्यागते हुए, **विगोवयमाणाणि** - तिरस्कार करते हुए।

भावार्थ - साधु या साध्वी नाना प्रकार के महोत्सवों को इस प्रकार जाने कि जहाँ स्त्रियाँ, पुरुष, वृद्ध, बालक और युवक अभूषणों से विभूषित होकर गीत गाते हों, वाद्य बजाते हों, नाचते हों, हंसते हों खेलते हों, रतिक्रीड़ा करते हों तथा विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों का उपभोग करते हों, परस्पर बांटते हों या परोसते हों, त्याग करते हों या तिरस्कार करते हों, उनके शब्दों को तथा इसी प्रकार के अन्य विविध महोत्सवों के शब्दों को कान से सुनने के प्रयोजन से वहाँ जाने का मन में भी संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो इहलोइएहिं सद्देहिं, णो परलोइएहिं सद्देहिं, णो सुएहिं सद्देहिं, णो असुएहिं सद्देहिं, णो दिट्ठेहिं सद्देहिं, णो अदिट्ठेहिं सद्देहिं, णो कंतेहिं सद्देहिं सज्जिज्जा णो रज्जिज्जा, णो गिज्झिज्जा, णो मुज्झिज्जा, णो अज्झोववज्जिज्जा॥

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जाव जइज्जासि त्ति बेमि॥ १७०॥

॥ सद्द सत्तिक्कओ समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **इहलोइएहिं** - इहलौकिक-मनुष्यादि कृत, **पारलोइएहिं** - पारलौकिक-हाथी घोड़ा आदि, **सद्देहिं** - शब्दों को, **सुएहिं** - श्रुत-सुने हुए, **दिट्ठेहिं** - दृष्ट देखे हुए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सज्जिज्जा - आसक्त हो, **रज्जिज्जा** - रक्त हो, **गिज्झिज्जा** - गृद्ध हो, **मुज्झिज्जा** - मोहित हो, **अज्झोववज्जिज्जा** - अत्यंत मूर्च्छित (आसक्त) हो।

भावार्थ - साधु या साध्वी इहलौकिक शब्दों में या पारलौकिक शब्दों में, श्रुत सुने हुए शब्दों में या अश्रुत शब्दों में, देखे हुए या बिना देखे हुए शब्दों में, इष्ट और कांत शब्दों में न तो आसक्त हो, न रक्त (राग भाव से लिप्त) हो, न गृद्ध हो, न मोहित हो, न मूर्च्छित हो और न ही अत्यासक्त हो।

यही साधु-साध्वी का समग्र आचार है यावत् उसमें यत्नशील रहे। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

विवेचन - साधु साध्वी को राग द्वेष बढ़ाने वाले किसी भी शब्द को सुनने की अभिलाषा नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि ऐसे शब्दों को सुनने से चित्त अशांत रहता है, स्वाध्याय एवं ध्यान में विघ्न पड़ता है अतः संयमनिष्ठ साधक को श्रोत्रइन्द्रिय को अपने वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिए और असंयम पोषक शब्दों को सुनने की लालसा का त्याग कर के अपनी साधना में संलग्न रहना चाहिए।

यद्यपि उपर्युक्त सूत्र में आये हुए **'सज्जेज्जा'** (आसक्त हो) आदि पद एकार्थक लगते हैं, किन्तु गहराई से सोचने पर इनका पृथक् अर्थ प्रतीत होता है जैसे आसेवना भाव आसक्ति है, मन में प्रीति होना रक्तता/अनुराग है, दोष जान लेने (उपलब्ध होने) पर भी निरन्तर आसक्ति गृद्धि है और अगम्यगमन का आसेवन करना अध्युपपन्न होना है।

।। चतुर्थ सप्तिका समाप्त ।।

❀ शब्द सप्तक नामक ग्यारहवां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचम सप्तिका

रूप सप्तक नामक बारहवां अध्ययन

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं रूवाइं पासइ तंजहा - गंथिमाणि वा, वेढिमाणि वा, पूरिमाणि वा, संघाइमाणि वा, कट्ठकम्माणि वा, पोत्थकम्माणि वा, चित्तकम्माणि वा, मणिकम्माणि वा, दंतकम्माणि वा, पत्तच्छिज्जकम्माणि वा, विविहाणि वा, वेढिमाइं जाव अण्णयराइं वा, तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं चक्खुदंसणपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए॥

एवं णायव्वं जहा सद्दपडियाए सव्वा वाइत्तवज्जा रूवपडियाए वि॥ १७१॥

॥ दुवालसमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - गंथिमाणि - गूंथे हुए फूलों आदि से बने हुए, स्वस्तिक आदि, **वेढिमाणि** - वस्त्र आदि से बनी हुई पुतली आदि, **पूरिमाणि** - पूरिम निष्पन्न पुरुषाकृति, जिनके अंदर कुछ भरने से पुरुषाकार बन जाते हैं ऐसे पदार्थ, **संघाइमाणि** - अनेक एकत्रित वर्णों से निर्मित चोलक आदि, **कट्ठकम्माणि** - काष्ठ कर्म, **पोत्थकम्माणि** - पुस्तक कर्म, **पत्तच्छिज्जकम्माणि** - पत्र छेदन कर्म से बने रूपादि, **चक्खुदंसणपडियाए** - चक्षुदर्शन प्रतिमा-आंखों से देखने की प्रतिज्ञा (इच्छा) से, **सद्दवडियाए** - शब्द प्रतिज्ञा से, **वाइत्त** - वाद्यों (वादिन्त्रों) को, **वज्जा** - छोड़ कर, **रूवपडियाए** - रूप प्रतिज्ञा से।

भावार्थ - साधु साध्वी अनेक प्रकार के रूपों को देखते हैं जैसे कि - गूंथे हुए फूलों से निष्पन्न स्वस्तिक आदि को, वस्त्रादि से निष्पन्न पुतली आदि को, जिनके अंदर कुछ पदार्थ भरने से पुरुषाकृति बन जाती हो ऐसी पुरिम निष्पन्न पुरुषाकृति को, संघात निष्पन्न चोलक आदि को, काष्ठ कर्म से निर्मित रथ आदि को, पुस्तकर्म से निर्मित पुस्तक आदि को, चित्रकर्म से निर्मित चित्रादि को, विविध मणिकर्म से निर्मित स्वस्तिक आदि को, दंत कर्म से निर्मित दंत पुत्तलिका को, पत्र छेदन कर्म से निर्मित विविध पत्रादि को अथवा अन्य विविध प्रकार से निष्पन्न नाना पदार्थों के रूपों को आंखों से देखने की इच्छा से उस ओर जाने का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन में भी विचार न करे। इसी प्रकार जैसे ग्यारहवें अध्ययन में शब्द संबंधी प्रतिमा का वर्णन किया गया है वैसे ही यहां सभी वाद्यों को छोड़ कर रूप प्रतिमा के विषय में भी जानना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वी को विभिन्न प्रकार के रूपों को उत्सुकता पूर्वक देखने का निषेध कियां गया है।

'एवं णेयव्वं.....सूत्र के द्वारा आगमकार ने उन सभी पदार्थों के रूपों को उत्कंठा पूर्वक देखने का निषेध किया है जो ग्यारहवें शब्द सप्तक अध्ययन में शब्द श्रवण निषेध के रूप में वर्णित है सिर्फ चार प्रकार के वाद्य शब्दों को छोड़ा गया है।

।। पंचम सप्तिका समाप्त ।।

❀ रूप सप्तक नामक बारहवां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ सप्तिका

परक्रिया सप्तक नामक तेरहवां अध्ययन

१. परकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं सायए णो तं णियमे।

२. सिया से परो पाए आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

३. सिया से परो पायाइं संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

४. सिया से परो पायाइं फुसिज्ज वा रएज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

५. सिया से परो पायाइं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा मक्खिज्ज वा अब्भंगिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

६. सिया से परो पायाइं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

७. सिया से परो पायाइं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पहोलिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

८. सिया से परो पायाइं अण्णयरेण विलेवणजाएण आलिंपिज्ज वा विलिंपिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

९. सिया से परो पायाइं अण्णयरेण धूवणजाएण धूविज्ज वा पधूविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

१०. सिया से परो पायाओ खाणुं वा कंटयं वा णिहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

११. सिया से परो पायाओ पूयं वा सोणियं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **परकिरियं** - परक्रिया, **अज्झत्थियं** - आध्यात्मिकी, **संसेइयं** - कर्म-संश्लेषकारिणी, **आमज्जिज्ज** - एक बार पोंछे, **पमज्जिज्ज** - बार बार पोंछे, **संवाहिज्ज**- दबाए, मालिश करे, **पलिमद्दिज्ज** - विशेष रूप से दबाए, **फुसिज्ज** - स्पर्श करे, **रएज्ज** - रंगे, **मक्खिज्ज** - चुपडे, **भिलिंगिज्ज** - मालिश-मर्दन करे, **उल्लोढिज्ज** - उबटन करे, **उव्वलिज्ज** - लेपन करे।

भावार्थ - १. "पर" अर्थात् गृहस्थ के द्वारा आध्यात्मिकी अर्थात् साधु साध्वी के शरीर पर की जाने वाली काय व्यापार रूप क्रिया कर्म बंधन का कारण है अतः साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन और काया से उसे कराए।

२. कदाचित् कोई गृहस्थ पुरुष और स्त्री साधु साध्वी के पैरों को वस्त्रादि से पोंछे अथवा बार-बार पोंछ कर साफ करे तो साधु साध्वी उस क्रिया को मन से भी न चाहे तथा वचन और काया से भी न कराए।

३. कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को मर्दन करे या दबाए तथा बार-बार मर्दन करे या दबाए तो साधु साध्वी उसकी मन से भी इच्छा न करे, न वचन और काया से कराए।

४. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को फूंक मारने हेतु स्पर्श करे तथा रंगे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से भी नहीं कराए।

५. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को तेल, घी या चर्बी से चुपडे, मसले तथा मालिश करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे तथा वचन और काया से न कराए।

६. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण से उबटन करे या लेप करे तो साधु साध्वी मन से भी न चाहे तथा वचन और काया से भी नहीं कराए।

७. कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को प्रासुक शीतल जल से या उष्णजल से धोए अथवा अच्छी तरह से धोए तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे, न वचन और न काया से कराए।

८. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों का इसी प्रकार के किन्हीं अन्य विलेपन द्रव्यों से एक बार या बार-बार आलेपन विलेपन करे तो साधु साध्वी उसमें मन से भी रुचि न ले और न ही वचन और काया से उसे कराए।

९. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों को सुगन्धित पदार्थ के धूप से धूपित करे या प्रधूपित करे तो उसे मन से न चाहे, न ही वचन और काया से उसे कराए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों में लगे हुए खूंटे या कांटे आदि को निकाले या उसे शुद्ध करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए।

११. कदाचित् यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के पैरों में लगे रक्त और मवाद को निकाले या उसे निकाल कर शुद्ध करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

विवेचन - "पर" अर्थात् गृहस्थ पुरुष या स्त्री के द्वारा साधु साध्वी के शरीर पर की जाने वाली परिचर्या या क्रिया-चेष्टा, व्यापार या कर्म, परक्रिया कहलाती है। ऐसी पर-क्रिया कराना साधु साध्वी के लिए मन, वचन और काया से निषिद्ध है। परक्रिया कर्म बंध का कारण तब होती है जब गृहस्थ के द्वारा की जाते समय साधु साध्वी उसमें रुचि ले, मन से चाहे या कह कर करालें या कायिक संकेत द्वारा करावे। अतः साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए। प्रस्तुत सूत्र में गृहस्थ द्वारा की जाने वाली दस प्रकार की पाद (पैर) परिकर्म रूप परक्रिया का निषेध किया है।

१. सिया से परो कायं आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

२. सिया से परो कायं लोद्धेण वा संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

३. सिया से परो कायं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा मक्खिज्ज वा अब्भंगिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

४. सिया से परो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

५. सिया से परो कायं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पहोइज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

६. सिया से परो कायं अण्णयरेणं विलेवणजाएणं आलिंपिज्ज वा विलिंपिज्ज वा, णो तं सायए, णो तं णियमे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. सिया से परो कायं अण्णयरेण धूवणजाएण धूविज्ज वा पधूविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

भावार्थ - १. कदाचित् कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री साधु साध्वी के शरीर को एक बार या बार-बार पोंछ कर साफ करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

२. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर को एक बार या बार-बार दबाए तथा विशेष रूप से मर्दन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे, न वचन और काया से कराए।

३. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर तेल, घी, नवनीत या वसा चुपडे, मसले या मालिश करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

४. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण का उबटन करे, लेपन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

५. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर को प्रासुक ठंडे जल से या गर्म जल से धोए या बार-बार अच्छी तरह से धोए तो साधु साध्वी उसे मन से न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

६. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर किसी प्रकार का विलेपन एक बार करे अथवा बार-बार विलेपन का लेप करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी चाहे और न वचन एवं काया से भी न कराए।

७. कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर को किसी प्रकार के सुगन्धित धूप से धूपित या प्रधूपित करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वी के लिए काय (शरीर) परिकर्म रूप परक्रिया का सर्वथा निषेध किया गया है। गृहस्थ से ऐसी काय परिकर्म रूप परिचर्या कराने से अनेक प्रकार के दोष लगने की संभावनाएँ रहती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. सिया से परो कायंसि वणं आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

२. सिया से परो कायंसि वणं संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

३. सिया से परो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा मक्खिज्ज वा अब्भंगिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

४. सिया से परो कायंसि वणं लोद्देण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

५. सिया से परो कायंसि वणं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पहोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

६. सिया से परो कायंसि वणं अण्णयरेणं विलेवणजाएणं आलिंपिज्ज वा विलिपिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

७. सिया से परो कायंसि वणं अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूविज्ज वा पधूविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

८. सिया से परो कायंसि वणं अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदिज्ज वा विच्छिंदिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

९. सिया से परो कायंसि वणं अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

कठिन शब्दार्थ - वणं - व्रण (घाव) को, **सत्थजाएणं** - शस्त्र विशेष से।

भावार्थ - १. कदाचित् कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण (घाव-फोडे) को एक बार पोंछे या बार-बार पोंछ कर साफ करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए।

२. कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण को दबाएं या अच्छी तरह से दबा कर मर्दन करे तो साधु साध्वी मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण के ऊपर तेल, घी, नवनीत या वसा चुपडे, मसले या मर्दन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

४. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण आदि विलेपनों से आलेपन विलेपन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

५. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण को प्रासुक ठंडे जल से या गर्म जल से एक बार धोए या बार-बार धोए तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही उसे वचन एवं काया से कराए।

६. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुये व्रण (घाव-फोडे) को किसी एक प्रकार के या विविध प्रकार के विलेपनों से आलेपन या विलेपन करे तो साध साध्वी मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

७. यदि कोई गृहस्थ साधु-साध्वी के शरीर पर हुए व्रण को किसी सुगन्धित पदार्थ से एक बार धूपित करे या बार-बार धूपित करे तो साधु साध्वी मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराये।

८. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण को किसी प्रकार के शस्त्र विशेष से छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और वचन एवं काया से भी न कराए।

९. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए व्रण को शस्त्र विशेष द्वारा छेदन करके या विशेष रूप से छेदन करके उसमें से मवाद या रक्त निकाले तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और वचन एवं काया से भी न कराए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गृहस्थ पुरुष या स्त्री द्वारा साधु या साध्वी के शरीर पर हुए घाव के परिकर्म (सेवा) कराने का निषेध किया गया है।

१. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, आमज्जिज्ज वा, पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, संवाहिज्ज वा पलिमद्दिज्ज वा, णो तं सायए णो तं णियमे।

३. सिया से परो कायंसि गंडं वा अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, तेल्लेण वा, घएण वा, णवणीएण वा, वसाए वा, मक्खिज्ज वा अब्भिंगिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

४. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, लोद्देण वा, कक्केण वा, चुण्णेण वा, वण्णेण वा उल्लोढिज्ज वा उव्वलिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

५. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पधोविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

६. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, अण्णयरेणं विलेवणजाएणं आलिंपिज्ज वा विलिंपिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

७. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा भगंदलं वा अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूविज्ज वा पधूविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

८. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदलं वा, अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदिज्ज वा विच्छिंदिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

९. सिया से परो कायंसि गंडं वा, अरइयं वा, पुलइयं वा, भगंदल वा अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

कठिन शब्दार्थ - **गंडं** - गंड-गांठ, फोड़ा या कंठमाला रोग, **अरइयं** - अरइ - अर्श, मस्सा, बवासीर, **पुलक** - छोटा फोडा या फुंसी, **भगंदलं** - भगंदर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - १. कदाचित् कोई गृहस्थ पुरुष या स्त्री साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड (गांठ फोड़ा), अर्श (मस्सा), पुलक (छोटा फोडा) अथवा भगंदर को एक बार अथवा बार बार पोंछ कर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और वचन एवं काया से भी न कराए।

२. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड, अर्श, पुलक या भगंदर को दबाए, मर्दन करे या परिमर्दन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे न वचन एवं काया से ही कराए।

३. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड अर्श, पुलक या भगंदर पर तेल, घी, नवनीत या वसा चुपडे मले या मालिश करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन व काया से करावे।

४. यदि कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए गंड, अर्श, पुलक या भगंदर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण से थोड़ा या बार-बार लेपन करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे न वचन और काया से कराए।

५. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को प्रासुक ठंडे या गर्म जल से एक बार या बार बार धोए तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

६. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गण्ड, अर्श, पुलक या भगंदर पर किसी एक प्रकार के या विविध प्रकार के विलेपनों से आलेपन या विलेपन करे तो साधु साध्वी मन से भी उसकी चाहना न करे और न वचन और काया से कराए।

७. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गण्ड, अर्श, पुलक या भगंदर को किसी सुगन्धित पदार्थ से एक बार धूपित करे या बार-बार धूपित करे तो साधु साध्वी मन से भी उसकी चाहना न करे और न वचन और काया से कराए।

८. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड, अर्श, पुलक या भगंदर का किसी शस्त्र विशेष से छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे, तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से कराए।

९. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर पर हुए गंड, अर्श, पुलक या भगन्दर का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी शस्त्र विशेष से छेदन या भेदन करके उसमें से मवाद या रक्त निकाले तो साधु-साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से भी कराए।

१. सिया से परो कायाओ सेयं वा जल्लं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

२. सिया से परो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

३. सिया से परो दीहाइं वालाइं, दीहाइं रोमाइं, दीहाइं भमुहाइं, दीहाइं कक्खरोमाइं, दीहाइं वत्थिरोमाइं, कप्पिज्ज वा संठविज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे।

४. सिया से परो सीसाओ लिक्खं वा जूयं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

कठिन शब्दार्थ - **सेयं** - स्वेद-पसीना, **जल्लं** - जल्ल-मैल, **अच्छिमलं** - आंख का मल-मैल, **वालाइं** - बालों को, **रोमाइं** - रोमों को, **भमुहाइं** - भौहों को, **कक्खरोमाइं** - कांख के रोमों को, **वत्थिरोमाइं** - बस्ति (गुह्य प्रदेश) के रोमों को, **कप्पिज्ज** - काटे, **संठविज्ज** - संवारे, **लिक्खं** - लीखों को, **जूयं** - जुओं को।

भावार्थ - १. कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी के शरीर से निकले पसीने या मैल युक्त पसीने को पौंछे या साफ करे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

२. कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी के आँख का मैल, कान का मैल, दांत का मैल या नख का मैल निकाले तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

३. यदि कोई गृहस्थ साधु के सिर के लंबे बालों को, लंबे रोमों को, दीर्घ भौहों को, कांख के लम्बे रोमों को और गुह्य प्रदेश के दीर्घ रोमों को काटे या संवारे तो साधु साध्वी मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

४. यदि कोई गृहस्थ साधु साध्वी के सिर से लीखें या जूंओं को निकाले या सिर को साफ करे तो साधु साध्वी मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिया से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावित्ता पायाइं आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा एवं हिट्ठिमो गमो पायाइ भाणियव्वो, सिया से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावित्ता, हारं वा अद्धहारं वा उरत्थं वा, गेवेयं वा, मउडं वा, पालंबं वा, सुवण्ण-सुत्तं वा, आविहिज्ज वा पिणहिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे॥

कठिन शब्दार्थ - **अंकंसि** - गोद में, **पलियंकंसि** - पलंग पर, **तुयट्टावित्ता** - लिटा कर या बिठा कर, **उरत्थं** - वक्ष स्थल पर पहने जाने वाले आभूषण।

भावार्थ - कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी को अपनी गोद में या पलंग पर लिटा कर उसके पैरों को एक बार या बार बार पोंछे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए। इसके बाद पैरों से संबंधित जो पूर्वोक्त पाठ कहा गया है, वह सब पाठ यहाँ भी कहना चाहिए। कदाचित् कोई गृहस्थ साधु साध्वी को अपनी गोद में या पलंग पर लिटा कर उसको हार (अठारह लड़ी वाला) अर्द्धहार (नौ लड़ी वाला), वक्ष स्थल पर पहनने योग्य आभूषण, गले का आभूषण, मुकुट, लम्बी माला, सुवर्ण सूत्र बांधे या पहनाए तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन और काया से कराए।

सिया से परो आरामंसि वा उज्जाणंसि वा णीहरित्ता वा पविसित्ता वा पायाइं आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे एवं णेयव्वा अण्णमण्णकिरिया वि॥ १७२॥

कठिन शब्दार्थ - **अण्णमण्ण किरिया** - अन्योन्य क्रिया।

भावार्थ - कदाचित् कोई गृहस्थ साधु को आराम या उद्यान में ले जा कर या प्रवेश करा कर उनके पैरों को एक बार या बार-बार पोंछ कर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए। इस प्रकार जो पैरों से सम्बन्धित वर्णन पूर्व में कहा गया है वैसा पाठ और यहाँ पर भी कह देना चाहिए।

इसी प्रकार साधुओं और साध्वियों की अन्योन्य क्रिया-पारस्परिक क्रियाओं के विषय में भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् साधु साध्वी परस्पर भी पूर्वोक्त क्रियाओं का आचरण न करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिया से परो सुद्धेणं वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे सिया से परो असुद्धेणं वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे, सिया से परो गिलाणस्स सचित्ताणि कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा हरियाणि वा खणित्तु वा कड्ढित्तु वा कड्ढावित्तु वा तेइच्छं आउट्टाविज्जा णो तं सायए णो तं णियमे। कडुवेयणा पाणभूयजीवसत्ता वेयणं वेइंति।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणी वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए समिए सया जए सेयमिणं मण्णिज्जासि त्ति बेमि॥ १७३॥

॥ तेरहमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **सुद्धेणं** - शुद्ध, **वइबलेणं** - वचन बल-मंत्रादि के बल से, **तेइच्छं** - चिकित्सा, **खणित्तु** - खोद कर, **कड्ढित्तु** - निकाल कर, **कडुवेयणा** - कटुक वेदना, **सेयं** - कल्याणकारी।

भावार्थ - यदि कोई गृहस्थ शुद्ध वचन बल (मंत्र बल) से अथवा अशुद्ध वचन बल से साधु साध्वी की चिकित्सा करनी चाहे अथवा वह गृहस्थ किसी रोगी साधु साध्वी की चिकित्सा सचित्त कंद, मूल, छाल या हरी वनस्पति को खोद कर या बाहर निकाल कर या निकलवा कर चिकित्सा करनी चाहे तो साधु साध्वी उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

यदि साधु साध्वी के शरीर में कठोर वेदना हो तो यह विचार कर उसे समभाव से सहन करे कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अपने कृत अशुभ कर्मों के अनुसार कटुक वेदना का अनुभव करते हैं।

यह साधु साध्वी का समग्र आचार है जिसके लिये सभी अर्थों से युक्त ज्ञानादि सहित और समितियों से समित होकर सदा प्रयत्नशील रहे और इसी को अपने लिये श्रेयस्कर माने-ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गृहस्थ द्वारा विविध प्रकार से की जाने वाली परिचर्या का मन वचन और काया से त्याग का निरूपण किया गया है।

पर क्रिया के समान ही अन्योन्य क्रिया (साधुओं साध्वियों की पारस्परिक क्रिया) का भी निषेध किया गया है।

पूर्वकृत अशुभ कर्मों के कारण ही जीव असाता-दुःख का अनुभव करता है अतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधक को ऐसा जानकर समभावों से दुःखों को सहन करते हुए साधना में लीन रहना चाहिए।

जैसा कि कहा है –

पुनरपि सहनीयो दुःखपाकस्तवायं, न खलु भवति नाशः कर्मणां सञ्चितानाम्।
इति सहगणयित्वा यद्यदायाति सम्यक्, सदसदिति विवेको अन्यत्र भूयः कुतस्ते?॥

अर्थात् – ज्ञानी फरमाते हैं कि हे साधक! तुझे जो दुःख प्राप्त हुआ है उसे समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए क्योंकि बन्धे हुए कर्म समय पर अपना फल देते ही हैं। फल दिये बिना नष्ट नहीं होते हैं। ये सब कर्म तेरे ही किये हुए हैं। इन सबका कर्ता तू ही है इसलिये उन कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त होने वाले सुख दुःख को तुझे समभाव पूर्वक सहन करना चाहिए क्योंकि सत्-असत् का जैसा विवेक तुझे इस मनुष्य भव में मिला है, दूसरी गतियों में ऐसा विवेक मिलना सम्भव नहीं है इसलिये विवेक पूर्वक तुझे वेदना को समभाव से सहन करना चाहिए। क्योंकि किये हुए कर्मों का फल पहले या पीछे तुझे ही भोगना पडेगा।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से इस प्रकार कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ। अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

॥ छठी सप्तिका पूर्ण॥

❀ परक्रिया सप्तक नामक तेरहवां अध्ययन समाप्त ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम सप्तिका

अन्योन्यक्रिया नामक चौदहवां अध्ययन

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णमण्णकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं सायए णो तं णियमे।

सिया से अण्णमण्णं पाए आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा णो तं सायए णो तं णियमे। सेसं तं चेव।

एयं खलु भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जइज्जासि त्ति बेमि॥ १७४॥

॥ चउद्दसमं अज्झयणं समत्तं॥

भावार्थ - साधु या साध्वी की निष्प्रयोजन अन्योन्य क्रिया-परस्पर की जाने वाली पादप्रर्माजन आदि क्रिया कर्म बंधन की जननी है, अतः साधु या साध्वी इसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से ही उसे कराए।

कदाचित् साधु या साध्वी परस्पर एक दूसरे के पैरों को कारण के बिना एक बार पोंछ कर या बार-बार पोंछ कर साफ करे तो इसे मन से भी न चाहे, न वचन और काया से कराए। शेष वर्णन तेरहवें अध्ययन में प्रतिपादित पाठों के समान समझना चाहिये।

यह साधु साध्वी का समग्र आचार है जिसके पालन में वह ज्ञानादि एवं पांच समितियों से युक्त होकर सदैव प्रयत्नशील रहे। ऐसा मैं कहता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पारस्परिक क्रिया का निषेध किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि बिना कारण से एक साधु दूसरे साधु से अथवा एक साध्वी दूसरी साध्वी से बिना शारीरिक कारण के परस्पर पैर दबाने, मालिश आदि करने की क्रिया न करावे। इसका यह अर्थ नहीं है कि साधु साध्वी को बीमार साधु साध्वी की सेवा शुश्रूषा एवं वैयावृत्य के लिए निषेध किया गया है। आगमकार का उद्देश्य साधु को स्वावलंबी बनाने का है उसके जीवन में आलस्य एवं प्रमाद न आए और वह आरामतलब हो कर दूसरों पर आधारित न रहे, इस दृष्टि से ही निष्कारण पारस्परिक क्रिया करने का निषेध किया गया है।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से इस प्रकार कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुखारविन्द से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ अपनी बुद्धि से कुछ नहीं कहता हूँ।

॥ सातवीं सप्तिका संपूर्ण॥ अन्योन्य क्रिया नामक चौदहवां अध्ययन समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय चूला

भावना नामक पन्द्रहवां अध्ययन

प्रस्तुत भावना नामक पन्द्रहवें अध्ययन में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जन्म एवं जीवन चर्या का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा स्वीकृत-उपदिष्ट पांच महाव्रत की पच्चीस भावनाओं का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का महत्त्व भगवान् के दिव्य जीवन की अलौकिकता का दिग्दर्शन कराते हुए उनके साधना मय जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने का है। अतः आगमकार फरमाते हैं –

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था, तंजहा - हत्थुत्तराहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तराहिं सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए णिरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे, साइणा भगवं परिणिव्वुए॥ १७५ ॥

कठिन शब्दार्थ - **पंच** - पांच, **हत्थुत्तरे** - हस्तोत्तर-उत्तराफाल्गुनी, **चुए** - च्युत, **साहरिए** - संहरण हुआ, **अणंते** - अनन्त, **अणुत्तरे** - अनुत्तर-प्रधान, **अव्वाघाए** - निर्व्याघात, जिसमें रुकावट न पड़े, **णिरावरणे** - निरावरण-आवरण रहित, **कसिणे** - कृत्स्न-संपूर्ण, **साइणा** - स्वाति नक्षत्र, **परिणिव्वुए** - परिनिर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

भावार्थ - उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। यथा-भगवान् का उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में देवलोक से च्यवन हुआ, च्यव कर वे गर्भ में उत्पन्न हुए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ से गर्भान्तर में संहरण किये गये। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही भगवान् का जन्म हुआ। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही सब ओर से सर्वथा मुण्डित होकर अगार (गृह) का त्याग कर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में भगवान् को संपूर्ण प्रतिपूर्ण, निर्व्याघात (जिसमें पर्वत आदि किसी की रुकावट न हो) निरावरण (आवरण रहित) अनन्त और अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ और स्वाति नक्षत्र में भगवान् परिनिर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र के सातवें वक्षस्कार में ज्योतिष शास्त्र में २८ नक्षत्र माने गये हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती।

समवायाङ्ग सूत्र के सत्तावीसवें समवाय में बतलाया गया है कि अभिजित नक्षत्र को छोडकर सत्तावीस नक्षत्रों से व्यवहार होता है। ज्योतिष शास्त्र अर्थात् पंचाङ्ग में सत्तावीस नक्षत्र ही माने गये हैं। अभिजित् नक्षत्र के कुछ अंश को उत्तराषाढा में तथा कुछ अंश को श्रवण में समाविष्ट कर दिया गया है।

तीर्थङ्कर भगवन्तों का जन्म जब नक्षत्र उच्च स्थिति में होते हैं उसी समय होता है। इसी प्रकार देवलोक से च्यवना (देवलोक से च्यव कर गर्भ में आना) जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) भी होता है। यहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की पांच बातों के लिये मूल में शब्द दिया है '**हत्थुत्तरे**'। जिसका अर्थ टीकाकार ने इस तरह दिया है -

"**हस्त उत्तरो यासाम् उत्तरफाल्गुनीनां ता हस्तोत्तराः**"

अर्थ - जिस नक्षत्र के बाद हस्त नक्षत्र आता है वह नक्षत्र यहाँ लिया गया है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के बाद में हस्त नक्षत्र आता है इसलिये उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र यहाँ लिया गया है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की पांच बातें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुई थी। इन पांच बातों में गर्भ संहरण को भी शामिल लिया गया है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बीस सागरोपम की स्थिति भोग कर दसवें देवलोक से च्यव कर ब्राह्मण कुण्डनगर के ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ में आये थे। उस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था, इसको च्यवन कल्याणक कहते हैं। तीर्थंकरों का जन्म क्षत्रिय वंश राजकुल में ही होता है इसलिए शक्रेन्द्र की आज्ञा से उनके पदाति अनीकाधिपति हरिनैगमषी देव द्वारा देवानन्दा की कुक्षि से भगवान् के जीव का संहरण करके क्षत्रियकुण्डग्राम के महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला की कुक्षि में रखा था इसको गर्भ संहरण कहते हैं। यदि गर्भ संहरण को भी कल्याणक माना जाय तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छह कल्याणक होते हैं। यदि इसको कल्याणक न माना जाय तो पांच कल्याणक होते हैं। सामान्यतया सभी तीर्थंकरों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के पांच कल्याणक ही होते हैं यथा- १. च्यवन कल्याणक (गर्भ कल्याणक) २. जन्म कल्याणक ३. दीक्षा कल्याणक ४. केवलज्ञान कल्याणक और ५. निर्वाण-मोक्ष कल्याणक।

इस अवसर्पिणीकाल में प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव का राज्याभिषेक देवों ने किया था क्योंकि इससे पहले राजा बनने की परिपाटी नहीं थी इसलिये भगवान् ऋषभदेव का राज्याभिषेक भी कल्याणक माना गया। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के पांच कल्याणक अर्थात् सर्वार्थसिद्ध महाविमान से च्यवकर माता के गर्भ में आना - गर्भकल्याणक, जन्म कल्याणक, राज्याभिषेक कल्याणक, दीक्षा कल्याणक और केवलज्ञान कल्याणक। ये पांच कल्याणक उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में हुए और निर्वाण (मोक्ष कल्याणक अभिजित् नक्षत्र में हुआ।

इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे तीर्थङ्करों की अपेक्षा कुछ विशेषता होने के कारण छह कल्याणक हुए। यथा - १. च्यवन कल्याणक (गर्भ कल्याणक) २. संहरण कल्याणक ३. जन्म कल्याणक ४. दीक्षा कल्याणक ५. केवलज्ञान कल्याणक, ये पांच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। छठा निर्वाण कल्याणक स्वाति नक्षत्र में हुआ।

यदि भगवान् ऋषभदेव का राज्याभिषेक और भगवान् महावीर स्वामी का गर्भ संहरण इन दोनों को कल्याणक न माना जाय तो दूसरे तीर्थङ्करों की तरह ही भगवान् ऋषभदेव के और भगवान् महावीर स्वामी के भी पांच-पांच कल्याणक ही हुए हैं। दोनों प्रकार की मान्यताओं में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। परन्तु पांच कल्याणक वाली मान्यता आगमानुकूल है अतएव उचित लगती है। गर्भ संहरण तो केवल गर्भ का स्थानान्तरण होना है अतः यह कोई कल्याणक नहीं है। इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेव के राज्याभिषेक को कल्याणक मानना उचित प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यह तो काल चक्र की परिस्थिति विशेष है।

मूल पाठ में "**तेणं कालेणं तेणं समएणं**" शब्द दिया है "**तेणं कालेणं**" शब्द का अर्थ है इस अवसर्पिणी काल का "दुस्समसुसमा" नामक चौथा आरा। '**तेणं समएणं**' का अर्थ है इस चौथे आरे का अन्तिम भाग अर्थात् जिस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की विद्यमानता थी।

महावीर स्वामी के लिये मूल पाठ में '**भगवं**' विशेषण दिया है। जिसका अर्थ है भगवान् "**भगं भाग्य विद्यते यस्य सः भगवान्**" भग अर्थात् भाग्य जिसके हो वह भगवान्। अमरकोश में "भग" शब्द के नौ अर्थ दिये हैं यथा -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रियां यशसि सौभाग्ये योनौ कान्तौ महिम्नि च।

सूर्ये संज्ञा विशेषे च मृगाङ्केऽपि भगः स्मृतः॥

अर्थ - श्री (लक्ष्मी), यश, सौभाग्य, योनि, कान्ति, महिमा, सूर्य, संज्ञा विशेष और मृगाङ्क (चन्द्रमा) इन नौ अर्थों में 'भग' शब्द का प्रयोग होता है। धार्मिकता की दृष्टि से 'भग' शब्द के छह अर्थ कहे गये हैं यथा -

ऐश्वरस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः।

धर्मस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इतीङ्गना॥

अर्थ - सम्पूर्ण ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री (लक्ष्मी), धर्म और प्रयत्न-पुरुषार्थ। इस प्रकार 'भग' शब्द के पन्द्रह अर्थ हो जाते हैं। ये पन्द्रह ही अर्थ भगवान् में घटित हो जाते हैं। योनि का अर्थ है चौरासी लाख योनि का अन्त कर मुक्ति प्राप्त करने वाले।

भगवान् महावीर स्वामी के लिये जो विशेषण दिये गये हैं उनमें सर्वप्रथम '**श्रमण**' विशेषण दिया गया है। '**श्रमु तपसि खेदे च**' इस तप और खेद अर्थ वाली 'श्रमु' धातु से श्रमण शब्द बना है '**श्राम्यति तपस्यतीति श्रमणः**' जिसका अर्थ यह होता है कि - जो तपस्या करे और जगज्जीवों के खेद को जाने, वह 'श्रमण' कहलाता है।

अथवा '**समणे**' शब्द की संस्कृत छाया '**समन**' भी होती है जिसका अर्थ यह है कि जिसका मन शुभ हो जो समस्त प्राणियों पर समभाव रखे उसे 'समन' कहते हैं। जो ऐश्वर्यादि से युक्त हो अर्थात् पूज्य हो उसे 'भगवान्' कहते हैं।

राग द्वेषादि आन्तरिक शत्रु दुर्जेय हैं। उनका निराकरण करने से जो महान् वीर-पराक्रमी है वह महावीर कहलाता है। भगवान् का यह गुणनिष्पन्न नाम देवों द्वारा दिया गया था। जैसा कि आगे इसी आचाराङ्ग सूत्र में मूल पाठ में आ जायेगा। यथा-"**भीमं भयभेरवं उरालं अचले परीसहं-सहइ इति कट्टु देवेहिं से नामं कयं समणे भगवं महावीरे।**"

अर्थात् दीक्षा लेने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने देव, मनुष्य और तिर्यंच कृत भयंकर से भयंकर घोरातिघोर परीषह उपसर्गों को अचल (अडोल-चलित न होते हुए) रह कर समभाव से सहन किये थे इसलिये देवों ने उनका नाम 'महावीर' दिया।

समणे भगवं महावीरे, इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमदुस्समाए समाए वीइक्कंताए, दुसमसुसमाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाए बहुवीइक्कंताए, पण्णहत्तरीए वासेहिं मासेहिं च अद्धणवमेहिं सेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे, आसाढ सुद्धे तस्स णं आसाढ सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, महाविजयसिद्धत्थ पुप्फुत्तरपवर पुंडरीयदिसासोवत्थिय वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवगाइं आउयं पालइत्ता, आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवेणं दीवे, भारहेवासे दाहिणड्ढ भरहे दाहिणमाहणकुंडपुरसंणिवेसंमि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए सीहुब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिसि गब्भं वक्कंते।

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था, चइस्सामित्ति जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, चयमाणे ण जाणेइ, सुहुमे णं से काले पण्णत्ते॥

कठिन शब्दार्थ - **वीइक्कंताए** - व्यतीत हो जाने पर, **पण्णहत्तरीए** - पिचहत्तर, **अद्धणवमेहिं**- साढे आठ, **आसाढसुद्धे** - आषाढ शुक्ल, **जोगं** - चन्द्रमा का योग, **उवागएणं**- आ जाने पर, **महाविजय सिद्धत्थपुप्फुत्तरवरपुंडरीय दिसासोवत्थियवद्धमाणाओ** - महाविजय सिद्धार्थ पुष्पोत्तरवर पुंडरीक दिशा स्वस्तिक वर्द्धमान विमान से, **पालइत्ता** - पालन कर, **आउक्खएणं**- देवायु का क्षय होने पर, **ठिइक्खएणं** - स्थिति का क्षय होने पर, **भवक्खएणं**- भव का क्षय होने पर, **चुए** - च्यवे, **चइत्ता** - च्यव कर, **सीहब्भवभूएणं** - सिंह की तरह, **वक्कंते** - उत्पन्न हुए।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस अवसर्पिणी काल के सुषम-सुषमा नामक आरक, सुषमा आरक, सुषम दुषमा आरक के व्यतीत होने पर और दुषम सुषमा नामक चौथे आरक का अधिकांश काल व्यतीत हो जाने पर जब ७५ वर्ष और साढे आठ माह शेष रहे गये थे तब ग्रीष्म ऋतु के चौथे माह आठवें पक्ष आषाढ शुक्ला षष्ठी की रात्रि को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर महाविजय सिद्धार्थ, पुष्पोत्तरवर पुण्डरीक दिशा स्वस्तिक वर्द्धमान नामक महाविमान से बीस सागरोपम की आयु पूर्ण करके देवायु, देव स्थिति, देवभव का क्षय होने पर वहाँ से च्यवे। च्यव कर इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के दक्षिणार्द्ध भरत के दक्षिण ब्राह्मण कुंडपुर सन्निवेश में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी की कुक्षि में सिंह की तरह गर्भ रूप में उत्पन्न हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर उस समय तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) से युक्त थे वे यह जानते थे कि मैं देवलोक से च्यव कर मनुष्य लोक में जाऊँगा, मैं वहाँ से च्यव कर गर्भ में आया हूँ परन्तु वे च्यवन समय को नहीं जानते थे क्योंकि वह काल अत्यंत सूक्ष्म होता है।

विवेचन - प्रत्येक कालचक्र २० कोटाकोटि सागरोपम का होता है। इसके दो भेद हैं - १. अवसर्पिणी और २. उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी काल १० कोटाकोटि सागरोपम का होता है और उत्सर्पिणी काल भी १० कोटाकोटि सागरोपम का होता है। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में ६-६ आरक (आरे) होते हैं। उत्सर्पिणीकाल के छह आरे इस प्रकार हैं - १. दुष्षम दुष्षमा २. दुष्षमा ३. दुष्षम सुषमा ४. सुषम दुष्षमा ५. सुषमा ६. सुषम सुषमा। अवसर्पिणी काल के छह आरे इस प्रकार हैं- १. सुषम-सुषमा २. सुषमा ३. सुषम-दुष्षमा ४. दुष्षम सुषमा ५. दुष्षमा और ६. दुष्षम दुष्षमा। इसमें चौथा आरा ४२ हजार वर्ष कम एक कोटा-कोटि सागरोपम का होता है। इस अवसर्पिणी काल के तीन आरे बीत जाने के बाद जब चौथे आरे के ७५ वर्ष ८॥ माह शेष रहे थे तब दसवें प्राणत नामक देवलोक से भगवान् महावीर स्वामी का जीव वहाँ का आयुष्य पूरा करके भरत क्षेत्र (भारत वर्ष) के दक्षिण ब्राह्मण कुंडपुर नगर में ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवानंदा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।

क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर तथा माहणकुंड ग्राम नगरादि के लिए जो ग्राम नगर दो शब्द आये हैं, उसके लिए 'पहले वह गांव था और बाद में वसति के बढ़ जाने से नगर हो गया' तथा गांव के होते हुए भी नगर की रौनक वाला, ऐसा गुरु भगवन्त फरमाते हैं।

भगवान् महावीर स्वामी जिस समय गर्भ में आए, उस समय मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान इन तीन ज्ञान से युक्त थे। वे अपना च्यवना जानते थे अर्थात् मैं अमुक समय में च्यवूंगा, ऐसा जानते थे। अब मैं च्यव गया हूँ, ऐसा भी जानते थे। किन्तु अब मैं च्यव रहा हूँ, ऐसा नहीं जानते थे क्योंकि च्यवन समय सूक्ष्म होता है। छद्मस्थ का उपयोग अन्तर्मुहूर्त्त का होता है। इसलिये एक समय, दो समय आदि समयों को छद्मस्थ नहीं जान सकता है।

एक वर्ष में अपेक्षा विशेष से तीन ऋतुएँ होती हैं यथा - १. ग्रीष्म ऋतु (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ) २. वर्षा ऋतु (श्रावण, भादवा, आसोज और कार्तिक) ३. शरद हेमन्त ऋतु (मिगसर, पौष, माघ और फाल्गुन)। जैसे -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे, आसाढ सुद्धे तस्स णं आसाढ सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं।

अर्थ - ग्रीष्म ऋतु का चौथा मास आठवा पक्ष आषाढ सुद छठ। इस मूल पाठ से आगमकार की यह मान्यता स्पष्ट होती है कि महीने का कृष्ण पक्ष (बदपक्ष) पहले आता है और शुक्ल पक्ष (सुद पक्ष) बाद में आता है। परन्तु वर्तमान पञ्चांगकारों की मान्यता इसके विपरीत है वे सुद पक्ष को पहले मानते हैं और बद पक्ष को बाद में, इसीलिए पंचाङ्ग में पूर्णमासी को १५ का अंक लिखते हैं और अमावस्या को ३० का अङ्क लिखते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि अमावस्या को महीना पूरा हुआ। इसीलिये चैत्र सुदी एकम (प्रतिपदा) को वर्ष का प्रारम्भ करते हैं और चैत्र वदी अमावस्या को वर्ष पूरा करते हैं। विचार करने पर यह विचित्रता मालूम होती है कि चैत्र मास का सुद पक्ष तो पहले पूरा हो गया और चैत्र मास का वद पक्ष ग्यारह मास के बाद आवे यह विचित्रता और विडम्बना नहीं है तो और क्या है? अतः आगमकारों की यह मान्यता कि-महीने का बद पक्ष पहले आता है और सुद पक्ष बाद में आकर महीना पूरा हो जाता है। बीच में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता है। यह मान्यता शुद्ध और सही है।

प्रश्न - कोटाकोटि किसे कहते हैं ?

उत्तर - अर्धमागधी भाषा में '**कोडा-कोडी**' शब्द आता है, जिसका संस्कृत में 'कोटी कोटी' अथवा '**कोटाकोटि**' शब्द बनता है। हिन्दी में इसको 'करोड़ाकरोड़ी' कहते हैं। कुछ लोग इसको हिन्दी में 'क्रोड़ाक्रोड़ी' लिख देते हैं। परन्तु वह शब्द अशुद्ध है।

एक कोटि (करोड़) को एक कोटि (करोड़) से गुणा करने पर एक कोटा कोटि होता है इस प्रकार जितने करोड़ हों उनको एक करोड से ही गुणा करना चाहिए। जैसे कि मोहनीय कर्म की स्थिति ०७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है तो सीत्तर करोड को एक करोड से गुणा करना चाहिए। इसी प्रकार एक काल चक्र बीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम का होता है। यहाँ पर भी बीस करोड़ को एक करोड़ से ही गुणा करना चाहिए। कुछ लोग बीस करोड़ को बीस करोड़ से गुणा करते हैं वह तरीका अशुद्ध है क्योंकि उत्सर्पिणी के दस कोड़ाकोड़ी और अवसर्पिणी के दस कोड़ाकोड़ी इन को अलग-अलग गुणा करने से गुणन फल (२००) दो सौ कोड़ाकोड़ी आता है और इनके आरों को अलग-अलग गुणा करने से गुणन फल साठ (६०) कोड़ाकोड़ी आता है तथा बीस करोड को बीस करोड से गुणा करने पर गुणन फल चार सौ कोड़ाकोड़ी आता है। इस प्रकार गुणनफल में फरक आने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह तरीका अशुद्ध है। चाहे सम्मिलित गुणा करे, चाहे अलग-अलग गुणा करे तो भी गुणन फल एक ही आना चाहिए वही तरीका शुद्ध और सही है।

तओ णं समणे भगवं महावीरे हियाणुकंपएणं देवेणं जीयमेयं त्ति कट्टु जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोय बहुले तस्स णं आसोय बहुलस्स तेरसी पक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं बासीहिं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिणमाहणकुंडपुरसंणिवेसाओ उत्तरखत्तियकुंडपुरसंणिवेसंसि णायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगुत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करित्ता, सुभाणं पुग्गलाणं पक्खेवं करित्ता कुच्छिंसि गब्भं साहरइ, जे वि य से तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे तं पि य दाहिणमाहणकुंडपुरसंणिवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायण गोत्ताए कुच्छिंसि गब्भं साहरइ॥

कठिन शब्दार्थ - **हियाणुकंपएणं** - हित और अनुकम्पा से, **एयं** - यह, **जीयं** - जीताचार, **वासाणं** - वर्षा काल का, **तेरसी पक्खेणं** - त्रयोदशी के दिन, **राइंदिएहिं** - अहोरात्र-रातदिन के, **णायाणं** - ज्ञातवंशीय, **वासिट्ठसगुत्ताए** - वाशिष्ठ गोत्रीय, **खत्तियाणीए**- क्षत्रियाणी, **अवहारं** - हटाना, दूर करना, **पक्खेणं** - प्रक्षेप करने से, **साहरइ** - संहरण करता है, स्थापित करता है।

भावार्थ - देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के हित और अनुकम्पा करने वाले हरिणैगमिषी देव ने 'यह मेरा जीत आचार है' ऐसा सोच कर वर्षा काल के तीसरे मास, पांचवें पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर ८२ रात्रि दिन व्यतीत होने और ८३ वें दिन की रात को दक्षिण ब्राह्मण कुंडपुर सन्निवेश से उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश में ज्ञात वंशीय क्षत्रियों में प्रसिद्ध काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ठ गोत्रीय पत्नी त्रिशला महारानी के गर्भ के अशुभ पुद्गलों को हटा कर उनके स्थान पर शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करके उसकी कुक्षि में उस गर्भ को रखा और त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में जो गर्भ था उसे लेकर दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीय देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् महावीर स्वामी के गर्भ को देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से निकाल कर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में रखने और त्रिशला महारानी के गर्भ को देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित करने का वर्णन है। गर्भ परिवर्तन की यह घटना आश्चर्य जनक अवश्य है परन्तु असंभव नहीं है।

दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि तीर्थङ्कर भगवन्तों का गर्भ संहरण नहीं होता है किन्तु यह मान्यता उनके छद्मस्थ आचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थों के आधार पर है क्योंकि वीतराग भगवन्तों द्वारा प्ररूपित आचाराङ्ग आदि द्वादश वाणी को वे मान्य करते ही नहीं हैं। श्वेताम्बर परम्परा भगवान् महावीर के जीव का गर्भ संहरण को एक आश्चर्य भूत एवं संभवित घटना मानती है। इस आचाराङ्ग में ही नहीं किन्तु स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग तथा आचार्यों द्वारा रचित आवश्यक निर्युक्ति और कल्प सूत्र आदि में इस गर्भ संहरण की घटना का स्पष्ट उल्लेख है। भगवती सूत्र शतक पांच उद्देशक तेतीस में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं - "**गोयमा! देवाणंदा माहणी मम अम्मगा**।" अर्थात् हे गौतम! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है।

वैदिक परम्परा के मुख्य पुराण श्रीमद् भागवत में भी गर्भ परिवर्तन का उल्लेख मिलता है कि जब कंस वसुदेव की सन्तानों को नष्ट कर देना चाहता था तब विश्वात्मा योग माया को आदेश देता है कि देवकी रानी का गर्भ रोहिणी के उदर में रखे तब विश्वात्मा के आदेश निर्देश से योग माया देवकी का गर्भ रोहिणी के गर्भ में रख देती है।

वर्तमान कालीन वैज्ञानिकों ने भी परीक्षण करके गर्भ परिवर्तन को संभव माना है और अनेकों बार उन्होंने ऐसा किया भी है।

स्थानाङ्ग सूत्र के दसवें ठाणे में दस आश्चर्यों का वर्णन किया गया है। उसमें भगवान् महावीर स्वामी के जीव के गर्भ संहरण का भी उल्लेख है इस प्रकार के आश्चर्य कभी-कभी अनन्त काल से अवसर्पिणी काल में ही हुआ करते हैं। जब होते हैं तब इसी प्रकार के दस आश्चर्यों में से कभी कम और यावत् कभी उत्कृष्ट दस ही आश्चर्य हो जाते हैं, दस से अधिक नहीं। इस अवसर्पिणी काल में दसों ही आश्चर्य हुए थे। कभी कभी होने के कारण जनता में यह आश्चर्य रूप माने जाते हैं। ये असंभव घटनाएँ नहीं हैं परन्तु आश्चर्यकारी अवश्य है। इस अवसर्पिणी काल को दसों ही आश्चर्य हो जाने के कारण हुण्डावसर्पिणी (विकृष्ट अवसर्पिणी) कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था, साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिएमि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ समणाउसो!

कठिन शब्दार्थ - **तिण्णाणोवगए** - त्रिज्ञानोपगत-तीन ज्ञान से युक्त, **साहरिज्जिस्सामि**- संहरण किया जाऊँगा।

भावार्थ - आयुष्मन् श्रमणो! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गर्भावास में तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) से युक्त थे। अतः वे यह सब जानते थे कि - 'मैं इस स्थान से संहरण किया जाऊँगा, मेरा संहरण हो रहा है और मैं संहृत किया जा चुका हूँ।'

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गर्भावास में तीन ज्ञान के धनी थे अतः वे अपने गर्भ संहरण के संबंध में हुई समस्त क्रियाओं को जानते थे।

च्यवन और संहरण में बहुत अंतर है। च्यवन स्वतः होता है और संहरण परकृत। च्यवन एक समय में हो सकता है किन्तु संहरण में असंख्यात समय लगते हैं अतः अवधिज्ञानी उसे जान सकता है।

इस प्रसङ्ग पर यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि - गर्भ का संहरण करते समय गर्भ को कोई कष्ट तो नहीं होता है?

समाधान - भगवती सूत्र शतक पांच उद्देशक चार में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गर्भ संहरण से गर्भ के जीव को कोई कष्ट नहीं होता है। यह क्रिया देव द्वारा की जाती है इसलिये गर्भस्थ जीव को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचता है। उसे सुखपूर्वक एक गर्भ से दूसरे गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

तेणं कालेणं तेण समएणं तिसलाए खत्तियाणीए अह अण्णया कयाइ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीइक्कंताणं जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसी पक्खेणं, हत्थुत्तराहिं जोगमुवागएणं समणं भगवं महावीरं अरोग्गा अरोग्गं पसूया।

कठिन शब्दार्थ - **अरोग्गं** - रोग रहित, **पसूया** - प्रसूता-जन्म दिया।

भावार्थ - उस काल उस समय में त्रिशला क्षत्रियाणी ने अन्यदा किसी समय नौ मास साढे सात रात्रि व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष में अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सुखपूर्वक जन्म दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - बालक-बालिका को जन्म देते समय प्रायः माता को कष्ट होता ही है तथा बालक बालिका को भी कष्ट होता है परन्तु तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय माता को और पुत्र को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है दोनों (माता और पुत्र) स्वस्थ नीरोग और प्रसन्नचित्त रहते हैं।

जं णं राइं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोग्गा-अरोग्गं पसूया, तं णं राइं भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासि देवेहिं च देवीहिं च उवयंतेहिं च उप्पयंतेहिं च एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहक्कहए उप्पिंजलभूए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - उवयंतेहिं - देवलोक से भूमि पर आते समय, **उप्पयंतेहिं** - मेरुपर्वत पर जाते समय, **देवुज्जोए** - देव उद्योत, **देवसण्णिवाए** - देव सन्निपात, **देवकहक्कहए** - देवकहकहक, **उप्पिंजलभूए** - उत्पिंजलभूत-अट्टहास एवं उद्योत से युक्त।

भावार्थ - जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने सुखपूर्वक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को जन्म दिया उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों तथा देवियों के देवलोक से आने और मेरूपर्वत पर जाने से एक महान् दिव्य देव उद्योत हो गया, देवों के एकत्रित होने से वह रात्रि उनके कोलाहल, अट्टहास एवं उद्योत से युक्त हो गयी।

विवेचन - स्थानाङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे के प्रथम उद्देशक में इस प्रकार कहा गया है- यथा - **"तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोए सिया, तंजहा-अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेसु पव्वयमाणेसु, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।"**

अर्थ - तीर्थङ्कर भगवन्तों के जन्म के समय में दीक्षा के समय में और केवलज्ञानोत्पत्ति के समय में तीनों लोकों में उद्योत अर्थात् प्रकाश हो जाता है। इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जन्म के समय में भी केवल क्षत्रियकुण्डपुर में ही नहीं अपितु क्षण भर के लिए तीनों लोकों में प्रकाश फैल गया। सारा ही संसार यहाँ तक कि नारकीय जीव भी क्षण भर के लिये आनन्द एवं उल्हास का अनुभव करते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जन्म के पहले त्रिशला महारानी के चौदह स्वप्नों का देखना, गर्भ का परिपालन, गर्भ का हलनचलन बन्द होने से माता का आर्तध्यान करना, भगवान् महावीर द्वारा मातृपितृ भक्ति सूचक प्रतिज्ञा करना, जृम्भक देवों द्वारा सिद्धार्थ राजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के भवन में निधानों का संग्रह करना, धन-धान्य आदि की वृद्धि के कारण माता-पिता द्वारा वर्द्धमान नाम रखने का विचार। सिद्धार्थ राजा द्वारा हर्षवश पारितोषिक देना, प्रीतिभोज करना आदि बातों का वर्णन टीका ग्रन्थों में है।

जं णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोग्गा-अरोग्गं पसूया तं णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च, गंधवासं च, चुण्णवासं च, पुप्फवासं च, हिरण्णवासं च, रयणवासं च वासिंसु॥

कठिन शब्दार्थ - **अमयवासं** - अमृत वर्षा, **रयणवासं** - रत्न वर्षा, **वासिंसु** - वृष्टि की।

भावार्थ - जिस रात्रि को त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सुख पूर्वक जन्म दिया उस रात्रि को बहुत से देवों और देवियों ने एक बड़ी भारी अमृत वर्षा, सुगंधित पदार्थों की वर्षा और चूर्ण, पुष्प, चांदी सोना और रत्नों की वृष्टि की।

विवेचन - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जन्म के समय सर्वत्र महाप्रकाश हुआ और चारों जाति के देवों के मन में हर्ष एवं उल्लास छा गया। प्रभु के जन्म पर हर्ष विभोर होकर उन्होंने अमृत, सुगंधित पदार्थ, चाँदी सोना एवं रत्नों आदि की वर्षा की।

जं णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोग्गा-अरोग्गं पसूया, तं णं रयणिं भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सुइकम्माइं तित्थयराभिसेयं च करिंसु।

कठिन शब्दार्थ - सुइकम्माइं - शुचि कर्म, **तित्थयराभिसेयं** - तीर्थंकराभिषेक।

भावार्थ - जिस रात्रि को त्रिशला महारानी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सुखपूर्वक जन्म दिया उस रात्रि को भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तथा देवियों ने श्रमण भगवान् महावीर का शुचिकर्म और तीर्थंकराभिषेक किया।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् के जन्मोत्सव का उल्लेख किया गया है। भगवान् का जन्म होने पर छप्पन दिशा कुमारियों ने भगवान् का जन्म महोत्सव मनाया और शुचि कर्म किया तथा चोसठ इन्द्रों ने भगवान् को मेरु पर्वत के पण्डक वन में ले जाकर उनका जन्माभिषेक किया, इसका विस्तृत वर्णन जम्बूद्वीप पण्णत्ति सूत्र के पांचवें वक्षस्कार में है।

जओ णं पभिइ भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगए तओ णं पभिइ तं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संखसिलप्पवालेणं अईव अईव परिवड्ढइ।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो एयमट्ठं जाणित्ता णिव्वत्तदसाहंसि वोक्कंतंसि सूइभूयंसि विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति उवक्खडावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिवग्गं उवणिमंति उवणिमंतित्ता बहवे समणमाहणकिवणवणिमगाहिं भिच्छुंडगपंडरगाईण विच्छड्डेंति विग्गोवेंति विस्साणेंति दायारेसु णं दाणं पज्जभाइंति विच्छड्डित्ता विग्गोवित्ता विस्साणित्ता दायारेसु णं दाणं पज्जभाइत्ता मित्तणाइसयणसंबंधिवग्गं भुंजावेंति भुंजावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिवग्गेण इमेयारूवं णामधिज्जं कारवेंति, जओ णं पभिइ इमे कुमारे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे आहूए तओ णं पभिइ इमं कुलं, विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संखसिलप्पवालेणं अईव अईव परिवड्ढइ तं होउ णं कुमारे 'वद्धमाणे'॥

कठिन शब्दार्थ - **पभिइ** - प्रभृति-तब से लेकर, **संखसिलप्पवालेणं** - शंख शिला और प्रवाल से, **णिव्वत्तदसाहंसि** - दस दिनों के निवृत होने पर, **मित्तणाइसयण संबंधिवग्गं**- मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबंधि वर्ग को, **उवक्खडाविंति** - भोजन तैयार करवाते हैं, **भिच्छुंडग पंडरगाईणं** - शरीर पर भस्म आदि लगा कर भिक्षा मांगने वाले, **विच्छड्डेंति** - भोजन कराते हैं, **विग्गोवेंति** - विगोपन करते हैं, **विस्साणेंति** - विशेष रूप से आस्वादन करते हैं, **दायारेसु** - याचकों में, **पज्जभाइंति** - बांटते हैं, **आहूए**- आया है।

भावार्थ - जब से श्रमण भगवान् महावीर स्वामी त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में आए तब से उस कुल में प्रचुर मात्रा में चांदी, सोना, धन, धान्य, माणिक्य, मोती, शंख शिला और प्रवाल आदि की अत्यंत वृद्धि होने लगी।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के माता पिता ने यह बात जान कर उनके जन्म के दस दिन व्यतीत हो जाने के बाद ग्यारहवें दिन शुद्ध हो जाने पर प्रचुर मात्रा में अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थ बनवाए। चतुर्विध आहार तैयार हो जाने पर उन्होंने अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और संबंधी वर्ग को आमंत्रित किया और बहुत से शाक्य आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणों ब्राह्मणों द्ररिद्रों भिक्षाचरों, भिक्षाभोजी, शरीर पर भस्म रमाकर भिक्षा मांगने वालों आदि को भी भोजन कराया। उनके लिए भोजन सुरक्षित रखाया, याचकों में दान बांटा। इस प्रकार शाक्यादि भिक्षाजीवियों को भोजनादि का वितरण करवा कर अपने मित्र ज्ञाति स्वजन संबंधी वर्ग को भोजन कराया। उन्हें भोजन कराने के पश्चात् उनके समक्ष कुमार के नामकरण के संबंध में इस प्रकार कहा - जिस दिन से यह बालक त्रिशला महारानी की कुक्षि में गर्भ रूप से आया उसी दिन से हमारे कुल में चांदी, सोना, धन, धान्य, माणिक्य, मोती, शंख शिला प्रवाल आदि पदार्थों की प्रचुर मात्रा में अभिवृद्धि हो रही है। अत: इस कुमार का नाम 'वर्द्धमान' हो अर्थात् इसका गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान' रखा जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का गुणनिष्पन्न नाम देने का उल्लेख किया गया है और 'वर्द्धमान' नाम रखने का कारण बताया है। "**णिव्वत्तदसाहंसि**" के बदले किसी किसी प्रति में ऐसा पाठ मिलता है यथा -

"एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते निव्वत्तिए असूईजायककम्मकरणे संपत्ते बारसाहदिवसे.....।"

अर्थ - ग्यारहवाँ दिन व्यतीत होने पर अशुचित जातककर्म से निवृत्त होने पर बारहवाँ दिन आने पर.....।

राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला दोनों ने अपने-अपने सभी इष्ट सज्जन, परिजन, मित्रों तथा ससुराल पक्ष के सभी सगे सम्बन्धियों को भोजन के लिए आमंत्रित किया। साथ ही समस्त प्रकार के भिक्षाजीवी भिक्षुकों को भी भोजन दिया। इन सब बातों से महाराजा और महारानी की उदारता के साथ-साथ अनुकम्पाशीलता का भी परिचय मिलता है। राजा रानी दोनों तेईसवें तीर्थंकर पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के श्रावक-श्राविका थे। फिर भी उन्होंने अन्य मत के श्रमण भिक्षुओं आदि को बुलाकर दान दिया। इससे स्पष्ट होता है कि आगम में श्रावक श्राविका के लिए अनुकम्पा दान आदि का निषेध नहीं किया गया है। सिर्फ गुरु बुद्धि से दान देने का निषेध किया गया है। गृहस्थ का द्वार बिना किसी भेद भाव के सबके लिए खुला रहता है। प्रत्येक प्राणी के प्रति वह दया और स्नेह भाव रखता है। उपरोक्त प्रकार के उल्लेखों से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में प्राय: सभी सम्पन्न वर्ग के लोग अपनी संतान का नामकरण समारोह पूर्वक करते थे और उसके किसी न किसी गुण को सूचित करने वाला नाम रखते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ णं समणे भगवं महावीरे पंचधाईपरिवुडे तंजहा-खीरधाईए, मज्जणधाईए, मंडावणधाईए, खेल्लावणधाईए, अंकधाईए, अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकंदरस्समल्लीणे विव चंपयपायवे अहाणुपुव्वीए संवड्ढइ॥

कठिन शब्दार्थ - **पंचधाईपरिवुडे** - पंच धात्री परिवृत्त-पांच धायमाताओं से गिरा हुआ, **मणिकोट्टिमतले** - मणि मण्डित आंगन में, **गिरिकंदरस्समल्लीणे** - पर्वत की गुफा में स्थित, **चंपयपायवे** - चम्पक वृक्ष, **अहाणुपुव्वीए** - यथानुक्रम, **संवड्ढइ** - वृद्धि को प्राप्त होता है।

भावार्थ - जन्म के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पांच धाय माताओं द्वारा लालन पालन होने लगा। यथा - १. क्षीर धात्री - दूध पिलाने वाली धाय २. मज्जन धात्री- स्नान कराने वाली धाय ३. मंडन धात्री - वस्त्र आभूषण पहनाने वाली धाय ४. क्रीड़ा धात्री - क्रीड़ा कराने वाली धाय अर्थात् खेल खिलाने वाली और ५. अंक धात्री - गोद में खिलाने वाली धाय। वर्द्धमान कुमार इस प्रकार एक गोद से दूसरी गोद में लिए जाते हुए एवं रमणीय मणि मंडित आंगन में खेलते हुए पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष की तरह क्रमशः बढने लगे।

विवेचन - राजा महाराजाओं में एवं सम्पन्न वर्ग में पांच धाय माताएँ रखने की परिपाटी प्राचीन काल में प्रचलित थी। तदनुसार तीर्थंकर भगवान् के लिए भी पांच धाय माताएँ रखने का उल्लेख मिलता है। उसमें पहली धाय माता का नाम है "क्षीर धात्री"- जिसका अर्थ है दूध पिलाने वाली धाय माता। परन्तु तीर्थंकर भगवान् तो अपनी जन्म देने वाली माता का भी स्तन पान नहीं करते हैं इसी प्रकार क्षीरधात्री का भी स्तन पान नहीं करते है। तो फिर प्रश्न हो सकता है कि वे बचपन से क्या आहार करते हैं? इसके समाधान में अभिधान राजेन्द्र कोष "**उसभ**" शब्द के वर्णन में ऐसा उल्लेख मिलता है-

"**देसूणगं च वरिसं, सक्कागमणं च वंसठवणा च।**

आहारमंगुलीए ठयंति देवा मणुण्णं तु॥ १॥

इस गाथा का अर्थ करते हुए टीकाकार लिखते हैं -

टीका - किं च सर्वे तीर्थंकरा एवं बालभावे वर्तमानाः न स्तन्योपयोगं कुर्वन्ति, किन्तु आहाराभिलाषे सति स्वामेव अङ्गुलिं वदने प्रक्षिपन्ति। तस्यां च आहारं अङ्गुल्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नानारससमायुक्तं स्थापयन्ति देवाः मनोज्ञं मनोऽनुकूलम् एव अतिक्रान्त बालभावाः तु अग्निपक्वमेव गृह्णन्ति।

अर्थ - जब भगवान् ऋषभदेव कुछ कम एक वर्ष के हो गये तब देवलोक से शक्रेन्द्र आया और वंश की स्थापना की और देवों ने ऋषभदेव के अङ्गुठे में मनोज्ञ आहार का संचार कर दिया।

इस गाथा की टीका करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि बचपन में सब तीर्थङ्कर माता का स्तन पान नहीं करते हैं किन्तु आहार की अभिलाषा होने पर अपनी अङ्गुली (अंगुठा) को ही मुख में डाल लेते हैं। अर्थात् अपना अंगुठा चूस लेते हैं जिससे नाना प्रकार के मनोज्ञ रसों से संयुक्त आहार की प्राप्ति हो जाती है। जिससे बाल तीर्थङ्कर तृप्त हो जाते हैं क्योंकि देव उनके अंगुठे में मनोज्ञ और मन के अनुकूल रस प्रक्षिप्त कर देते हैं। जब उनका बचपन बीत जाता है तब वे अग्निपक्व आहार ही करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के सामान्यतः प्रकृति के नियमानुसार एक हाथ में पांच अंगुलियाँ होती है उनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं - १. अंगुष्ठ २. तर्जनी ३. मध्यमा ४. अनामिका ५. कनिष्ठा (सबसे छोटी)। इस अपेक्षा से यहाँ पर गाथा में और उसकी टीका में अंगुठे के लिये अङ्गुली शब्द का प्रयोग किया गया है। बोल चाल की भाषा में भी ऐसा ही बोलते हैं कि "हाथ की पांचों अङ्गुलियाँ बराबर नहीं होती हैं" इस अपेक्षा से अंगुठा भी अङ्गुली ही है। आजकल भी कई बालक बालिकाएँ बचपन में अपना अंगुठा चूसते हुए देखे जाते हैं।

तओ णं समणे भगवं महावीरे विण्णाय परिणयए विणियत्तबालभावे अप्पुस्सुयाइं (अणुस्सुयाइं) उरालाइं माणुस्सगाइं पंचलक्खणाइं कामभोगाइं सद्द-फरिस-रसरूवगंधाइं परियारेमाणे एवं च णं विहरइ॥-१७६॥

कठिन शब्दार्थ - विण्णाय परिणयए - विज्ञान परिणत-विज्ञान को प्राप्त हुए, **विणियत्त बालभावे**- बाल भाव को त्याग कर, **अप्पुस्सुयाइं** - उत्सुकता से रहित, **परियारेमाणे** - उपभोग करते हुए।

भावार्थ - उसके पश्चात् ज्ञान विज्ञान संपन्न श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बाल भाव को त्याग कर युवावस्था में प्रविष्ट हुए और मनुष्य संबंधी उदार शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श युक्त पांच प्रकार के कामभोगों का उदासीनता पूर्वक उपभोग करते हुए रहने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् महावीर स्वामी की युवावस्था का वर्णन किया गया है। जब राजकुमार वर्धमान यौवन वय को प्राप्त हुए तब उनका उत्कृष्ट रूप और अलौकिक प्रभा देखने वालों का मन बर्बस अपनी तरफ खींच लेती। यौवन अवस्था में प्राय: संसारी जीवों का मन वासना से भरपूर रहता है परन्तु वर्धमान कुमार निर्विकार थे उनके मन में विषय वासना का निवास नहीं था। माता-पिता की इच्छा थी कि शीघ्र ही उनका पुत्र विवाहित हो जाय और उनके घर में कुलवधू आ जाय। कई राजाओं के मन में राजकुमार वर्धमान को अपना जामाता (जंवाई) बनाने की इच्छा थी। इतने में ही समरवीर राजा के मंत्री गण अपनी राजकुमारी यशोदा का सम्बन्ध राजकुमार वर्धमान के साथ करने के लिये महाराजा सिद्धार्थ की सेवा में उपस्थित हुए। माता-पिता और मित्रों आदि के दबाव से वह सम्बन्ध स्वीकार हो गया और राजकुमारी यशोदा के साथ उनका विवाह हो गया और अलिप्त भावों से उदय कर्म को भोग कर क्षय करने लगे। यथा समय एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम 'प्रियदर्शना' रखा गया।

इस प्रकार कुमार वर्धमान प्राप्त काम भोगों में आसक्त नहीं हुए और शीघ्र ही उनसे निवृत्त हो गये।

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति अम्मापिउसंतिए 'वद्धमाणे' सहसम्मुइए 'समणे' भीमभय भेरवं उरालं अचले परिसहं सहइ त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं 'समणे भगवं महावीरे'॥

कठिन शब्दार्थ - **आहिज्जंति** - कहे जाते हैं, **अम्मापिउसंतिए** - माता-पिता की ओर से दिया हुआ, **सहसम्मुइए** - स्वाभाविक सन्मति से, **भीमं** - रौद्र, **भयभेरवं** - अत्यंत भय उत्पन्न करने वाला, **उरालं** - प्रधान, **अचले** - अचल।

भावार्थ - काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ये तीन नाम कहे जाते हैं- १. माता-पिता के द्वारा दिया हुआ नाम 'वर्द्धमान' २. समभाव में स्वाभाविक सन्मति होने के कारण 'श्रमण' और ३. भयंकर भय भैरव उत्पन्न होने पर भी अविचल रह कर विभिन्न परीषहों को समभाव पूर्वक सहने के कारण देवों ने उनका नाम 'श्रमण भगवान् महावीर' रखा।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् के तीन प्रचलित गुणनिष्पन्न नामों का उल्लेख किया गया है गर्भ में आते ही धन धान्य आदि में वृद्धि होने के कारण माता-पिता ने उनका नाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'वर्द्धमान' रखा। दीक्षित होने के बाद समभाव पूर्वक कठोर तपश्चर्या में प्रवृत्त होने के कारण 'श्रमण' कहलाए और घोर परीषहों में भी वे आत्मचिंतन से विचलित नहीं हुए, समभावों से उन्हें सहन करते रहे अतः देवों ने उन्हें 'महावीर' यह नाम दिया। '**सहसम्मुइए**' की संस्कृत छाया 'सहसंमुदितः' की है इसका अर्थ है स्वाभाविक समभाव होने से 'श्रमण' तथा इसकी संस्कृत छाया 'सहसन्मत्या' भी की है। जिसका अर्थ है सन्मति सहित। अतः भगवान् महावीर स्वामी का एक नाम 'सन्मति' भी है।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिया कासवगोत्तेणं तस्स णं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति तं जहा - सिद्धत्थे इ वा, सेज्जंसे इ वा, जसंसे इ वा।

समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठसगोत्ता, तीसे णं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति तंजहा-तिसला इ वा, विदेहदिण्णा इ वा, पियकारिणी इ वा।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पित्तियए 'सुपासे' कासवगोत्तेणं। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठे भाया णंदिवद्धणे कासवगोत्तेणं, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठा भइणी सुंदसणा कासवगोत्तेणं, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स भज्जा जसोया कोडिण्णा गोत्तेणं, समणस्स भगवओ महावीरस्स धूया कासवगोत्तेणं, तीसे णं दो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति तंजहा-आणोज्जा इ वा, पियदंसणा इ वा। समणस्स णं भगवओ महावीरस्स णत्तुई कोसियगोत्तेणं, तीसे णं दो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-सेसवई इ वा, जसवई इ वा॥ १७७॥

कठिन शब्दार्थ - **पित्तियए** - पितृव्य-पिता के भाई अर्थात् काका, **भइणी** - बहिन, **भज्जा** - भार्या, **कोडिण्णा गोत्तेणं** - कौडिन्य गोत्रीया, **धूया** - पुत्री, **णत्तुई** - दौहित्री।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पिता काश्यप गोत्र के थे, उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते थे। यथा - १. सिद्धार्थ २. श्रेयांस और ३. यशस्वी।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की माता वाशिष्ठ गोत्रीया थी। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते थे जैसे कि - १. त्रिशला २. विदेहदत्ता और ३. प्रियकारिणी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के काश्यपगोत्री पितृव्य-पिता के भाई (चाचा) का नाम सुपार्श्व था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ भ्राता काश्यप गोत्रीय 'नंदीवर्द्धन' थे। श्रमण भगवान् महावीर की बड़ी बहिन 'सुदर्शना' काश्यप गोत्रीय थी और उनकी पत्नी का नाम 'यशोदा' था जो कौण्डिन्य गोत्रीय थी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की पुत्री काश्यप गोत्रीय थी। उनके दो नाम इस प्रकार थे। जैसे कि - १. अनोज्जा (अनवद्या) और २ प्रियदर्शना। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की दौहित्री कौशिक गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार थे - १. शेषवती और २. यशोमती (यशस्वती)।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पिता, माता, चाचा, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्री और दौहित्री के नाम और उनके गोत्र बताये गये हैं।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था, ते णं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पालइत्ता, छण्हं जीवणिकायाणं संरक्खणणिमित्तं आलोइत्ता, णिंदित्ता, गरहित्ता, पडिक्कमित्ता अहारिहं उत्तर-गुणपायच्छित्ताइं पडिवज्जित्ता कुससंथारं दुरुहित्ता, भत्तं पच्चक्खाइंति, भत्तं पच्चक्खाइत्ता अपच्छिमाए मारणंतियाए संलेहणाए झूसियसरीरा कालमासे कालं किच्चा, तं सरीरं विप्पजहित्ता, अच्चुए कप्पए देवत्ताए उववण्णा, तओ णं आउक्खएणं, भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए चइत्ता महाविदेहवासे चरिमेणं ऊस्सासेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति, सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति॥ १७८॥

कठिन शब्दार्थ - **पासावच्चिज्जा** - पार्श्वापत्य-भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी, **संरक्खणणिमित्तं** - संरक्षण के निमित्त, **अहारियं** - यथा योग्य, **उत्तरगुण पायच्छित्ताइं** - उत्तर गुण प्रायश्चित्त को, **कुससंथारं** - कुश के संस्तारक पर, **भत्तं पच्चक्खाइंति** - भक्त प्रत्याख्यान स्वीकार करते हैं, **अपच्छिमाए** - अंतिम, **मारणंतियाए** - मारणांतिक, **झूसियसरीरा**- शरीर से सेवन करके, **अच्चुए कप्पए** - अच्युत कल्प नामक बारहवें देवलोक में, **सव्वदुक्खाणमंतं** - सभी दुःखों का अंत।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता पार्श्वापत्य थे अर्थात् भगवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रावक श्राविका थे। उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावक पर्याय का पालन करके छह जीवनिकाय के संरक्षण के निमित्त आलोचना, आत्मनिंदा, आत्मगर्हा एवं पापों का प्रतिक्रमण करके उत्तर गुणों के यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करके कुश के संस्तारक पर आरूढ होकर भक्त प्रत्याख्यान नामक संथारा स्वीकार किया। चारों प्रकार के आहार का त्याग करके अंतिम मारणांतिक संलेखना स्वीकार की। काल के समय काल करके उस शरीर को छोड़ कर अच्युत कल्प नामक बारहवें देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए। तदनंतर देव संबंधी आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में चरम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत्त होंगे और सभी दुःखों का अन्त करेंगे।

विवेचन - भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता के लिए 'पार्श्वापत्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'अपत्य' शब्द शिष्य एवं संतान दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के माता-पिता जैन श्रावक थे और भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के उपासक थे। सिद्धार्थ राजा और त्रिशला महारानी ने श्रावक धर्म का पालन करते हुए अंत में संलेखना संथारा किया और काल करके बारहवें अच्युत नामक देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए। जहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायेंगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाए णायपुत्ते णायकुलणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि ति कट्टु अगारमज्झे वसित्ता अम्मापिऊहिं कालगएहिं देवलोगमणुपत्तेहिं समत्तपइण्णे चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा बलं, चिच्चा वाहणं, चिच्चा धणधण्ण- कणग-रयण- संतसार सावइज्जं विच्छड्डेत्ता, विगोवित्ता, विस्साणित्ता, दायारेसु दाणं दाइत्ता, परिभाइत्ता, संवच्छरं दाणं दलइत्ता, जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे, मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमी पक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अभिणिक्खमणाभिप्पाए यावि होत्था॥

कठिन शब्दार्थ - णायकुलणिव्वत्ते - ज्ञातकुल निर्वृत्त, **विदेहदिण्णे** - विदेह दिन्न या विदेहदत्त, **विदेहजच्चे** - विदेहार्च, **विदेहसूमाले** - विदेहसुकुमाल, **देवलोगं** - देवलोक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को, **अणुपत्तेहिं** - प्राप्त हो जाने पर, **समत्तपइण्णे** - समाप्त प्रतिज्ञ-अपनी की हुई प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने पर, **चिच्चा**-छोड़ कर, त्याग करके, **अभिणिक्खमणाभिप्पाए** - अभिनिष्क्रमणाभिप्राय-दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया।

भावार्थ - उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो कि ज्ञातपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे, ज्ञातकुल से विनिर्वृत्त थे, देहासक्ति से रहित थे, विदेहजनों द्वारा अर्चनीय (पूजनीय) थे, विदेहदत्ता के पुत्र थे, विशिष्ट शरीर से युक्त होते हुए भी सुकुमाल थे। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी तीस वर्ष तक विदेह रूप में अर्थात् शरीर की आसक्ति से रहित घर में निवास करके, मातापिता के आयुष्य पूर्ण कर देवलोक को प्राप्त हो जाने पर, अपनी ली हुई प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने से चांदी, सोना, सेना (बल), वाहन, धन, धान्य, रत्न आदि सारभूत पदार्थों का त्याग करके याचकों को यथेष्ट दान दे कर तथा अपने संबंधियों में यथायोग्य विभाग करके एक वर्ष पर्यन्त दान देकर हेमन्त ऋतु के प्रथम मास प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्णा दसमी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान् ने अभिनिष्क्रमण (दीक्षा ग्रहण) करने का विचार किया।

विवेचन - मूल पाठ में "**समत्तपइण्णे**" शब्द दिया है जिसका अर्थ होता है प्रतिज्ञा पूरी हो जाने पर। तो यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या प्रतिज्ञा की थी और कब की थी?

उत्तर - जब भगवान् का जीव महारानी त्रिशला के गर्भ में आया तब एक समय उस गर्भस्थ जीव ने ऐसा विचार किया कि "मेरे हलन-चलन से माता को कष्ट होता होगा" इसलिए हलन-चलन बन्द करके वह निश्चल हो गया। गर्भ के निश्चल हो जाने से माता चिन्तित हो गई। माता को सन्देह हुआ कि मेरा गर्भ निश्चल क्यों हो गया? क्या किसी ने हरण कर लिया? अथवा निर्जीव हो गया या गल गया? इस प्रकार के विचारों से माता उदास हो गई। उसका सन्देह व्यापक हो गया समस्त परिवार और दास-दासियों में उदासी छा गई। राग-रंग और मंगल बाजे बन्द कर दिये गये। तब गर्भस्थ जीव ने अपनी निश्चलता का परिणाम अवधिज्ञान से जाना उसे माता का खेद और सर्वत्र व्याप्त उदासीनता दिखाई दी। तब गर्भस्थ जीव ने विचार किया कि मैंने तो माता के सुख के लिए हलन-चलन बन्द किया था। परन्तु इससे माता को उल्टा दुःख हुआ अतः तत्काल हलन-चलन प्रारम्भ कर दिया। तब माता को गर्भ के सुरक्षित होने का विश्वास हो गया। मुख पर प्रसन्नता छा गई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुनः मंगल बाजे बजने लगे और मंगलाचार होने लगा। गर्भस्थ जीवन ने अपने ऊपर माता के पिता के मोह की प्रबलता देखकर यह अभिग्रह किया कि "जब तक मेरे माता-पिता जीवित रहेंगे मैं दीक्षा नहीं लूँगा।" वह प्रतिज्ञा अब पूरी हो चुकी थी क्योंकि माता-पिता दोनों स्वर्गवासी हो चुके थे। इसलिए उन्होंने अब दीक्षा लेने का विचार किया।

संवच्छरेण होहिइ अभिणिक्खमणं तु जिणवरिंदस्स।
तो अत्थसंपयाणं पव्वत्तइ पुव्वसूराओ॥ १॥
एगा हिरण्णकोडी, अट्ठेव अणूणया सयसहस्सा।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायारासोत्ति॥ २॥
तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडीओ।
असिइं च सयसहस्सा, एवं संवच्छरे दिण्णं॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - **संवच्छरेणं** - एक संवत्सर (वर्ष) से, **जिणवरिंदस्स** - जिनवरेन्द्र देव का, **अत्थसंपयाणं** - अर्थ संपदा, **पुव्वसूराओ** - पूर्व दिशा में सूर्य उदय होने से, **अणूणगा** - अन्यूनका-सम्पूर्ण, **सूरोदयमाईयं** - सूर्योदय से लेकर, **पायरासु** - प्रातराश-एक प्रहर तक, **कोडिसया** - सौ करोड़, **असिइं** - अस्सी।

भावार्थ - जिनवरेन्द्र देव का अभिनिष्क्रमण एक वर्ष पूर्ण होने पर होगा अतः वे दीक्षा लेने से एक वर्ष पूर्व सांवत्सरिक-वर्षी दान देना प्रारंभ कर देते हैं। प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर दिन चढ़ने तक उनके द्वारा अर्थ का-धन का दान दिया जाता है।

प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर पर्यन्त (तक) एक करोड़ आठ लाख स्वर्णमुद्राओं का दान दिया जाता है।

इस प्रकार भगवान् ने एक वर्ष में कुल तीन अरब, अठासी करोड़, अस्सी लाख (३, ८८, ८०, ००००००) स्वर्णमुद्राओं का दान दिया।

विवेचन - प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् दीक्षा ग्रहण करने से एक वर्ष पूर्व तक प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्णमुद्राओं का दान करते हैं। इस प्रकार एक वर्ष में कुल तीन अरब, अठासी करोड, अस्सी लाख (३, ८८, ८०, ००००००) स्वर्ण मुद्राओं का दान देते हैं।

तीर्थंकरों के इस दान से यह स्पष्ट होता है कि केवल साधु-साध्वी को दिया जाने वाला आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि का दान ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि अनुकम्पा दान भी अपना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्व रखता है। ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में दस दानों के अन्दर अनुकम्पा दान भी एक दान है। सम्यक्त्व के पांच लक्षणों में अनुकम्पा भी एक लक्षण है। अनुकम्पा दीन दुःखी प्राणियों पर की जाती है। तीर्थंकर भगवान् के इस वर्षीदान से उनकी उदारता जगत् वत्सलता तो प्रकट होती ही है परन्तु विशेषतः अनुकम्पा दान का महत्त्व प्रकट होता है।

दीन दुःखी जीवों पर अनुकम्पा करके उनके दुःख को दूर करने के लिए जो दान दिया जाता है उसमें श्वेताम्बर तेरह पंथ सम्प्रदाय पाप मानता है परन्तु ये उनकी मान्यता आगमानुकूल नहीं है क्योंकि यदि दीन दुःखी अनाथ गरीब को दान देना पाप और संसार बढाने का कारण होता तो संसार का त्याग कर उसी भव में मोक्ष जाने वाले तीर्थंकर भगवान् यह वर्षीदान क्यों देते? इसलिए तीर्थंकर भगवान् द्वारा दिया जाने वाला यह दान इस बात को स्पष्ट करता है कि अनुकम्पा दान भी पुण्य बन्ध एवं आत्म विकास का साधन है। इससे आत्मा की दया भावना और अहिंसक भावना का विकास होता है। आगमों में भी अनेक स्थलों पर अनुकम्पा दान का उल्लेख मिलता है। तुंगिया नगरी के श्रावकों की धर्म भावना एवं उदारता का उल्लेख करते हुए शास्त्रकार ने उनके लिए विशेषण दिया है- **"अवंगुय दारा"** अर्थात् उनके घर के दरवाजे दान के लिए सदा खुले रहते थे। वे किसी भी साम्प्रदायिक एवं जातीय भेदभाव के बिना अपने द्वार पर आने वाले प्रत्येक याचक को दान देते थे। उनके दरवाजे पर आया हुआ कोई भी दीन दुःखी खाली हाथ नहीं जाता था अतः तीर्थंकरों द्वारा दिये जाने वाले इस वर्षीदान को केवल प्रशंसा प्राप्त करने के लिए दिया जाने वाला दान कहना अनुचित है क्योंकि महापुरुष कभी भी प्रशंसा के भूखे नहीं होते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं दया भावना और त्याग भावना से करते हैं। अतः तीर्थंकर भगवान् के इस वर्षीदान से उनकी उदारता, जगत् वत्सलता और अनुकम्पा दान के महत्व का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित होता है। जो प्रत्येक धर्मनिष्ठ सद्गृहस्थ के लिए अनुकरणीय और आचरणीय होता है।

वेसमण कुंडलधरा देवा लोगंतिया महिड्ढिया।
बोहिंति य तित्थयरं पण्णरससु कम्मभूमिसु॥
बंभंमि य कप्पंमि य बोद्धव्वा कण्हराइणो मज्झे।
लोगंतिया विमाणा, अट्ठसु वत्था असंखिज्जा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एए देवणिकाया भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं॥
सव्वजगज्जीवहियं, अरहं तित्थं पव्वत्तेहि॥

कठिन शब्दार्थ - वेसमणकुंडलधरा - कुण्डल धारण करने वाले वैश्रमण देव, **लोगंतिया** - लोकान्तिक, **बोहिंति** - प्रतिबोधित करते हैं, **कप्पंमि** - कल्प में, **कण्हराइणो**- कृष्ण राजि के, **वत्था**- विस्तार, **सव्वजगज्जीवहियं** - सर्व जगत् के जीवों के हितकारी।

भावार्थ - कुण्डलधारी वैश्रमण देव और महान् ऋद्धिसंपन्न लोकान्तिक देव पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर भगवान् को प्रतिबोधित करते हैं।

ब्रह्मलोक कल्प में आठ कृष्णराजियों के मध्य में आठ प्रकार के लोकान्तिक विमान असंख्यात विस्तार वाले जानने चाहिये।

यह सब देव निकाय (देवों का समूह) भगवान् को बोधित करते हैं (सविनय निवेदन करते हैं) कि हे अर्हन् देव ! सर्व जगत् के जीवों के लिये हितकर धर्मतीर्थ की स्थापना कीजिए।

विवेचन - लोकान्तिक देवों का पांचवें ब्रह्मलोक देवलोक में निवास है अन्य कल्पों में नहीं। ब्रह्मलोक को घेर कर आठ दिशाओं में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव रहते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में आठ लोकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं -

"सारस्वताऽदित्य-वह्नयरुण-गर्दतोय-तुषिताऽव्याबाध मरूतोऽरिष्टश्च"

यदि वह्नि और अरुण को अलग अलग मानें तो इनकी संख्या नौ हो जाती है। ८ कृष्णराजियाँ हैं, दो दो कृष्णराजियों के मध्य भाग में ये रहते हैं। मध्य में अरिष्ट नामक देव रहते हैं। इस प्रकार ये ९ भेद होते हैं। लोकान्तवर्ती ये ८ भेद ही होते हैं नौवां भेद रिष्ट विमान प्रतरवर्ती होने से होता है, इसलिये कोई दोष नहीं है। स्थानाङ्ग सूत्र के नववे ठाणे में लोकान्तिक देवों के ९ भेद ही बताए गये हैं। यहां जो आठ भेद बतलाएं हैं वे आठ कृष्णराजियों की अपेक्षा से समझने चाहिये।

यहां ब्रह्मलोकवासी लोकान्तिक देवों द्वारा तीर्थंकर को प्रतिबोधित करने का अर्थ है - सविनय निवेदन करना। क्योंकि तीर्थङ्कर भगवान् तो स्वयंबुद्ध होते हैं उन्हें बोध देने की आवश्यकता नहीं होती है। जब तीर्थंकर भगवान् के हृदय में दीक्षा लेने की भावना पैदा होती है तब लोकान्तिक देव अपनी परम्परा के अनुसार (जीताचार का पालन करने के लिये) आकर उन्हें धर्म तीर्थ की स्थापना करने के लिये सविनय निवेदन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - तीर्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर - भगवती सूत्र के बीसवें शतक के आठवें उद्देशक में इस प्रकार का प्रश्नोत्तर आया है **"तित्थं भंते! तित्थे तित्थगरे तित्थे? गोयमा! अरहा ताव नियमा तित्थंगरेति। तित्थे पुण चउवण्णा इण्णे समणसंघे, तंजहा समणा समणीओ, सावया साावियाओ।"**

अर्थ - गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन्! तीर्थ किसे कहते हैं? क्या तीर्थ को तीर्थ कहते हैं? या तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम ! अर्हा (अरहन्त-तीर्थङ्कर) तो नियमित तीर्थङ्कर ही होते हैं। चार वर्णों से जो युक्त होता है उसे तीर्थ कहते हैं। यथा - श्रमण (साधु) श्रमणी (साध्वी) श्रावक और श्राविका। इन चार को तीर्थ कहते हैं क्योंकि ये स्वयं संसार समुद्र से तिरते हैं तथा इनका आश्रय लेने वाले दूसरों को भी संसार समुद्र से तिराते हैं। इस तीर्थ की स्थापना करने वाले को तीर्थङ्कर कहते हैं।

प्रश्न - लोकान्तिक देव किसे कहते हैं?

उत्तर - पांचवें ब्रह्मलोक देवलोक के समीप होने से इन्हें लोकान्तिक देव कहते हैं। कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि लोक अर्थात् संसार का अन्त करने वाले यानी एक भव करके मोक्ष जाने वाले होने के कारण इन्हें लोकान्तिक कहते हैं। यथा -

"लोकान्ते-संसारान्ते भवाः लोकान्तिकाः एकावतारत्वात्।"

यह मान्यता आगमानुकूल प्रतीत नहीं होती है। प्राचीन धारणा तो इस प्रकार है कि इनके मुखिया देव एक भवावतारी होते हैं।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिणिक्खमणाभिप्पायं जाणित्ता भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं, सएहिं सएहिं णेवत्थेहिं, सएहिं सएहिं चिंधेहिं, सव्विड्ढिए सव्वजुईए सव्वबलसमुदएणं सयाइं सयाइं जाणविमाणाइं दुरुहंति सयाइं सयाइं जाणविमाणाइं दुरुहित्ता, अहाबायराइं पोग्गलाइं परिसाडेंति परिसाडित्ता अहासुहुमाइं पोग्गलाइं परियाइंति परियाइत्ता, उड्ढं उप्पयंति, उड्ढं उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए सिग्घाए चवलाए तुरियाए दिव्वाए देवगईए अहेणं उवयमाणा उवयमाणा तिरिएणं असंखिज्जाइं दीवसमुद्दाइं वीइक्कममाणा वीइक्कममाणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव जंबुद्दीवे दीवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जेणेव उत्तरखत्तिय-कुंडपुरसंणिवेसे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जेणेव उत्तरखत्तिय-कुंडपुरसंणिवेसस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए तेणेव झतिवेगेण ओवइया॥

कठिन शब्दार्थ - **सएहिं** - अपने, **णेवत्थेहिं** - नैपत्थ्य-वस्त्रों से, **चिंधेहिं** - चिह्नों से युक्त, **सव्विड्ढीए** - सर्व ऋद्धि से, **सव्वजुईए** - सर्वद्युति (ज्योति) से, **सव्वबल समुदएणं**- सर्व बल समुदाय से, **दुरुहंति** - चढते हैं, **अहाबायराइं** - यथा बादर, **परियाइंति** - ग्रहण करते हैं, **उप्पयंति** - उत्पतन करते हैं, **सिग्घाए** - शीघ्र, **चवलाए** - चपल, **तुरियाए** - त्वरित, **दिव्वाए**- दिव्य, **देवगईए** - देव गति से, **ओवयमाणा** - उतरते हुए, **वीइक्कममाणा**- व्यतिक्रम करते हुए-उल्लंघन करते हुए, **उत्तरखत्तियकुण्डपुरसंणिवेसे** - उत्तर क्षत्रिय कुंडपुर सन्निवेश।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दीक्षा लेने के अभिप्राय को जान कर भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव देवियाँ अपने अपने रूप में, अपने अपने वस्त्रों में और अपने अपने चिह्नों से युक्त होकर तथा अपनी अपनी समस्त ऋद्धि, द्युति और समस्त बल समुदाय सहित अपने अपने यान विमानों पर चढते हैं और उनमें चढकर बादर (स्थूल) पुद्गलों को पृथक् करते हैं। बादर पुद्गलों को पृथक् करके सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके वे ऊँचे उडते हैं। ऊँचे उड कर अपनी उस उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरित और दिव्य देव गति से नीचे उतरते उतरते क्रमशः तिर्यक् लोक में स्थित असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करते हुए जहाँ पर जंबूद्वीप नामक द्वीप है वहाँ आते हैं। वहाँ आकर जहाँ उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश है उसके निकट आते हैं। वहाँ आकर उत्तरक्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश के ईशानकोण दिशा भाग में शीघ्रता से उतरते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् के दीक्षा ग्रहण करने के अभिप्राय को जान कर उनके संयम की सराहना करने हेतु चारों प्रकार के देव देवियों के आगमन का वर्णन है।

देव देवी अपने मूल रूप से मनुष्य लोक में नहीं आते हैं वे उत्तर वैक्रिय करके ही मनुष्य लोक में आते हैं। उत्तर वैक्रिय में भी वे विशिष्ट रत्नों के सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करते हैं।

प्रश्न - तीर्थङ्कर भगवान् के दीक्षा समारोह में भाग लेने के लिए देव देवी इतनी शीघ्रता से क्यों आते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - संसार में जो भी धर्मात्मा और धर्मनिष्ठ पुरुष होते हैं उनके धर्म कार्य का अनुमोदन करने के लिए भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक चारों प्रकार के देव देवियाँ आती हैं वे अपना अहोभाग्य समझते हैं कि हमें धर्मात्मा पुरुषों के धर्मकार्य की अनुमोदना करने का अवसर मिला है। जैसा कि दशवैकालिक सूत्र में कहा है - **"देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो"** अर्थात् जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

यद्यपि देव देवी भौतिक ऋद्धि सम्पत्ति में मनुष्य से बहुत आगे हैं किन्तु वे संयम अङ्गीकार नहीं कर सकते हैं इसलिये वे आध्यात्मिकता के स्वामी संयमी पुरुषों की सेवा में उनके संयम की सराहना करने के लिये आते हैं। तीर्थङ्कर भगवन्त तो चतुर्विध संघ के सर्वोत्कृष्ट शिरोमणी हैं उनके दीक्षा महोत्सव में देव देवी आवे, इसमें आश्चर्य ही क्या है। शास्त्रकार ने देवों के आगमन की गति का भी वर्णन किया है कि वे उत्कृष्ट शीघ्र चपल त्वरित दिव्य गति से आते हैं। क्योंकि उनके मन में तीर्थङ्कर भगवान् की दीक्षा में सम्मिलित होने की स्फूर्ति, श्रद्धा और उमङ्ग होती है।

तओ णं सक्के देविंदे देवराया सणियं सणियं जाणविमाणं पठवेइ पठवित्ता सणियं सणियं जाणविमाणाओ पच्चोत्तरइ पच्चोत्तरित्ता एगंतमवक्कमेइ एगंतमवक्कमित्ता महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणइ, महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणित्ता, एगं महं णाणामणि कणग रयण भत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं देवच्छंदयं विउव्वइ, तस्स णं देवच्छंदयस्स बहुमज्झदेसभाए एगं महं सपायपीढं सीहासणं णाणामणि-कणय रयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं विउव्वइ विउव्वित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता समणं भगवं महावीरं गहाय जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, सणियं सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयावेइ णिसीयावित्ता सयपाग सहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेइ अब्भंगित्ता गंधकासाईएहिं उल्लोलेइ उल्लोलित्ता, सुद्धोदएणं मज्जावेइ मज्जावित्ता, जस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णं मुल्लं सयसहस्सेणं तिपडोलतित्तिएणं साहिएणं सीएणं गोसीस रत्तचंदणेणं अणुलिंपइ अणुलिंपित्ता ईसिंणिस्सासवायवोज्झं वर णयर पट्टणुग्गयं कुसलणरपसंसियं अस्सलालापेलवं छेयायरियकणग-खचियंतकम्मं हंसलक्खणं, पट्टजुयलं णियंसावेइ, णियंसावित्ता हारं अद्धहारं उरत्थं णेवत्थं एगावलिं पालंबसुत्तं पट्ट मउड रयणमालाओ आविंधावेइ आविंधावित्ता गंथिम वेढिम पूरिम संघाइमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समलंकरेइ समलंकरित्ता दोच्चंपि महया वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता एगं महं चंदप्पहं सिवियं सहस्सवाहिणिं विउव्वइ तंजहा-ईहा मिय उसभ तुरग णर मकर विहग वाणर-कुंजर-रुरु-सरभ-चमर सहुल-सीहवणलय- पउमलय-भत्तिचित्तलयविचित्त विज्जाहर मिहुण जुयल जंतजोगजुत्तं, अच्चिसहस्स मालिणीयं सुणिरूवियं मिसिमिसिंत रूवग सहस्सकलियं, ईसिं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुलोयणलेसं, मुत्ताहल मुत्तजालंतरोवियं तवणीयपवर-लंबूसग पलंबंतमुत्तदामं हारद्धहारभूसणसमोणयं अहियपिच्छणिज्जं पउम लय भत्तिचित्तं असोक कुंद णाणालय भत्तिचित्तं विरइयं सुभं चारुकंतरूवं णाणामणि पंचंवण्ण-घंटापडाय-परिमंडियग्गसिहरं पासाईयं दरिसणीयं सुरूवं॥

कठिन शब्दार्थ - **सणियं सणियं** - शनैः शनैः धीरे-धीरे, **णाणा मणि कणग रयणभत्तिचित्तं**- नाना प्रकार के मणि, कनक, रत्नादि से चित्रित दीवार वाले, **चारु** - मनोहर, **कंतरूवं** - कांत रूप वाले, **देवच्छंदयं** - देवच्छंदक-जिनदेव के आसन स्थान को, **सपायपीढं** - पादपीठ से युक्त, **सयपागसहस्सपागेहिं** - शतपाक, सहस्रपाक, **गंधकासाईएहिं**- सुगंधित द्रव्यों से, **उल्लोलेइ** - उद्वर्तन करता है, **सुद्धोदएण** - शुद्ध-निर्मल जल से, **मज्जावेइ** - स्नान कराता है, **मुल्लं** - मूल्य, **तिपडोलतित्तिएणं** - तीन पट लपेट कर, **साहिएणं** - सिद्ध किया-बनाया हुआ, **गोसीस रत्तचंदणेणं**- गोशीर्ष रक्त चंदन से, **अणुलिंपइ** - लेपन करता है, **ईसिं** - थोडी सी, **णिस्सास वायवोज्झं** - निःश्वास वायु से उड़ जाने योग्य, **वर णयर पट्टणुग्गयं** - श्रेष्ठ नगर और पत्तन में बना हुआ, **कुसल णर पसंसियं**- कुशल पुरुषों द्वारा प्रशंसित, **अस्सलाला पेलवं** - अश्व की लाला (लार) के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समान श्वेत, **छेयायरिय कणग खचियंतकम्मं** - कुशल शिल्पाचार्यों द्वारा सोने के तारों से जिसकी किनारी बांधी हुई है, **हंसलक्खणं** - हंस के समान श्वेत वर्णवाला, **पट्टजुयलं** - वस्त्र युगल को, **णियंसावेइ** - पहनाता है, **उरत्थं** - वक्ष स्थल में, **णेवत्थं** - सुंदर वेश, **पालंबसुतं** - प्रालम्ब सूत्र-लटकते हुए झुमके,**पट्ट मउड रयणमालाओ** - कटिसूत्र मुकुट, रत्नमालाएं, **आविंधावेइ** - पहनाता है, **गंथिम वेढिम पुरिम संघाइमेणं**- ग्रन्थित, वेष्टित, पूरिम और संघातिम से, **सिवियं** - शिविका-पालकी, **सहस्सवाहणियं** - सहस्र वाहनिका, **ईहा-मिय-उसभ-तुरग-णर-मकर-विहग-वाणर-कुंजर-रुरु-सरभ-चमर-सहुल-सीह** - वृक विशेष, मृग (हिरण), वृषभ (बैल) अश्व (घोड़ा), मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, बंदर, हाथी, मृगविशेष, शरभ (अष्टापद) चमरीगाय, शार्दूल सिंह, **विज्जाहर-मिहुणजुयल** - विद्याधर, मिथुन युगल, **जंत** - यंत्र विशेष, **जोगजुत्तं** - योग युक्त, **अच्चिसहस्समालिणीयं** - सहस्र सूर्य की किरणों से युक्त, **सुणिरूवियं** - सुनिरूपित, **मिसिमिसिंतरूवगसहस्सकलियं** - प्रदीप्त सहस्र रूपों से युक्त, **भिसमाणं** - देदीप्यमान (चमकती हुई), **भिब्भिसमाणं** - अत्यंत देदीप्यमान, **चक्खुल्लोयणलेसं** - चक्षुओं से लेशमात्र ही अवलोकनीय, **मुत्ताहलमुत्तजालंतरोवियं** - मोती और मोतियों की जाली से सुशोभित, **तवणीय-पवर-लंबूस-पलवंत-मुत्तदामं** - सुवर्णमय कंदुकाकार आभूषणों से युक्त मोतियों की मालाएँ जिससे लटक रही थी, **अहियपिच्छणिज्जं** - अधिक प्रेक्षणीय-देखने योग्य, **णाणामणिपंचवण्ण-घंटापडाय-परिमंडियग्गसिहरं** - नाना प्रकार की पांच वर्ण वाली मणियों, घंटा तथा पताकाओं से जिसका शिखर भाग मंडित हो रहा है।

भावार्थ - तत्पश्चात् देवों के इन्द्र देवराज शक्र ने शनैःशनै अपने यान विमान को वहाँ ठहराया, फिर वह धीरे धीरे विमान से उतरा। विमान से उतरते ही देवेन्द्र सीधा एक ओर एकान्त में गया, वहाँ जाकर उसने एक महान् वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रिय समुद्घात करके इन्द्र ने अपने मणि-स्वर्ण-रत्न आदि से जटित शुभ सुन्दर मनोहर कांत रूप वाले एक बहुत बड़े देवच्छंदक (जिनेन्द्र देव के लिये विशिष्ट स्थान-चबुतरा) का विक्रिया द्वारा निर्माण किया। उस देवच्छंदक के ठीक मध्य भाग में पादपीठ सहित एक विशाल सिंहासन की विकुर्वणा की, जो नाना मणि स्वर्ण रत्न आदि की रचना से चित्र विचित्र शुभ सुन्दर और रम्य रूप वाला था। उस सिंहासन की रचना करके वह जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहाँ आया, आकर भगवान् की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की फिर उन्हें वंदन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को लेकर वह देवच्छंदक के पास आया, भगवान् को उस देवच्छंदक में स्थित सिंहासन पर बिठाया और उनका मुख पूर्व दिशा की ओर करके रखा। तत्पश्चात् इन्द्र ने भगवान् के शरीर पर शतपाक सहस्रपाक तेलों से मालिश की, सुगंधित द्रव्यों एवं शतपाक सहस्रपाक तेलों से उनके शरीर पर उबटन किया, उबटन करके शुद्ध स्वच्छ जल से भगवान् को स्नान कराया, स्नान कराके उनके शरीर पर एक लाख मूल्य वाले, तीन पट को लपेट कर साधे हुए सरस गोशीर्ष रक्त चंदन का लेप किया। फिर भगवान् को नाक से निकलने वाली जरासी श्वासोच्छ्वास वायु से उडने वाला पतला, श्रेष्ठ नगर के व्यावसायिक पत्तन में बना हुआ, कुशल मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, अश्व की लार के समान श्वेत और मनोहर चतुर शिल्पाचार्यों द्वारा सोने के तार से विभूषित, हंस के समान श्वेत वस्त्र युगल पहनाया। तत्पश्चात् उन्हें हार, अर्द्धहार, वक्षस्थल का सुन्दर आभूषण, एकावली, लटकती हुई मालाएँ, कटिसूत्र मुकुट और रत्नों की मालाएँ पहनाई तथा ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम और संघातिम-इन चारों प्रकार की पुष्पमालाओं से उन्हें कल्पवृक्ष की तरह सुसज्जित (अलंकृत) किया। इस प्रकार अलंकृत करने के पश्चात् इन्द्र ने पुन वैक्रिय समुद्घात किया और तत्काल चन्द्रप्रभा नाम की एक विराट सहस्रवाहिनी शिविका (पालकी) का निर्माण किया। वह शिविका ईहा मृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी बंदर, हाथी, रूरु, सरभ, चमरी गाय, शार्दूलसिंह आदि जीवों तथा वनलताओं से चित्रित थी। उस पर अनेक विद्याधरों के जोडे यंत्र योग से अंकित थे। वह शिविका सहस्र किरणों से सुशोभित सूर्य ज्योति के समान देदीप्यमान थी, उसका देदीप्यमान रूप अवर्णनीय था, उसका तेज नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाला था। उस शिविका में मोती और मुक्ताजाल पिरोये हुए थे। सोने के बने हुए श्रेष्ठ कंदुकाकार आभूषण से युक्त लटकती हुई मोतियों की माला उस पर शोभायमान हो रही थी। हार, अर्द्धहार आदि आभूषणों से सुशोभित थी, अत्यंत दर्शनीय थी, उस पर पद्मलता, अशोकलता कुंदलता आदि तथा अन्य अनेक प्रकार की वनलताएँ चित्रित थी। शुभ मनोहर, कांत (कमनीय) रूप वाली पांच वर्ण की अनेक मणियों घंटा एवं पताकाओं से उसका अग्र शिखर परिमंडित था। इस प्रकार वह शिविका शुभ, सुन्दर कमनीय रूपवाली, मन को प्रसन्न करने वाली दर्शनीय और अत्यंत सुन्दर थी।

विवेचन – प्रस्तुत सूत्र में भगवान् की दीक्षा के पूर्व शक्रेन्द्र द्वारा भक्तिवश की गयी तैयारियों का वर्णन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ प्रतियों में '**मज्जावेइ**' के पश्चात् '**गन्धकासाएहिं गायाइं लूहेइ लूहित्ता**' पाठ भी उपलब्ध होता है जिसका अर्थ है "सुगन्धित मटिया रंग के वस्त्र से उनके शरीर को पोंछा। पोंछ कर" यह पाठ शुद्ध और प्रामाणिक मालूम होता है। इसी तरह "**मुल्लं सयसहस्सेणं तिपडोल तित्तिएणं**" के स्थान पर '**पलसयसहस्सेणं तिपलो लाभितएणं**' पाठ भी उपलब्ध होता है। जिसका अर्थ है तीन लाख पल परिमाण से प्राप्त होने वाला। यह गोशीर्ष चन्दन का विशेषण है।

प्रश्न - शतपाक सहस्रपाक तथा लक्षपाक तेल किसे कहते हैं?

उत्तर - जिस तैल में एक सौ विशिष्ट औषधियाँ और जड़ीबूटियाँ डालकर बनाया गया हो अथवा जिसके एक तोले की कीमत सौ रूपिया हो अथवा सौ मुद्रा हो तथा जो सौ बार उबाल कर बनाया गया हो उसे शतपाक तेल कहते हैं। इसी प्रकार सहस्र (हजार) पाक और लक्ष (एक लाख) पाक तेल का अर्थ भी समझना चाहिए।

प्रश्न - गोशीर्षचन्दन किसे कहते हैं?

उत्तर - गोशीर्षचन्दन का दूसरा नाम बावना चन्दन है जिसका अर्थ है कि कल्पना की जाय कि किसी एक कढ़ाई में बावन मन तैल गरम किया जा रहा हो उसमें यदि एक तोला बावना चन्दन डाल दिया जाय तो इससे वह तैल एकदम शीतल (ठण्डा) बन जाय ऐसी शीतलता वाले चन्दन को गोशीर्ष अथवा बावना चन्दन कहते हैं।

प्रश्न - सहस्रवाहिनी शिविका किसको कहते हैं?

उत्तर - शिविका का अर्थ है पालकी। जिस पालकी को सहस्र (एक हजार) पुरुष उठावे उस पालकी को सहस्र वाहिनी पालकी कहते हैं। किन्हीं आचार्यों का मत है कि 'सहस्र वाहिनी का यह अर्थ सर्वत्र लागू नहीं होता है। इसलिए कहीं कहीं पर इसका अर्थ नाम विशेष से है अर्थात् "सहस्रवाहिनी" एक प्रकार की पालकी का नाम है।

प्रश्न - ईहामृग किसे कहते हैं?

उत्तर - एक प्रकार के मृग विशेष को ईहामृग कहते हैं। कहीं कहीं पर ईहा और मृग ये दो शब्द रखे हैं वहाँ "ईहा" का अर्थ भेड़िया और मृग का अर्थ हरिण किया है।

प्रश्न - अष्टापद किसे कहते हैं ?

उत्तर - आगम में अष्टापद शब्द का प्रयोग पशु के अर्थ में मिलता नहीं है, किन्तु दशवैकालिक सूत्र अ. ३ में बावन अनाचारों में अष्टापद का अर्थ - जूआ खेलना किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पन्नवणा सूत्र के प्रथम पद में चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच के चार भेद बतलाये गये हैं यथा - **एग खुरा, बिखुरा, गंडीपया सणप्फया**। इनमें से बिखुरा (दो खुरा) के भेदों में ऊँट बैल आदि नाम बतलाते हुए 'सरभ' शब्द आता है जिसका अर्थ 'अष्टापद' किया गया है। सरभ शब्द का अर्थ करते हुए 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के सातवें भोग में इस प्रकार दिया है यथा - **'सरभ-शरभ-परासर इति पर्याये अष्टापदे महाकाय आटव्य पशुविशेषे यो हस्तिनम् अपि पृष्ठे समारोपयति।'**

अर्थ - सरभ का पर्यायवाची शब्द 'परासर' है। अतः 'परासर' और 'सरभ' शब्द का अर्थ है अष्टापद। यह एक जंगली जानवर है जिसका शरीर बहुत बड़ा होता है। जो हाथी को भी अपनी पीठ पर बिठा सकता है। पूज्य श्री अमोलकऋषि जी म. सा. ने "जैन तत्त्व प्रकाश" में लिखा है कि एक अष्टापद में दो हजार सिंहों का बल होता है।

प्रश्न - शक्रेन्द्र शिविका निर्माण आदि सारा कार्य क्यों करता है ?

उत्तर - शक्रेन्द्र यह सब कार्य भक्तिवश करता है क्योंकि वह यह जानता है कि मुझे जिस धर्म का आचरण करने के प्रताप से यह इन्द्र पद मिला है उस परमधर्म तीर्थ के ये स्वामी होने जा रहे हैं। ये धर्म बोध के दाता, उपदेशक, निष्ठापूर्वक पालक होने जा रहे हैं इसलिए इनके द्वारा मुझ जैसे अनेक प्राणियों का कल्याण होने वाला है। इन्द्र सोचता है ऐसे महान् उपकारी महापुरुष की जितनी भक्ति की जाय उतनी थोड़ी है।

सीया उवणीया जिणवरस्स जरमरण विप्पमुक्कस्स।
ओसत्तमल्लदामा जल थलय दिव्वकुसुमेहिं॥ १॥
सिवियाइ मज्झयारे, दिव्वं वररयण रूवचिंचइयं।
सीहासणं महरिहं सपायपीढं जिणवरस्स॥ २॥
आलइयमालमउडो भासुरबोंदी वराभरणधारी।
खोमिय वत्थ णियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं॥ ३॥
छट्ठेण उ भत्तेणं अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो।
लेसाहिं विसुज्झंतो आरुहइ उत्तमं सीयं॥ ४॥
सीहासणे णिविट्ठो सक्कीसाणा य दोहिं पासेहिं।
वीयंति चामराहिं मणिरयण विचित्त दंडाहिं॥ ५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **जरमरण विप्पमुक्कस्स** - जरा मरण से विमुक्त अर्थात् बुढापा और मृत्यु से रहित, **ओसत्तमल्लदामा** - गूंथी हुई मालाओं से युक्त, **वर-रयण रूवचिंचइयं**- श्रेष्ठ रत्नों की रूप राशि से चर्चित, **महरिहं** - महा मूल्यवान्, **आलयमालमउडो** - मालाओं तथा मुकुट से अलंकृत, **भासुरबोंदी** - देदीप्यमान शरीर वाले, **खोमियवत्थ** - क्षौमिक (कपास से निर्मित) वस्त्र, **णियत्थो** - पहनाए हुए थे, **अज्झवसाणेण** - अध्यवसाय से, **चामराहिं** - चामरों को, **वीयंति** - डुलाते हैं, **मणिरयणविचित्तदंडाहिं** - मणि रत्नों से चित्रित दण्डों वाले।

भावार्थ - जरामरण से विमुक्त अर्थात् बुढ़ापा और मृत्यु से रहित तीर्थङ्कर भगवान् के लिए शिविका लाई गई जो जल और स्थल पर उत्पन्न होने वाले दिव्य फूलों और वैक्रिय लब्धि से निर्मित पुष्पमालाओं से अलंकृत थी॥ १॥

उस शिविका के मध्य भाग में जिनेन्द्र भगवान् महावीर के लिये श्रेष्ठ रत्नों की रूप राशि से सुसज्जित तथा पादपीठिका आदि से युक्त महामूल्यवान् सिंहासन बनाया गया था॥ २॥

उस समय भगवान् महावीर श्रेष्ठ आभूषण धारण किये हुए थे, दिव्य माला और मुकुट पहने हुए थे, उन्हें क्षौम वस्त्र पहनाए हुए थे जिसका मूल्य एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ थी। इन सब से भगवान् का शरीर देदीप्यमान हो रहा था॥ ३॥

उस समय प्रशस्त अध्यवसाय से षष्ठभक्त (बेले) की तपस्या से युक्त शुभ लेश्याओं से विशुद्ध भगवान् शिविका में विराजमान हुए॥ ४॥

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सिंहासन पर विराजमान हुए तब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र उनके दोनों ओर खड़े होकर मणि रत्नादि से चित्रित दंडे वाले चामर भगवान् के ऊपर डुलाने लगे॥ ५॥

पुव्विं उक्खित्ता माणुसेहिं साहट्टुरोमपुलएहिं।
पच्छा वहंति देवा, सुर असुर गरुल णागिंदा॥ ६॥
पुरओ सुरा वहंति, असुरा पुण दाहिणंमि पासंमि।
अवरे वहंति गरुला, णागा पुण उत्तरे पासे॥ ७॥
वणसंडं व कुसुमियं, पउमसरो वा जहा सरयकाले।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गगणयलं सुरगणेहिं॥ ८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धत्थवणं व जहा, कणियार वणं व चंपयवणं वा।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गगणयलं सुरगणेहिं॥ ९॥
वर पडह भेरी ज्झल्लरि संख सयसहस्सिएहिं तूरेहिं।
गगणयले धरणीयले तूरणिणाओ परमरम्मो॥ १०॥
तत वितयं घण झूसिरं आउज्जं चउव्विहं बहुविहीयं।
वायंति तत्थ देवा, बहुहिं आणट्टगसएहिं॥ ११॥

कठिन शब्दार्थ - **साहट्टुरोमकूवेहिं** - जिनके रोम कूप हर्ष से विकसित हो रहे थे, **वहंति** - उठाते हैं, **गगणयलं** - गगन तल-आकाश मंडल, **धरणीयले** - धरणीतल-पृथ्वी, **आणट्टगसएहिं** - सैंकड़ों नाटकों सहित, **तूरणिणाओ** - बाजाओं का शब्द।

भावार्थ - पहले उन मनुष्यों ने उल्लासवश वह शिविका उठाई, जिनके रोम कूप हर्ष से विकसित हो रहे थे। उसके पश्चात् सुर, असुर, गरुड और नागेन्द्र आदि देव उसे उठा कर चलने लगे॥ ६॥

शिविका को पूर्व दिशा में सुर-वैमानिक देव, दक्षिण दिशा से असुरकुमार देव, पश्चिम दिशा से गरुडदेव और उत्तर दिशा से नागकुमार देव उठाकर चलते हैं॥ ७॥

उस समय देवों के आवागमन से आकाशमंडल वैसा ही सुशोभित हो रहा था जैसे खिले हुए पुष्पों से उद्यान या शरद् ऋतु में कमलों के समूह से पद्म सरोवर सुशोभित होता है॥ ८॥

जैसे सरसों, कचनार (कनेर) या चम्पक वन फूलों से सुहावना प्रतीत होता है वैसे ही देवों के आवागमन से गगन तल (आकाश मण्डल) सुहावना लग रहा था॥ ९॥

उस समय उत्तम ढोल, भेरी, झांझ (झालर) शंख आदि सैंकड़ों वाद्यों (वादिन्त्रों) से गुंजायमान आकाश एवं भूभाग बडा ही मनोहर एवं रमणीय प्रतीत हो रहा था॥ १०॥

वहीं पर देव गण बहुत से नृत्यों और नाटकों के साथ अनेक तरह के तत, वितत, घन और शूषिर यों चार प्रकार के बाजे बजा रहे थे॥ ११॥

विवेचन - उपरोक्त गाथाओं में यह बात प्रकट की गयी है कि राजकुमार वर्धमान (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी) देव निर्मित सहस्र वाहिनी (हजार पुरुष उठावे वैसी) पालकी में विराजमान हुए। उस पालकी को सबसे पहले मनुष्यों ने उठाया इसके बाद देवों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ने उठाया। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र भगवान् के दोनों तरफ खड़े थे और भगवान् के ऊपर चमर ढुला रहे थे। उस समय देव और मनुष्य सभी के चेहरे पर उल्लास और हर्ष परिलक्षित हो रहा था और सब अपने आप को धन्य समझ रहे थे।

जिस समय भगवान् शिविका में बैठ कर जा रहे थे उस समय देव असुर किन्नर गन्धर्व आदि बड़े हर्ष के साथ अनेक प्रकार के बाजे बजा रहे थे और विभिन्न प्रकार के नाटक और नृत्य कर रहे थे सारा वातावरण हर्ष एवं उल्लास से भरा हुआ था। ऐसे उत्सव के समय में भी भगवान् शुभ अध्यवसास के साथ शान्त बैठे हुए थे। उस समय भगवान् के चौविहार छठभत्त (षष्ठ भक्त-बेला) की तपस्या थी।

तेणं कालेणं तेणं समएणं जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे, मग्गसिर बहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमी पक्खेणं, सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराणक्खत्तेणं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए बिइयाए पोरिसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं, एगसाडगमायाए चंदप्पहाए सिवियाए सहस्सवाहिणीए सदेवमणुया सुराए परिसाए समणिज्जमाणे समणिज्जमाणे उत्तरखत्तियकुंडपुरसंणिवेसस्स मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ णिगच्छित्ता जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ईसिं रयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं सणियं चंदप्पहं सिवियं सहस्सवाहिणिं ठवेइ ठवित्ता सणियं सणियं चंदप्पहाओ सिवियाओ सहस्सवाहिणीओ पच्चोयरइ पच्चोयरित्ता सणियं सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयेइ। आभरणालंकारं ओमुयइ, तओ णं वेसमणे देवे जण्णुपायपडिए (भत्तुव्वायपडिओ) समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणेणं पडेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ, तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं, वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, तओ णं सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीस्स जण्णुव्वायपडिए वयरामेणं थालेणं केसाइं पडिच्छइ पडिच्छित्ता "अणुजाणेसि भंते" ति कट्टु खीरोयसायरं साहरइ, तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं, वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करित्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धाणं णमोक्कारं करेइ करित्ता "सव्वं मे अकरणिज्जं पावं कम्मं" त्ति कट्टु सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ, सामाइयं चरित्तं पडिवज्जित्ता देवपरिसं मणुयपरिसं च आलिक्खचित्तभूयमिव ट्ठवेइ॥

कठिन शब्दार्थ - **पाईणगामिणीए** - पूर्व गामिनी, **एगसाडगं** - एक शाटक-देव दूष्य वस्त्र को, **सदेवमणुयासुराए** - देव, मनुष्य और असुरकुमारों की, **समणिज्जमाणे** - निकलते हुए, **ईसिं** - थोड़ी सी, **रयणिप्पमाणं** - रत्नि (हाथ) प्रमाण बद्ध मुष्टि हस्त प्रमाण अर्थात् मुण्ड हाथ परिमाण, **ओमुयइ** - उतारते हैं, **अच्छोप्पेणं** - अस्पृष्ट-ऊंची रख कर, **जण्णुव्वायपडिए** - घुटने टेक कर चरणों में गिरना, **हंसलक्खणेणं** - हंस लक्षण-हंस चिह्न युक्त, **पडिच्छइ** - ग्रहण करता है, **पंचमुट्ठियं** - पंच मुष्टिक, **आलिक्खचित्तभूयं** - आलिखित चित्रभूत।

भावार्थ - उस काल और उस समय में जब हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मास का कृष्ण पक्ष था। उसकी दशमी तिथि के सुव्रत दिवस के विजय मुहूर्त्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर पूर्वगामिनी छाया होने पर द्वितीय प्रहर के बीतने पर निर्जल-बिना पानी के षष्ठ भक्त (दो उपवास-बेले) के साथ एक मात्र देवदूष्य वस्त्र को लेकर भगवान् महावीर स्वामी चन्द्रप्रभा नाम की सहस्र वाहिनी शिविका में बैठे जो देवों, मनुष्यों और असुरों की परिषद् के साथ ले जाई जा रही थी। वे देव मनुष्य और असुरकुमारों की परिषद् के साथ क्षत्रियकुंडपुर सन्निवेश के बीचों बीच होते हुए जहाँ ज्ञात खण्ड उद्यान था वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुंच कर देव थोड़ी सी (मुंड) हाथ प्रमाण भूमि से ऊँची रख कर अर्थात् भूमि को स्पर्श न कराते हुए धीरे-धीरे उस चन्द्रप्रभा नाम की सहस्रवाहिनी शिविका को ठहरा (रख) देते हैं। भगवान् उसमें से शनैः शनैः नीचे उतरते हैं और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं तत्पश्चात् भगवान् अपने आभरणालंकारों को उतारते हैं तब वैश्रमण देव घुटने टेक कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के चरणों में झुकता है और भक्तिपूर्वक उन आभरणालंकारों को हंस लक्षण सदृश श्वेत वस्त्र में ग्रहण करता है, उसके बाद भगवान् ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बाएँ हाथ से बांई ओर के केशों का पंचमुष्टिक लोच किया। तब देवराज देवेन्द्र शक्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष घुटने टेक कर चरणों में झुकता है और उन केशों को वज्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मय थाल में ग्रहण करता है। तदनन्तर 'हे भगवन्! आपकी अनुमति है' ऐसा कह कर उन केशों को क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर देता है। इधर भगवान् दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बाएँ हाथ से बांई ओर के केशों का पंचमुष्टिक लोच पूर्ण करके सिद्धों को नमस्कार करते हैं और 'आज से मेरे लिए सभी पापकर्म अकरणीय है' यों उच्चारण करके सामायिक चारित्र अंगीकार करते हैं। उस समय देवों और मनुष्यों की परिषद् चित्रलिखित-सी निश्चेष्ट हो गई थी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अभिनिष्क्रमण और सामायिक चारित्र ग्रहण करने का विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवान् ने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को स्वयंमेव पंचमुष्टि लोच करने के बाद सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके समस्त सावद्य योगों का त्याग करके सामायिक चारित्र ग्रहण किया अर्थात् दीक्षा अंगीकार करके साधना मार्ग पर कदम बढ़ाया।

राजकुमार वर्धमान के दीक्षा के विचारों को जानकर शक्रेन्द्र अपने यान विमान से जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में क्षत्रियकुण्डपुर नगर में अवतरित हुआ। सहस्रवाहिनी शिविका (पालकी) का निर्माण किया। राजकुमार वर्धमान को वस्त्रालंकारों से विभूषित करके कल्पवृक्ष के समान बनाया। महोत्सव पूर्वक क्षत्रियकुण्डपुर नगर के मध्य मध्य होते हुए जुलूस ज्ञात खण्ड उद्यान में आया। राजकुमार वर्धमान पालकी से नीचे उतरे। एक तरफ जा कर वस्त्र-अलंकारों को उतारा और अपने हाथों से पंचमुष्टि लोच किया। सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके सामायिक चारित्र अङ्गीकार किया तब इन्द्र ने उनके कन्धे पर एक देवदूष्य नामक वस्त्र रखा। उस वस्त्र को लेकर एवं प्रव्रजित होकर भगवान् विहार करने लगे।

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण।
खिप्पामेव णिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं॥ १॥
पडिवज्जित्तु चरित्तं अहोणिसीं सव्वपाणभूयहियं।
साहट्टु लोमपुलया, सव्वे देवा णिसामिंति॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - **तुरियणिणाओ** - वादिन्त्रों के स्वर, **णिलुक्को** - तिरोहित हो गया-स्थगित (बंद) हो गया, **अहोणिसीं** - अहर्निश-दिन रात, **लोमपुलया** - रोम पुलकित, **णिसामिंति** - सुनते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जिस समय भगवान् सामायिक चारित्र ग्रहण कर रहे थे उस समय शकेन्द्र के वचन (आदेश) से देवों के दिव्य स्वर, सभी वादिन्त्रों के निनाद और मनुष्यों के शब्द स्थगित कर दिये गये अर्थात् बंद कर दिये गये, वे सब मौन हो गये।

चारित्र अंगीकार करके भगवान् अहर्निश (रात दिन) सब प्राणियों और भूतों के हित में संलग्न हो गए। सभी देवों ने यह सुना तो हर्ष से उनके रोम रोम पुलकित हो उठे।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खओवसमियं चरित्तं पडिवण्णस्स मणपज्जवणाणे णामं णाणे समुप्पण्णे, अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहि य समुद्देहिं सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ।

कठिन शब्दार्थ - **मणपज्जवणाणे** - मनःपर्यवज्ञान, **वियत्तमणसाणं** - व्यक्त मन वालों के, **मणोगयाइं** - मनोगत।

भावार्थ - तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही मनःपर्यवज्ञान नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ जिससे वे अढाई द्वीप और दो समुद्रों में स्थित पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय व्यक्त मन वाले जीवों के मनोगत भावों को स्पष्ट जानने लगे।

विवेचन - तीर्थंकर भगवान् का जीव पूर्व भव से चव कर जब माता के गर्भ में आता है तब मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानों को साथ लेकर आता है और जब दीक्षा अंगीकार करता है उसी समय मनःपर्यव ज्ञान हो जाता है जिससे वह अढाई द्वीप (जम्बू द्वीप, धातकीखण्ड द्वीप और अर्द्धपुष्कर द्वीप) और दो समुद्र (लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र) में रहे हुए पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मानसिक भावों को जानने लग जाता है। सभी तीर्थंकर भगवन्तों के लिए ऐसा ही नियम है।

तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइए समाणे मित्त णाइं सयण संबंधिवग्गं पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ "बारस वासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जंति तंजहा-दिव्वा वा, माणुस्सा वा, तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे सम्मं सहिस्सामि सम्मं खमिस्सामि सम्मं तितिक्खिस्सामि सम्मं अहियासइस्सामि।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **वोसट्ठकाए** - व्युत्सृष्ट काय-काया का व्युत्सर्ग, **चत्तदेहे** - त्यक्तदेह-शरीर गत ममत्व का त्याग, **खमिस्सामि** - क्षमा भाव रखूंगा, **अहियासइस्सामि** - खेद रहित होकर सहूँगा।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रव्रजित होने के बाद अपने मित्र ज्ञाति स्वजन संबंधी वर्ग को विसर्जित किया। विसर्जित करके इस प्रकार अभिग्रह धारण किया कि-"मैं आज से बारह वर्ष तक अपने शरीर का व्युत्सर्ग करता हूँ। शरीर के ममत्व का त्याग करता हूँ। इस अवधि में देव, मनुष्य या तिर्यंच संबंधी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे। उन सभी उपसर्गों को मैं समभाव पूर्वक सहन करूँगा, क्षमा भाव रखूंगा और शांति से झेलूंगा अर्थात् खेद रहित हो कर सहन करूँगा।"

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् ने दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जो अभिग्रह ग्रहण किया उसका उल्लेख किया गया है।

मूल में '**वोसट्ठकाए चत्तदेहे**' ऐसे दो शब्द दिये हैं। उनमें से 'वोसट्ठकाए' (व्यत्सृष्टकाय) इस शब्द के तीन अर्थ किये गये हैं-यथा १. देह को छोड देना २. शरीर का संस्कार नहीं करना ३. कायोत्सर्ग में स्थित रहना। इन तीन में से पहला अर्थ तो यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है क्योंकि इसके लिये आगे '**चत्तदेहे**' शब्द दिया है उसका भी अर्थ यही होता है। इसलिये यहाँ पर दो अर्थ ग्रहण किये गये हैं। अर्थात् शरीर का किसी प्रकार सेवा सुश्रूषा आदि संस्कार नहीं करना। कायोत्सर्ग का अर्थ है काया का मन से उत्सर्ग करके एक मात्र आत्म गुणों में लीन रहना। '**चत्तदेहे**' का अर्थ है शरीर के प्रति ममत्व एवं आसक्ति नहीं रखना।

दीक्षा लेते ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने यह अभिग्रह धारण किया था कि संयम पालन करते हुए मुझे देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जो भी उपसर्ग आएंगे उन्हें मैं समभाव पूर्वक सहन करूँगा। यहाँ पर सहन करने के लिए मूल पाठ में चार शब्द दिये हैं जिनका क्रमशः टीकाकार ने इस प्रकार अर्थ किया है -

१. सम्मं सहिस्सामि - '**मुखादि अविकार करणेण सम्यक् मर्षिष्ये।**'

अर्थ - यदि कोई थप्पड घूंसा आदि मारेगा तो मुख में किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आने दूँगा अर्थात् मुख को टेड़ा आदि नहीं करूँगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. सम्मं खमिस्सामि - **'क्रोधादि अभावेन सम्यक् क्षमिष्ये।'**

अर्थ - उपसर्ग देने वाले पर क्रोध आदि न करते हुए उसे क्षमा प्रदान करते हुए सम्यक् प्रकार से सहन कर लूँगा।

३. सम्म तितिक्खिस्सामि - **'अदीन भावेन सम्यक् तितिक्षिष्ये।'**

अर्थ - किसी प्रकार की दीनता हीनता बताये बिना उन आने वाले उपसर्गों को शूर वीरता पूर्वक सहन कर लूँगा।

४. सम्म अहियासइस्सामि - **'निर्जरा भावनया' सम्यक् अध्यासिष्ये।**

अर्थ - उपसर्ग आने पर उपसर्ग देने वाले पर किसी प्रकार का अशुभ विचार नहीं करूँगा। बल्कि यह समझूंगा कि मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है। मेरे कर्मों की निर्जरा कराने में यह उपसर्ग दाता तो निमित्त बन रहा है इसलिए यह मेरा मित्र है; ऐसा समझ कर आने वाले उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करूँगा।

तओ णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता वोसट्ठकाए चत्तदेहे दिवसे मुहुत्तसेसे कुम्मारगामं समणुपत्ते॥

भावार्थ - इस प्रकार अभिग्रह धारण करने के बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काया का व्युत्सर्ग एवं काया के ममत्व का त्याग करके ज्ञातखण्ड उद्यान से विहार किया और दिन का मुहूर्त्त शेष रहते कुमारग्राम पहुँचे।

विवेचन - भगवान् ने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन विहार करके सूर्यास्त से एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) पूर्व कुमारग्राम पहुँच गए।

तओ णं समणे भगवं महावीरे वोसट्ठचत्तदेहे अणुत्तरेणं आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं, एवं संजमेणं, पग्गहेणं, संवरेणं, तवेणं, बंभचेरवासेणं, खंतीए, मुत्तीए, समिईए, गुत्तीए, तुट्ठीए, ठाणेणं, कम्मेणं सुचरियफलणिव्वाणमुत्तिमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

कठिन शब्दार्थ - **आलएणं** - वसति अर्थात् निर्दोष स्थान के सेवन से, **पग्गहेणं** - प्रग्रहेण-प्रयत्न से, **तुट्ठीए** - तुष्टि से, **ठाणेणं** - कायोत्सर्गादि स्थान से, **कम्मेणं** - क्रियानुष्ठान से, **सुचरियफलणिव्वाणमुत्तिमग्गेणं** - सुचरितफल निर्वाण मुक्ति मार्ग से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तदनन्तर काया के ममत्व और संस्कार का त्याग किये हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुत्तर वसति के सेवन से अर्थात् निर्दोष स्थान में ठहरने से, अनुत्तर विहार से एवं अनुत्तर संयम, उपकरण, संवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, संतुष्टि, समिति, गुप्ति, कायोत्सर्गादि स्थान और अनुत्तर क्रियानुष्ठान से एवं सुचरित के फलस्वरूप निर्वाण और मुक्ति मार्ग-ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सेवन से युक्त होकर आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन - दीक्षा के बाद विहार के समय भगवान् की कैसी वृत्ति-साधना थी? इसका उल्लेख प्रस्तुत सूत्र में किया गया है।

एवं वा विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुपज्जंति दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे अणाउले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविह मणवयणकायगुत्ते सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ॥

कठिन शब्दार्थ - **अणाउले** - अनाकुलता से, **अव्वहिए** - अव्यथित, **अदीणमाणसे**- अदीनमना।

भावार्थ - इस प्रकार विचरण करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी जो कोई उपसर्ग प्राप्त हुए वे उन सब उपसर्गों को अनाकुलता, अव्यथित, अदीनमना एवं मन-वचन-काया की तीन प्रकार की गुप्तियों से गुप्त होकर सम्यक् प्रकार से सहन करते, उपसर्गदाताओं को क्षमा करते, सहिष्णुभाव धारण करते और शांतिपूर्वक धैर्य से सहन करते थे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् महावीर स्वामी की आत्मरमण की साधना और सहिष्णुता का वर्णन किया गया है।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स बारसवासा वीइक्कंता, तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए जंभियगामस्स णगरस्स बहिया णईए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उज्जुवालियाए उत्तरे कूले, सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सालरुक्खस्स अदूरसामंते उक्कुडुयस्स गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढं जाणू अहोसिरस्स धम्मझाणकोट्ठोवगयस्स सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स णिव्वाणे, कसिणे, पडिपुण्णे, अव्वाहए, णिरावरणे, अणंते, केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे॥

कठिन शब्दार्थ - **उज्जुवालियाए** - ऋजु बालिका, **उत्तरे कूले** - उत्तर तट पर, **कट्ठकरणंसि** - काष्ठ करण क्षेत्र में, **आयावेमाणस्स** - आतापना लेते हुए, **धम्मज्झाण कोट्ठोवगयस्स** - धर्म ध्यान रूपी कोष्ठ में प्रविष्ट हुए, **सुक्कज्झाणंतरियाए** - शुक्ल ध्यानांतरिका में।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को इस प्रकार विचरण करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए। तेरहवें वर्ष के ग्रीष्म ऋतु के दूसरे मास और चौथे पक्ष में अर्थात् वैशाख सुदी दसमी के दिन सुव्रत नामक दिवस में विजय मुहूर्त्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर पूर्वगामिनी छाया होने पर-दिन के दूसरे (पिछले) प्रहर में जृम्भक ग्राम नगर के बाहर ऋजुबालिका नदी के उत्तरतट पर, श्यामाक गृहपति के काष्ठकरणक नामक क्षेत्र में वैयावृत्य नामक उद्यान के ईशानकोण में शालवृक्ष से न अति दूर न अति निकट उत्कुटुक और गोदोहासन से सूर्य की आतापना लेते हुए निर्जल बेले के तप से युक्त ऊपर घुटने और नीचे सिर करके धर्मध्यान कोष्ठ में प्रविष्ठ हुए भगवान् जब शुक्लध्यान में लगातार प्रवर्त्तमान थे तभी उन्हें अज्ञान दुःख से निवृत्ति दिलाने वाला सम्पूर्ण प्रतिपूर्ण अव्याहत निरावरण अनन्त अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् को केवलज्ञान कब कहाँ किस स्थिति में और किस प्रकार प्राप्त हुआ इसका उल्लेख किया गया है। भगवान् ने चार घनघाती कर्मों के सम्पूर्ण क्षय से केवल ज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया।

प्रश्न - ध्यानान्तरिका किसको कहते हैं ?

उत्तर - एक ध्यान पूरा होकर दूसरे ध्यान को प्रारम्भ करना ध्यानान्तरिका कहलाती है। शुक्ल ध्यान के चार भेद कहे गये हैं यथा - १. पृथकत्व वितर्क सविचारी २. एकत्व वितर्क अविचारी ३. सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती ४. समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी शुक्ल ध्यान के पहला भेद का जब ध्यान कर रहे थे और दूसरे को प्रारम्भ करने की तैयारी थी उस समय अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में पदार्पण करते ही उन्हें केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति हुई।

प्रश्न - कर्म कितने हैं ?

उत्तर - कर्म आठ हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं - १. ज्ञानावरणीय २. दर्शनावरणीय ३. वेदनीय ४. मोहनीय ५. आयुष्य ६. नाम ७. गोत्र ८. अन्तराय।

प्रश्न - इन आठ कर्मों में घाती कर्म कितने हैं और उन्हें घाती क्यों कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाती कर्म हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य ये चार आत्मा के मुख्य गुण हैं। इन मुख्य गुणों का घात इन चार कर्मों से होता है इसलिए इनको घाती कर्म कहते हैं। कहीं कहीं इनको घन घाती कर्म भी कहा है। ज्ञानावरणीय कर्म केवलज्ञान का घात करता है और दर्शनावरणीय केवल दर्शन का, मोहनीय यथाख्यात चारित्र का तथा अन्तराय वीर्य का घात करता है।

प्रश्न - अघाती कर्म किसको कहते हैं ? और वे कौनसे हैं ?

उत्तर - वेदनीय, आयुष्य नाम व गोत्र, ये चार अघाती कर्म हैं। ये आत्मा के मुख्य गुणों का घात नहीं करते हैं इसलिए इन्हें अघाती कर्म कहते हैं।

प्रश्न - घाती कर्मों का नाश होने से किस गुण की प्राप्ति होती है?

उत्तर - घाती कर्मों का सर्वथा क्षय होने पर केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होती है।

प्रश्न - एक जीव में कम से कम और ज्यादा से ज्यादा कितने ज्ञान एक साथ पाये जा सकते हैं?

उत्तर - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान ये चार ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इसलिए एक जीव में एक साथ रह सकते हैं अर्थात् एक जीव में ज्यादा से ज्यादा ये चार ज्ञान एक साथ रह सकते हैं। केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है इसलिए जब केवलज्ञान रहता है तब ये चार ज्ञान नहीं रहते हैं सर्वथा नष्ट हो जाते हैं इसलिए एक जीव में एक साथ कम से एक ज्ञान रहता है जैसा कि कहा है -

'णट्ठम्मि य छाउमत्थिए णाणे'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्यव ज्ञान ये चार ज्ञान छाद्मस्थिक ज्ञान कहलाते हैं। इनका सर्वथा क्षय हो जाने पर केवलज्ञान होता है। इसलिए जीव में कम से कम एक ज्ञान रह सकता है।

प्रश्न - केवलज्ञान उत्पन्न होने पर क्या इन चार ज्ञानों का केवलज्ञान में समावेश (प्रवेश-अर्न्तभाव) नहीं हो जाता है?

उत्तर - हाँ, नहीं होता है क्योंकि ये चार ज्ञान क्षायोपशमिक भाव है और केवलज्ञान क्षायिक भाव है। क्षायिक भाव में क्षयोपशम भाव का समावेश नहीं होता है।

प्रश्न - मूल पाठ में केवलज्ञान के लिए जो विशेषण दिये हैं उनका क्या अर्थ हैं?

उत्तर - केवलज्ञान निर्वाण है अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होने पर कषाय का सर्वथा विनाश हो जाता है इसलिए सम्पूर्ण आत्मिक शान्ति प्राप्त हो जाती है। कृत्स्न अर्थात् सम्पूर्ण, परिपूर्ण अर्थात् सर्व अंगों से युक्त, अव्याहत पहाड़, नदी, नाला आदि में कहीं भी नहीं रुकने वाला। निरावरण अर्थात् ज्ञान के ऊपर किसी भी प्रकार का आवरण नहीं रहता। अनन्त ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थ अनन्त है इसलिए उन अनन्त को जानने वाला ज्ञान भी अनन्त है। सब ज्ञानों में केवलज्ञान वर अर्थात् प्रधान है। चार ज्ञानों के नष्ट हो जाने पर अकेला केवलज्ञान ही रहता है इसलिए यह केवल (सिर्फ-अकेला) कहलाता है। इसका सहायक ज्ञान कोई भी नहीं होता है इसलिए इसको असहाय भी कहते हैं।

से भयवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ तंजहा-आगइं गइं ठिइं चयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं च णं विहरइ॥

कठिन शब्दार्थ - **सव्वण्णू** - सर्वज्ञ, **सव्वभावदरिसी** - सर्वभावों को देखने वाले, **कडं** - कृत-किये हुए कार्य को, **भुत्तं** - खाया हुआ, **पीयं** - पीया हुआ, **आवीकम्मं** - प्रकट कर्म को, **रहोकम्मं** - गुप्त कर्म को, **मणोमाणसियं** - मन के मानसिक भाव को।

भावार्थ - वे भगवान् अर्हत्, जिन, ज्ञायक, केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी हो गये। वे देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समस्त लोक के पर्यायों को जानने देखने लगे जैसे कि - जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, उनके खाये और पीये हुए सभी पदार्थों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा उनके द्वारा किये हुए, प्रतिसेवित प्रकट एवं गुप्त सभी कार्यों को तथा उनके द्वारा बोले हुए, कहे हुए और मन के भावों को जानने और देखने लगे। वे सम्पूर्ण लोक में स्थित सब जीवों वे समस्त भावों को तथा समस्त परमाणु पुद्गलों को जानते और देखते हुए विचरण करने लगे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में केवलज्ञान, केवलदर्शन संपन्न आत्मा को अर्हन्त, जिन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी कहा है। केवलज्ञान का अर्थ है वह ज्ञान जो पदार्थों की जानकारी के लिए पूर्ववर्ती मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यव ज्ञान में से किसी की अपेक्षा नहीं रखता है वह केवल अर्थात् अकेला ही रहता है और किसी अन्य ज्ञान की सहायता के बिना ही समस्त पदार्थों के समस्त भावों को जानता है।

केवली को प्रथम समय में ज्ञान होता है और दूसरे समय में दर्शन होता है। अत: पहले सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग किया गया है जबकि छद्मस्थ को प्रथम समय में दर्शन और द्वितीय समय में ज्ञान होता है।

प्रश्न - चार घाती कर्मों में क्षय होने का क्या क्रम है ?

उत्तर - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाती कर्म कहलाते हैं। इनमें से सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है। मोहनीय कर्म का क्षय होते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीन कर्मों का एक साथ क्षय हो जाता है।

प्रश्न - जब मोहनीय कर्म के क्षय होते ही, ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय इन दोनों कर्मों का एक साथ क्षय हो जाता है तो क्रमानुसार '**सव्वण्णू सव्वदरिसी**' पाठ दिया है, इसमें ज्ञान की प्रथमता बतलाई गयी है तो दर्शन की प्रथमता बतलाने वाला "**सव्वदरिसी सव्वण्णू**" ऐसा पाठ भी कहीं मिलता है?

उत्तर - "**सव्वदरिसी सव्वण्णू**" ऐसा पाठ कहीं पर भी नहीं मिलता है।

प्रश्न - ऐसा पाठ नहीं मिलने का क्या कारण है?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है अर्थात् प्रत्येक वस्तु में सामान्य और विशेष ये दो धर्म पाये जाते हैं तदनुसार छद्मस्थ व्यक्ति सामान्य धर्म को पहले जानता है और विशेष धर्म को पीछे जानता है। परन्तु केवलज्ञान के विषय में यह नियम लागू नहीं होता है। केवल ज्ञान पहले वस्तु के विशेष धर्म को जानता है और सामान्य धर्म को पीछे जानता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - इसका क्या कारण है ?

उत्तर - आगमों में अनेक लब्धियों का वर्णन मिलता है। उनमें से प्रवचन सारोद्धार नामक ग्रन्थ के २७० वें द्वार में अट्ठाईस लब्धियों के नाम संगृहीत कर बतलाये गये हैं। उनमें अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान को भी लब्धियों में गिनाया गया है। ये सब लब्धियाँ साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) में ही उत्पन्न होती हैं, अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) में नहीं। इस उत्पत्ति के क्रम से सब केवलज्ञानी भगवन्तों को प्रथम समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन उत्पन्न होता है और उनके उपयोग की प्रवृत्ति भी इसी क्रम से होती है। इस क्रम को बतलाने के लिये आगमों में "**सव्वण्णू सव्वदरिसी**" ऐसा ही पाठ मिलता है।

तीर्थंकर भगवान् को केवलज्ञान होने पर वे सर्व प्रथम धर्मोपदेश देते हैं। उसको प्रथम देशना कहते हैं। उनकी देशना में बारह प्रकार की परिषद होती है। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव ये चार प्रकार के देव और चारों ही प्रकार की देवियाँ तथा मनुष्य-मनुष्यणी और तिर्यंच-तिर्यंचणी, ये बारह प्रकार की परिषद होती है। जृम्भिका ग्राम के बाहर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञान हुआ। चारों प्रकार के देव और देवियाँ केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए आये उनको देख कर जृम्भिका ग्राम की निवासी जनता भी उस महोत्सव में शामिल होने के लिये उमड़ पड़ी। इस प्रकार बारह ही प्रकार की परिषद थी। प्रत्येक तीर्थङ्कर भगवान् की प्रथम देशना में सर्वविरति चारित्र अङ्गीकार करते ही हैं और यहाँ तक कि जिस तीर्थङ्कर के जितने गणधर होने होते हैं, उतने गणधर हो जाते हैं। परन्तु भगवान् महावीर स्वामी की प्रथम देशना खाली गयी। किसी ने सर्व विरति चारित्र अङ्गीकार नहीं किया, यह एक आश्चर्यभूत घटना हुई।

स्थानाङ्ग सूत्र के दसवें स्थान में दस प्रकार के आश्चर्य बतलाये हैं जो कभी किसी अवसर्पिणी काल में अनन्तकाल से ये आश्चर्य (अछेरा) होते हैं। उसमें अभाविता-अभव्या परिषद नामक एक आश्चर्य है। जो कि भगवान् महावीर स्वामी की प्रथम देशना में घटित हुआ। यद्यपि बारह प्रकार की परिषद थी परन्तु सर्व विरति-चारित्र अङ्गीकार करने की योग्यता वाला एक भी व्यक्ति वहाँ नहीं था। इसलिये भगवान् महावीर स्वामी की प्रथम देशना खाली गयी। इसको अभाविता परिषद नामक आश्चर्य कहते हैं।

प्रश्न - तीर्थङ्कर भगवान् जो धर्मोपदेश देते हैं वह वचन उच्चारण पूर्वक देते हैं या केवल अव्यक्त ध्वनि ही होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि तीर्थङ्कर भगवान् की अव्यक्त ध्वनि होती है यही उनका धर्मोपदेश है किन्तु श्वेताम्बर जैनों की मान्यता है कि तीर्थंकर भगवान् भाषा वर्गणा के पुद्गल लेकर वचन रूप से उनका निःसरण करते हैं अर्थात् स्पष्ट रूप से शब्द उच्चारण करते हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए आगम में ये शब्द आये हैं यथा - **आइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ, परूवेइ**। जिनका अर्थ है - स्पष्ट उच्चारण करना।

प्रश्न - प्रथम देशना खाली जाने के बाद भगवान् ने क्या किया?

उत्तर - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जृम्भिका ग्राम से विहार कर मध्यम अपापानगरी पधारे। इस नगरी के सोमिल नामक धनाढ्य ब्राह्मण ने एक महायज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ को सम्पन्न करवाने के लिए उसने अपने समय के वेदों के पारगामी महान् विद्वान ऐसे ग्यारह ब्राह्मण उपाध्यायों को आमंत्रित किया था। उनके नाम इस प्रकार हैं -

१. इन्द्रभूति २. अग्निभूति ३. वायुभूति ४. व्यक्त ५. सुधर्मा ६. मण्डीपुत्र ७. मौर्यपुत्र ८. अकम्पित ९. अचलभ्राता १०. मेतार्य ११. प्रभास।

इन सब के मन में एक-एक शङ्का थी। ये भगवान् से चर्चा करने के लिये आये। भगवान् ने उनकी शङ्का का समाधान कर दिया तब ग्यारह ही ब्राह्मण पण्डित अपने शिष्यों सहित भगवान् के पास दीक्षित हो गये। इनके ४४०० शिष्य थे। इस प्रकार एक ही दिन में ४४११ पुरुषों की एवं कुछ महिलाओं की दीक्षा हुई इनमें से इन्द्रभूति आदि को गणधर पद मिला।

(**नोट** - भगवान् ने दूसरी देशना में चतुर्विध संघ की स्थापना की। अतः उसी दिन साध्वियों का संघ भी बना था। आगमों में कम से कम तीन साध्वियों के बिना उनका रहना नहीं बताया है। इन आगम पाठों के अनुसार पूज्य बहुश्रुत गुरुदेव फरमाया करते थे कि भगवान् महावीर प्रभु की दूसरी देशना में चन्दनबाला आदि कम से कम तीन महिलाओं की दीक्षा तो होने की ही संभावना है। इससे अधिक महिलाओं की भी दीक्षा हुई हो तो बाधा नहीं है। कम से कम तीन महिलाओं की दीक्षा को उपर्युक्त संख्या के साथ जोड़ने पर "४४१४" की संख्या होने की संभावना है। अधिक होने में बाधा नहीं है।)

इसके बाद भगवान् ने उनको भावना सहित पांच महाव्रतों का स्वरूप समझाया जिस का वर्णन आगमकार ने आगे इस प्रकार किया है।

जण्णं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स णिव्वाणे कसिणे जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पण्णे, तण्णं दिवसं भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासि देवेहिं च देवीहिं च उव्वयंतिहिं च जाव उप्पिंजलगब्भूए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - **णिव्वाणे** - निर्वाण अर्थात् सर्वथा शांति।

भावार्थ - जिस दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को निर्वाण अर्थात् सर्वथा शांति दायक संम्पूर्ण यावत् अनुत्तर केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उस दिन भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और विमानवासी (वैमानिक) देव देवियों के आने जाने से महान् दिव्य देवोद्योत हुआ, देवों का मेला लग गया, देवों का कलकलनाद होने लगा, वहाँ का सारा आकाशमंडल हलचल से व्याप्त हो गया।

विवेचन - भगवान् को केवलज्ञान होने पर देव देवियों ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए केवल महोत्सव मनाया।

तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पण्णवरणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख पुव्वं देवाणं धम्ममाइक्खइ तओ पच्छा मणुस्साणं॥

कठिन शब्दार्थ - **उप्पण्णवरणाणदंसणधरे** - उत्पन्न श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारक, **अभिसमिक्ख**- अभिसमीक्ष्य-जान कर, **धम्मं** - धर्म का, **आइक्खइ** - उपदेश दिया।

भावार्थ - तत्पश्चात् अनुत्तर केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञान से अपनी आत्मा और लोक को सम्यक् प्रकार से जान कर पहले देवों को और तत्पश्चात् मनुष्यों को धर्म का उपदेश दिया।

विवेचन - तीर्थंकर भगवन्तों को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होते ही देवों के आसन चलित होते हैं। तब वे अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर देखते हैं कि तीर्थंकर भगवान् को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ है। इसलिए इनके जीताचार के अनुसार केवलज्ञान केवलदर्शन का महोत्सव मनाने के लिए यहाँ तिरछा लोक में आते हैं और महोत्सव मनाते हैं। तब फिर तीर्थङ्कर भगवान् को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होने का मनुष्यों को मालूम होता है। इस अपेक्षा यहाँ मूल पाठ में ऐसा बतला दिया गया है कि 'पहले देवों को उपदेश दिया और फिर मनुष्यों को उपदेश दिया।' इसका आशय यह है कि केवलज्ञान, केवलदर्शन महोत्सव मनाने के लिये सब से पहले देव आते हैं और मनुष्य पीछे आते हैं। इस आगमन के क्रम को सूचित करने के लिए यहाँ धर्मोपदेश का भी यही क्रम बतला दिया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'पुव्वदेवाणं पच्छा मणुस्साणं' - भगवान् महावीर को केवलज्ञान होने के बाद प्रथम देशना में - महोत्सव में आये देवादि को प्रवचन दिया उसमें एक दो मनुष्य भी हो परन्तु मुख्यता देवों की थी तथा व्रतधारण करने वाले कोई नहीं होने से अभावित परिषदा (ठाणांग १०) कहा है। इस विषय में ग्रन्थकारों की भिन्न-भिन्न मान्यता है। जैसे कल्प सूत्र वृत्ति, स्थानाङ्गवृत्ति, प्रवचन सारोद्धार वृत्ति आदि में कहा कि - देव मनुष्य बहुत आये परन्तु अभावित थे। आवश्यक हरिभद्रीयवृत्ति में कहा है कि केवल देव ही आये।

भगवान् महावीर प्रभु वहाँ से विहार कर आगे पहुँचे तब तीर्थ स्थापना के दिन मनुष्यों की मुख्यता में देशना दी। कितनेक भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद रात्रि में विहार कराके दूसरे दिन तीर्थ स्थापना करना मानते हैं। परन्तु वह उचित नहीं लगता है। आगमों से तो तीर्थंकर भी रात्रि विहार नहीं करते हैं ऐसा मालूम पड़ता है। अतः तीर्थ स्थापना दूसरे दिन नहीं मानकर ३-४ आदि जितने दिन लग सके उसके बाद मानने में बाधा नहीं है। जैन साहित्य के मौलिक इतिहास में 'दिगम्बर मान्यता' दी है जो कि ६६ दिनों के बाद मानती है।

तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे गोयमाईणं समणाणं णिग्गंथाणं पंच महव्वयाइं सभावणाइं छज्जीवणिकायाइं आइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ परूवेइ तंजहा-पुढविकाए जाव तसकाए॥

भावार्थ - तत्पश्चात् केवलज्ञान, केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को भावना सहित पांच महाव्रतों और पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय इन षड् जीव निकायों के स्वरूप का कथन किया और सामान्य तथा विशेष रूप से प्ररूपण (प्रतिपादन) किया।

नोट - यहाँ मूल पाठ में चार शब्द दिये हैं "**आइक्खइ, भासइ, पण्णवेइ** और **प्ररूवेइ**।" '**आइक्खइ**' यह "ख्याप्रकथने" इस धातु का वर्तमान काल में 'आख्याती' शब्द बनता है जिसका अर्थ है शब्दों द्वारा स्पष्ट अर्थ कहना। "**भासइ**" बारह प्रकार की परिषद में सब प्राणियों को अपनी अपनी भाषा में परिणत होनी वाली अर्धमागधी भाषा से भाषण करना। '**पण्णवेइ**' सभी प्रकार के संशयों को दूर करते हुए जीवादि पदार्थों की प्रज्ञापना करना। '**परूवेइ**' सामान्य विशेषात्मक रूप से प्ररूपणा करना। वैसे तो सामान्य रूप से ये चारों शब्द एकार्थक हैं किन्तु अलग-अलग धातुओं की क्रिया होने से इन के विशेष रूप से भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं जो ऊपर बतला दिये गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् द्वारा देवों के बाद मनुष्यों को दिये गये उपदेश का वर्णन किया गया है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है - "**सव्व जगज्जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं**"- जगत् के सभी प्राणियों की रक्षा रूप दया के लिए तीर्थंकर उपदेश देते हैं। उनका यही उद्देश्य रहता है कि सभी प्राणी साधना के यथार्थ स्वरूप को समझ कर तदनुसार पुरुषार्थ करते हुए अपनी आत्मा का कल्याण करें। इसीलिए वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करते हैं। साधना का यथार्थ मार्ग बताते हुए प्रभु ने सर्व प्रथम पांच महाव्रत एवं उसकी पच्चीस भावनाओं तथा छह जीवनिकाय का स्वरूप समझाया।

इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीनों ही एक माता के उदर से जन्मे हुए सगे भाई थे। इनका निवास स्थान गोबर ग्राम था। इनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था, इनका गोत्र गौतम था। दीक्षा के समय इन्द्रभूति की उम्र ५० वर्ष, अग्निभूति की छींयालीस वर्ष और वायुभूति की उम्र बयालीस वर्ष की थी।

आगमों में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने सब से बड़े शिष्य इन्द्रभूति को सम्बोधित करके ही प्रश्नोत्तर किये हैं। इन्द्रभूति अपने नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त न होकर गोत्र से विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिये भगवान् ने भी प्रायः सर्वत्र 'हे गोयम' (हे गौतम) ऐसा ही सम्बोधन दिया है। जहाँ पर अग्निभूति के प्रश्नोत्तर हुए हैं वहाँ '**दोच्चे गोयमे**' (द्वितीय गौतम) तथा जहाँ पर वायुभूति के प्रश्नोत्तर हुए हैं वहाँ '**तच्चे गोयमे**' (तृतीय गौतम) ऐसा सम्बोधन दिया है। दूसरे गणधरों के लिये तो उनके नाम से ही सम्बोधित किया गया है। इसीलिए यहाँ मूल पाठ में 'इन्द्रभूति' आदि शब्द न देकर शास्त्रकार ने '**गोयमाईणं**' (गौतम आदि गणधरों को) शब्द दिया है।

यहाँ पर भावना शब्द दृढ़ता का सूचक है अतः जिन बातों से महाव्रत पालने में दृढ़ता आवे उन बातों को यहाँ पर 'भावना' शब्द से निर्दिष्ट किया है।

पढमं भंते! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं पाणाइवायं से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा णेव सयं पाणाइवायं करेज्जा णेव अण्णं पाणाइवायं कारविज्जा अण्णं पि पाणाइवायं करंतं ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - हे भगवन्! मैं प्रथम महाव्रत में सम्पूर्ण प्राणातिपात का त्याग करता हूँ। मैं सूक्ष्म, बादर और त्रस स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात (हिंसा) करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा और प्राणातिपात करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा इस प्रकार मैं यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योगों (मन, वचन, काया) से इस पाप से निवृत्त होता हूँ। हे भगवन्! मैं उस पूर्वकृत पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को हिंसा के पाप से पृथक् करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रथम महाव्रत सर्व प्राणातिपात विरमण का वर्णन किया गया है।

पहले महाव्रत में सर्व प्राणातिपात से निवृत्ति होती है। इसमें सूक्ष्म, बादर, त्रस और स्थावर ये चार शब्द दिये हैं। यहाँ पर सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो जीव सूक्ष्म हैं वे नहीं लिये गये हैं। इसी प्रकार त्रस नाम कर्म के उदय वाले त्रस जीव नहीं लिये गये हैं। किन्तु अपेक्षाकृत सूक्ष्म (छोटा) और बादर (बड़ा) लिया गया है। इसलिए स्थावर के दो भेद हैं। यथा-सूक्ष्म स्थावर वनस्पति और बादर स्थावर पृथ्वीकाय आदि चार स्थावर। इसी प्रकार त्रस के भी दो भेद हैं - सूक्ष्म त्रस कुंथुआ आदि और बादर त्रस हाथी घोडा गाय बैल आदि। यहाँ ऐसा अर्थ लेना चाहिये। क्योंकि सूक्ष्म नाम कर्म के उदय वाले सूक्ष्म जीव तो मारने से मरते ही नहीं है।

प्रश्न - जीव अजर अमर है। वह कभी मरता नहीं और जन्म लेता नहीं फिर उसकी हिंसा कैसे हो सकती है?

उत्तर - हाँ! यह बात ठीक है कि जीव अजर अमर है। इसलिए उसकी हिंसा नहीं होती। अतएव यहाँ मूलपाठ में हिंसा शब्द नहीं देकर **'पाणाइवाय'** (प्राणातिपात) शब्द दिया है।

प्रश्न - प्राणातिपात किसको कहते हैं?

उत्तर - आगम में प्राण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है- **'प्राणिति (जीवति) इति प्राणः।'** जिसके सहारे जीव जीवित रहता है उनको प्राण कहते हैं। उन प्राणों को शरीर से अलग कर देना प्राणातिपात कहलाता है।

प्रश्न - प्राण कितने हैं?

उत्तर - पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास निःश्वास मथान्युदायुः।
प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियाँ हैं। मन, वचन, और काया तथा श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ये दस प्राण हैं। ये दस प्राण भगवान् ने फरमाये हैं। इन प्राणों को जीव से अलग कर देना (अतिपात) प्राणातिपात कहलाता है और इसी को हिंसा कहते हैं।

प्रश्न - किन जीवों के कितने कितने प्राण होते हैं?

उत्तर - एकेन्द्रिय जीवों में चार प्राण होते हैं। यथा - स्पर्शनेन्द्रिय, काया (शरीर), श्वासोच्छ्वास और आयुष्य। बेइन्द्रिय में छह पाण होते हैं यथा चार पूर्वोक्त तथा रसनेन्द्रिय और वचन बल प्राण। तेइन्द्रिय में सात-पूर्वोक्त छह और सातवाँ घ्राणेन्द्रिय। चौरिन्द्रिय में आठ-पूर्वोक्त सात और आठवाँ चक्षुइन्द्रिय। असंज्ञी पंचेन्द्रिय में नौ-पूर्वोक्त आठ और नौवाँ श्रोत्रेन्द्रिय तथा संज्ञी (सन्नी) पंचेन्द्रिय में पूर्वोक्त नौ तथा दसवाँ मन बल प्राण। ये दस प्राण होते हैं।

जिस प्राणी में जितने अधिक प्राण होते हैं उसकी हिंसा में उतना अधिक पाप होता है और उनकी रक्षा में उतना ही धर्म अधिक होता है।

प्रश्न - तीर्थङ्कर भगवान् जगत् के सभी प्राणियों की रक्षा रूप दया के लिए धर्मोपदेश फरमाते हैं तो रक्षा किसे कहते हैं और दया किसे कहते हैं?

उत्तर - प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवर द्वार में अहिंसा भगवती के ६० नाम दिये हैं उनमें रक्षा और दया दोनों शब्द दिये हैं। यद्यपि अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्द एकार्थक हैं तथापि शब्द की दृष्टि से भिन्न अर्थ वाले हैं। यथा-कष्ट में पड़े हुए दीन दुःखी जीव को देख कर हृदय का द्रवित (गीला-भीगना-कम्पित) हो जाना दया (अनुकम्पा) है। उस दीन दुःखी जीव को कष्ट से यावत् मृत्यु से बचा लेना रक्षा है। दया, रक्षा दोनों धर्म के अङ्ग हैं।

प्रश्न - इनको महाव्रत क्यों कहा है?

उत्तर - देश विरति श्रावक के अणुव्रतों की अपेक्षा सर्व विरति साधु मुनिराज के व्रत बड़े हैं। इसलिए इनको 'महाव्रत' कहते हैं। साधु मुनिराज छह काय जीवों की रक्षा करते हैं अतः उनका प्रथम महाव्रत सर्व प्राणातिपात विरमण कहा गया है।

तस्स इमाओ पंच भावणाओ भवंति-तत्थिमा पढमा भावणा, इरियासमिए से णिग्गंथे, णो अणइरिया समिए त्ति, केवली बूया अणइरियासमिए से णिग्गंथे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणिज्ज वा, वत्तिज्ज वा, परियाविज्ज वा, लेसिज्ज वा, उद्दविज्ज वा, इरियासमिए से णिग्गंथे, णो इरियाअसमिए त्ति पढमा भावणा ॥ १ ॥

कठिन शब्दार्थ - **अणइरियासमिए** - ईर्या समिति से रहित।

भावार्थ - उस प्रथम महाव्रत की पांच भावनाएँ होती है। उसमें से पहली भावना है- निर्ग्रन्थ ईर्या समिति से युक्त होता है, ईर्या समिति से रहित नहीं। केवली भगवान् कहते हैं कि ईर्यासमिति से रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करता है, धूल आदि से ढकता है दबा देता है, परिताप देता है या पीडित करता है। इसलिए निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त हो कर रहे, ईर्या समिति से रहित होकर नहीं। यह प्रथम भावना है।

विवेचन - भावना का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार दिया है -

"प्राणातिपातादि निवृत्ति लक्षण महाव्रत संरक्षणाय भाव्यन्ते इति भावना"

अर्थ - प्राणातिपात मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह से निवृत्ति रूप पांच महाव्रतों की सुरक्षा के लिए जो भावित की जाती हैं, उन्हें 'भावना' कहते हैं। इन भावनाओं को भावित करने से महाव्रतों के पालन में दृढ़ता आती है और उनमें किसी प्रकार का अतिचार नहीं लगता है। महाव्रतों का निरतिचार पालन करने से उत्कृष्ट भावना बनने पर तीर्थंकर गोत्र बंधता है। प्रत्येक महाव्रत की ५-५ भावनाएँ हैं।

चूर्णिकार ने विवेचन करते हुए कहा है - आत्मा को उन प्रशस्त भावों से भावित करना 'भावना' है। जैसे शिलाजीत के साथ लोहरसायन की भावना दी जाती है। कोद्रव को विष के साथ भावना दी जाती है। इसी प्रकार ये भावनाएं हैं। ये चारित्र भावनाएं हैं। महाव्रतों के गुणों में वृद्धि करने हेतु ये भावनाएं बनाई गई हैं।

प्रस्तुत सूत्र में प्रथम महाव्रत की प्रथम भावना का उल्लेख किया गया है। प्रथम भावना ईर्या समिति से संबद्ध है। जो विवेक पूर्वक ईर्यासमिति का पालन करते हुए चलता है वह पाप कर्म का बंध नहीं करता है। अतः चलने फिरने में विवेक और यतना रखना साधु के लिये अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न - मूल पाठ में प्राण, भूत, जीव और सत्त्व ये चार शब्द दिये हैं। इनका क्या अर्थ है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - प्राणाः द्वि त्रि चतुः प्रोक्ताः, भूतास्तु तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेन्द्रियाः प्रोक्ताः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः॥

अर्थ - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव को 'प्राण' कहते हैं। वनस्पतिकाय को 'भूत'। पंचेन्द्रिय को 'जीव' कहते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय को 'सत्त्व' कहते हैं। जहाँ पर प्राण, भूत, जीव, सत्त्व ये चारों शब्द आते हैं तब उपरोक्त भिन्न-भिन्न अर्थ करना चाहिए। परन्तु जहाँ पर इनमें से एक ही शब्द आवे वहाँ पर एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों का ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्रश्न - '**अभिहणिज्ज**' आदि शब्दों का क्या अर्थ है ?

उत्तर - '**अभिहणिज्ज**' (अभिहन्यात्) पैर आदि से ताड़ित किया हो '**वत्तिज्ज**' (वर्तयेत्) धूल आदि से ढक दिया हो अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिया हो। '**परियाविज्ज**' (पीडामुत्पादयेत) परिताप (कष्ट-पीड़ा) उत्पन्न किया हो। '**लेसिज्ज**' (श्लेषयेत्) मसला हो। '**उद्दविज्ज**' (अपद्रापयेत्) जीवन से रहित किया हो।

प्रश्न - ईर्यासमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर - ज्ञान, दर्शन और चारित्र के निमित्त आगमोक्त काल में युग (चार हाथ) परिमाण आगे भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए राजमार्ग आदि में यतना पूर्वक गमनागमन करना तथा चलते हुए पांच इन्द्रियों को अपने विषय की ओर न जाने देना तथा स्वाध्याय (वाचना, पृच्छना, परिवर्त्तना, धर्मकथा, अनुप्रेक्षा) भी न करना किन्तु चित्त को एकाग्र रखते हुए चलना ईर्या समिति कहलाती है।

अहावरा दोच्चा भावणा-मणं परिजाणाइ से णिग्गंथे जे य मणे पावए सावज्जे सकिरिए अण्हयकरे छेयकरे भेयकरे अहिगरणिए पाउसिए परियाविए पाणाइवाइए भूओवघाइए तहप्पगारं मणं णो पधारिज्जा, मणं परिजाणाइ से णिग्गंथे जे य मणे अपावए त्ति दोच्चा भावणा॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - **सकिरिए** - पापकारी क्रिया करने वाला, **अण्हयकरे** - आस्रवकारक, आस्रव करने वाला, **अहिगरणिए** - कलह करने वाला, **पाउसिए** - द्वेष करने वाला, **भूओवघाइए** - भूतोपघातिक, **पधारिज्जा** - धारण करे, **अपावए** - पाप से रहित, **परियाविए**- परिताप उत्पन्न करने वाला, **पाणाइवाइए** - प्राणातिपात (जीव हिंसा करने वाला)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - तदनन्तर दूसरी भावना है-मन को अच्छी तरह जान कर जो मन को पापों से हटाता है वह निर्ग्रन्थ है। जो मन पापकारी है, सावद्य है, क्रियाओं से युक्त है, कर्मों का आस्रवकारक है, छेदनकारी भेदनकारी है, क्लेशकारी द्वेषकारी है, परितापकारक है, प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला है और जीवों का उपघातक है। इस प्रकार के मन को (मानसिक विचारों को) धारण न करे। जिसका मन पापों से रहित है वह निर्ग्रन्थ है। यह दूसरी भावना है।

विवेचन - प्रथम महाव्रत की दूसरी भावना में मनोगुप्ति-मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोक कर मानसिक चिन्तन की शुद्धता का वर्णन किया गया है।

अहावरा तच्चा भावणा, वइं परिजाणाइ से णिग्गंथे, जा य वई पाविया सावज्जा सकिरिया जाव भूओवघाइया तहप्पगारं वइं णो उच्चारिज्जा, जे वइं परिजाणाइ से णिग्गंथे जा य वई अपाविय त्ति तच्चा भावणा॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - **उच्चारिज्जा** - उच्चारण करे, **वई** - वचन, वाणी, **पाविया** - प्राणियों का अपकार करने वाली।

भावार्थ - तदनन्तर तीसरी भावना यह है - जो साधक वचन का स्वरूप जान कर सदोष वचनों का त्याग करता है वह निर्ग्रन्थ है। जो वचन पापकारी, सावद्य, क्रियाओं से युक्त, कर्मों का आस्रवजनक, छेदनकारी भेदनकारी, क्लेशकारी, द्वेषकारी है, परिताप कारक है, प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला और जीवों का उपघातक है। साधु ऐसे वचनों का उच्चारण न करे। जो वाणी के दोषों को जानकर उन्हें छोड़ता है और पाप रहित निर्दोष वचन का उच्चारण करता है वही निर्ग्रन्थ है। यह तीसरी भावना है।

विवेचन - सदोष एवं पापयुक्त भाषा से जीव हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है अतः प्रथम महाव्रत की इस तीसरी भावना में वचन गुप्ति-वाणी की निर्दोषता का कथन किया गया है।

अहावरा चउत्था भावणा-आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा समिए से णिग्गंथे, णो अणायाणभंडमत्त णिक्खेवणा समिए णिग्गंथे केवली बूया, आयाणभंडमत्त-णिक्खेवणा असमिए से णिग्गंथे पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा तम्हा आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिए से णिग्गंथे, णो आयाणभंडमत्त- णिक्खेवणा असमिए त्ति चउत्था भावणा॥ ४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा समिए** - आदान भांड मात्र निक्षेपणा समित अर्थात् समिति युक्त, **आयाण (आदान)** - उठाना, **भंडमत्त (भाण्डमात्र)** - पात्र आदि, **णिक्खेवणा (निक्षेपन)** - धरना-रखना।

भावार्थ - तदनन्तर चौथी भावना यह है - जो आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति से युक्त होता है वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान् कहते हैं जो आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति से रहित है वह प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों का अभिघात करता है, धूल आदि से आच्छादित करता है यावत् उन्हें पीडा पहुँचाता है इसलिए जो आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति से युक्त है वही निर्ग्रन्थ है। यह चौथी भावना है।

विवेचन - साधक साधना में आवश्यक भण्डोपकरण को यतना से उठाए और रखे तथा यतना पूर्वक उपयोग में ले। अयतना से कार्य करने वाला साधक प्रथम महाव्रत को शुद्ध नहीं रख सकता और पाप कर्म का बंध करता है अतः प्रथम महाव्रत की यह चौथी भावना आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति से युक्त होने की है।

अहावरा पंचमा भावणा, आलोइयपाणभोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणालोइयपाणभोयणभोई, केवली बूया अणालोइयपाणभोयणभोई से णिग्गंथे पाणाइं वा भूयाइं वा जीवाइं वा सत्ताइं वा अभिहणिज्ज वा जाव उद्दविज्ज वा तम्हा आलोइयपाणभोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणालोइयपाणभोयणभोई त्ति पंचमा भावणा॥

कठिन शब्दार्थ - **आलोइयपाणभोयणभोई** - आलोकित पान भोजन भोजी।

भावार्थ - तदनन्तर पांचवी भावना यह है-जो साधक आलोकित पान भोजन भोजी-विवेक पूर्वक देख कर आहार पानी करता है वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान् कहते हैं कि जो बिना देखे ही आहार पानी का सेवन करता है वह निर्ग्रन्थ प्राणी, भूतों, जीवों, और सत्त्वों का हनन करता है यावत् उन्हें पीडा पहुँचाता है। अतः आलोकित पान भोजन भोजी ही निर्ग्रन्थ है। यह पांचवी भावना है।

विवेचन - साधु साध्वी को बिना देखे खाने-पीने के पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिये। इसके लिये आगमकार ने प्रथम महाव्रत की यह पांचवी भावना फरमाई है।

एयावता पढमे महव्वए सम्मं काएण फासिए पालिए तीरिए, किट्टिए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवइ, पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं॥

कठिन शब्दार्थ - फासिए - स्पर्शित, **पालिए** - पालित, **तीरिए** - तीर्ण, **किट्टिए** - कीर्तित, **अवट्ठिए** - अवस्थित।

भावार्थ - इस प्रकार साधक द्वारा स्वीकृत प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम महाव्रत का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श करने पर, पालन करने पर, पार लगाने पर, उसका कीर्तन करने पर उससे अवस्थित रहने पर भगवान् की आज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है। यह प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम महाव्रत है। हे भगवन्! मैं इसमें उपस्थित होता हूँ।

विवेचन - प्रथम महाव्रत की सम्यक् आराधना कैसे हो? इसके लिये पांच क्रम बताए हैं - १. **स्पर्शना** - सम्यक् श्रद्धा प्रतीति पूर्वक महाव्रत ग्रहण करना २. **पालना** - ग्रहण करने के बाद उसका शक्ति अनुसार पालन करना ३. **तीर्णता** - जो महाव्रत स्वीकार कर लिया है उसे अन्त तक पार लगाना चाहिए उसमें चाहे कितनी ही विघ्न-बाधाएँ रुकावटें आएं, कितने ही भय या प्रलोभन आएं परन्तु कृत निश्चय से पीछे न हटना, जीवन के अंतिम श्वास तक उसका पालन करना तीर्ण होना है ४. **कीर्तना** - स्वीकृत महाव्रत का महत्त्व समझ कर उसकी प्रशंसा करना दूसरों को उसकी विशेषता समझाना कीर्तन करना है ५. **अवस्थितता** - कितने ही झंझावात आएं भय या प्रलोभन आएं किन्तु गृहीत अर्थात् धारण किये हुए महाव्रत में डटा रहे, विचलित न हो, अवस्थितता है।

अहावरं दोच्चं महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मुसावायं वइदोसं से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, णेव सयं मुसं भासिज्जा, णेवण्णेणं मुसं भासाविज्जा, अण्णं पि मुसं भासंतं ण समणुजाणिज्जा, तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि जाव वोसिरामि॥

कठिन शब्दार्थ - **मुसावायं** - मृषावाद, **वइदोसं** - वचन के दोषों को, **भासिज्जा** - बोले।

भावार्थ - इसके पश्चात् मैं दूसरा महाव्रत स्वीकार करता हूँ। आज से मैं मृषावाद और सदोष वचन का त्याग करता हूँ। अतः साधु क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से न तो स्वयं मृषा (असत्य-झूठ) बोले, न दूसरों से असत्य बुलवाएं और असत्य बोलने वाले की अनुमोदना भी नहीं करे। इस प्रकार तीन करण तीन योग (मन-वचन-काया) से मृषावाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(झूठ) का सर्वथा त्याग करता हूँ। इस प्रकार मृषावाद विरमण रूप द्वितीय महाव्रत स्वीकार करके हे भगवन्! मैं पूर्वकृत मृषावाद का प्रतिक्रमण करता हूँ। आलोचना करता हूँ, आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को मृषावाद से सर्वथा पृथक् करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वियों के दूसरे महाव्रत का वर्णन किया गया है। इस महाव्रत में साधक तीन करण तीन योग से मृषावाद का त्याग करता है।

चार कारणों से झूठ बोला जा सकता है। इसके चार कारण ये हैं यथा - क्रोध, लोभ, भय और हास्य। इसी प्रकार मान और माया के वश होकर भी झूट बोला जा सकता है। इसलिये माया और मान को भी यहाँ ग्रहण कर लेना चाहिए।

तस्स इमाओ पंच भावणाओ भवंति। तत्थिमा पढमा भावणा, अणुवीइभासी से णिग्गंथे, णो अणणुवीइभासी, केवली बूया अणणुवीइभासी से णिग्गंथे समावज्जिज्ज मोसं वयणाए, अणुवीइभासी से णिग्गंथे, णो अणणुवीइभासी त्ति पढमा-भावणा॥ १॥

अहावरा दोच्चा भावणा, कोहं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो कोहणे सिया, केवली बूया, कोहपत्ते कोहत्तं समावइज्जा मोसं वयणाए कोहं परिजाणाइ से णिग्गंथे, ण य कोहणे सियत्ति दोच्चा भावणा॥ २॥

अहावरा तच्चा भावणा, लोभं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो य लोभणए सिया, केवली बूया, लोभपत्ते लोभी समावइज्जा मोसं वयणाए, लोभं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो य लोभणए सियत्ति तच्चा भावणा॥ ३॥

अहावरा चउत्था भावणा, भयं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो भयभीरुए सिया, केवली बूया भयप्पत्ते भीरू समावइज्जा मोसं वयणाए, भयं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो भयभीरुए सिय त्ति चउत्था भावणा॥ ४॥

अहावरा पंचमा भावणा, हासं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो य हासणए सिया, केवली बूया, हासपत्ते हासी समावइज्जा मोसं वयणाए, हासं परिजाणाइ से णिग्गंथे, णो य हासणए सिय त्ति पंचमा भावणा॥ ५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **अणुवीइभासी** - अनुवीचि भाषी-विचार पूर्वक भाषण करने वाला, **कोहण्णत्ते**- क्रोध को प्राप्त हुआ, **भयभीरुए** - भय भीरु अर्थात् डरपोक, **अणणुवीइभासी**- अननुवीचि-बिना विचारे बोलने वाला, **कोहत्तं** - क्रोधत्व-क्रोधपना, **कोहणे** - क्रोधन:- क्रोधी, **भयपत्ते** - भयप्राप्त-भयभीत।

भावार्थ - उस द्वितीय महाव्रत की ये पांच भावनाएं हैं। उन पांच भावनाओं में प्रथम भावना है- जो विचार पूर्वक भाषण करता है वह निर्ग्रन्थ है। बिना विचारे भाषण करने वाला निर्ग्रन्थ नहीं है। केवली भगवान् कहते हैं कि बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थ को मिथ्या भाषण का दोष लगता है अत: विचार पूर्वक बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है। बिना विचार पूर्वक बोलने वाला नहीं। यह प्रथम भावना है।

दूसरी भावना इस प्रकार है - जो साधक क्रोध का कटुफल जान कर उसका त्याग करता है वह निर्ग्रन्थ है। अत: साधु को क्रोधी नहीं होना चाहिये। केवली भगवान् कहते हैं कि-क्रोध के आवेश में व्यक्ति असत्य वचन का प्रयोग कर देता है। अत: जो साधक क्रोध का अनिष्ट स्वरूप जान कर उसका परित्याग कर देता है वही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, क्रोधी नहीं। यह दूसरी भावना है।

इसके पश्चात् तीसरी भावना यह है - जो साधक लोभ का दुष्परिणाम जान कर उसका त्याग कर देता है वह निर्ग्रन्थ है। अत: साधु लोभी नहीं होना चाहिए। केवली भगवान् कहते हैं कि लोभ के वश होकर व्यक्ति असत्य बोल देता है। अत: जो साधक लोभ का अनिष्ट स्वरूप जान कर उसका परित्याग कर देता है वही निर्ग्रन्थ है, लोभाविष्ट नहीं। यह तीसरी भावना है।

इसके पश्चात् चौथी भावना यह है - जो साधक भय का दुष्परिणाम जान कर उसका त्याग करता है वह निर्ग्रन्थ है। अत: साधु भयभीत न हो। केवली भगवान् का कथन है कि भय प्राप्त भीरू व्यक्ति भयाविष्ट हो कर असत्य बोल देता है अत: जो साधक भय का अनिष्ट स्वरूप जान कर उसका त्याग कर देता है वही निर्ग्रन्थ है न कि भयभीत। यह चौथी भावना है।

तदनन्तर पांचवीं भावना यह है - जो साधक हास्य के अनिष्ट परिणाम को जान कर उसका त्याग करता है वह निर्ग्रन्थ है। अत: साधु को हंसी मजाक नहीं करना चाहिये। केवली भगवान् का कथन है कि हास्य वश व्यक्ति असत्य बोल देता है अत: जो साधक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हास्य का अनिष्ट स्वरूप जान कर उसका त्याग कर देता है वही निर्ग्रन्थ है, हंसी मजाक करने वाला (हंसोड) नहीं। यह पांचवी भावना है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दूसरे महाव्रत की पांच भावनाओं का वर्णन किया गया है। दूसरे महाव्रत की पांच भावनाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं-१. सोच विचार कर बोले २. क्रोध का त्याग ३. लोभ का त्याग ४. भय का त्याग और ५. हास्य का त्याग। क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य और भय, इन छह कारणों से असत्य बोला जा सकता है। क्योंकि असत्य बोलने के छह कारण मुख्य हैं। अतः असत्य का सर्वथा त्याग करने वाले साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह विवेकपूर्वक भाषा बोले।

एयावता दोच्चे महव्वए सम्मं काएण फासिए जाव आणाए आराहिए यावि भवइ। दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं॥

भावार्थ - इस प्रकार दूसरे महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, पालन करने, गृहीत महाव्रत को भलीभांति पार लगाने, उसका कीर्तन करने एवं उसमें अवस्थित रहने से भगवान् की आज्ञा के अनुसार आराधन हो जाता है। मृषावाद विरमण रूप यह दूसरा महाव्रत है। हे भगवन्! मैं इसमें उपस्थित होता हूँ।

अहावरं तच्चं भंते! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं अदिण्णादाणं, से गामे वा, णगरे वा, अरण्णे वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं अदिण्णं गिण्हिज्जा, णेवण्णेहिं अदिण्णं गिण्हाविज्जा, अण्णं पि अदिण्णं गिण्हंतं ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए जाव वोसिरामि॥

कठिन शब्दार्थ - **अदिण्णादाणं** - अदत्तादान को, **अरण्णे** - अरण्य-जंगल में, **चित्तमंतं** - सचित्त।

भावार्थ - इसके बाद हे भगवन्! मैं तीसरा महाव्रत स्वीकार करता हूँ। जिसमें सब प्रकार से अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ। वह चाहे गांव में हो, नगर में हो, अरण्य में हो, थोडा हो या बहुत हो, सूक्ष्म हो या स्थूल हो, सचेतन हो या अचेतन हो उसे उसके स्वामी के दिये बिना न तो मैं स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरे से ग्रहण कराऊँगा और न ही अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करूँगा। इस प्रकार यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से यह प्रतिज्ञा करता हूँ। साथ ही पूर्वकृत अदत्तादान रूप पाप का प्रतिक्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हूँ, आत्मनिंदा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को अदत्तादान से सर्वथा पृथक् करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वियों के तीसरे महाव्रत का वर्णन किया गया है इस महाव्रत में साधक तीन करण तीन योग से अदत्तग्रहण-चोरी का त्याग करता है।

इसमें आये हुए अल्प आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार हैं -

१. **अल्प** - मूल्य की दृष्टि से अल्प जैसे - एक कौडी या जिसका मूल्य एक कोडी हो अथवा परिमाण की दृष्टि से अल्प जैसे एरण्ड की लकड़ी।

२. **बहु (बहुत)** - मूल्य की दृष्टि से बहुमूल्य जैसे-हीरा, पन्ना आदि। परिमाण से बहुत, बहुत संख्या। अर्थात् दो, तीन, चार आदि।

३. **अणु (सूक्ष्म)** - इमली का छोटा पत्ता।

४. **स्थूल** - लोहे आदि का टुकड़ा।

५. **सचित्त** - शिष्य-शिष्या।

६. **अचित्त** - आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि। साधु-साध्वी कुछ चीजें तो अचित्त ही लेते हैं सचित्त नहीं लेते। जैसे आहार, पानी, वस्त्र पात्र आदि। साधु-साध्वी कुछ वस्तु सचित्त ही लेते हैं अचित्त नहीं। जैसे-शिष्य (चेला) शिष्या (चेली) को भी तभी ग्रहण करना चाहिये जबकि उसके माता-पिता, संरक्षक, अभिभावक आदि की आज्ञा होने पर ही दीक्षा देनी चाहिये। अन्यथा अदत्तादान विरमण रूप तीसरे महाव्रत का भंग हो जाता है।

तस्स इमाओ पंच भावणाओ भवंति। तत्थिमा पढमा भावणा अणुवीइ मिउग्गहं जाई से णिग्गंथे, णो अणणुवीई मिउग्गहं जाई से णिग्गंथे केवली बूया अणणुवीई मिउग्गहं जाई से णिग्गंथे अदिण्णं गिण्हिज्जा, अणुवीइ मिउग्गहं जाई से णिग्गंथे णो अणणुवीइ मिउग्गहं जाई ति पढमा भावणा॥ १॥

अहावरा दोच्चा भावणा अणुण्णविय पाणभोयणभोई से णिग्गंथे णो अणणुण्णविय पाणभोयणभोई केवली बूया, अणणुण्णविय पाणभोयणभोई से णिग्गंथे अदिण्णं भुंजिज्जा, तम्हा अणुण्णविय पाणभोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणणुण्णविय पाण भोयणभोई त्ति दोच्चा भावणा॥ २॥

अहावरा तच्चा भावणा, णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एतावताव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उग्गहणसीलए सिया, केवली बूया, णिग्गंथे णं उग्गहंसि अणुग्गहियंसि एतावताव अणुग्गहणसीले अदिण्णं उगिण्हिज्जा, णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एतावताव उग्गहणसीलए सियत्ति तच्चा भावणा॥ ३॥

अहावरा चउत्था भावणा, णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं उग्गहणसीलए सिया, केवली बूया, णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं अणोग्गहणसीले अदिण्णं गिण्हिज्जा, णिग्गंथे उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं उग्गहणसीलए सिय त्ति चउत्था भावणा॥ ४॥

अहावरा पंचमा भावणा, अणुवीइ मिउग्गहजाई से णिग्गंथे, साहम्मिएसु णो अणणुवीइ मिउग्गहं जाई, केवली बूया, अणणुवीइ मिउग्गहजाई से णिग्गंथे साहम्मिएसु अदिण्णं उगिण्हिज्जा, अणुवीइ मिउग्गहजाई से णिग्गंथे साहम्मिएसु णो अणणुवीइ मिउग्गहजाई इइ पंचमा भावणा॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - **अणुवीइ** - विचार कर, **मिउग्गहं** - मित अवग्रह की, **जाई** - याची-याचना करने वाला, **उग्गहणसीलए** - अवग्रहण शील, **साहम्मिएसु** - साधर्मिकों में।

भावार्थ - उस तीसरे महाव्रत की ये पांच भावनाएँ हैं। उन पांच भावनाओं में प्रथम भावना इस प्रकार है - जो साधक पहले विचार करके परिमित अवग्रह की याचना करता है वह निर्ग्रन्थ है, न कि बिना विचार किये मितावग्रह की याचना करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं कि जो बिना विचार किये परिमित अवग्रह की याचना करता है वह निर्ग्रन्थ अदत्त ग्रहण करता है। अतः विचार करके परिमित अवग्रह की याचना करने वाला साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है न कि बिना विचार किये परिमित अवग्रह की याचना करने वाला। यह प्रथम भावना है।

इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है - गुरुजनों की आज्ञा ले कर आहार पानी आदि करने वाला निर्ग्रन्थ होता है न कि बिना आज्ञा के आहार पानी करने वाला। केवली भगवान् कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ गुरु आदि की आज्ञा प्राप्त किये बिना आहार पानी आदि करता है वह अदत्तादान का सेवन करता है।अतः आज्ञा पूर्वक आहार पानी करने वाला ही निर्ग्रन्थ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है। आज्ञा ग्रहण किये बिना आहार पानी आदि का सेवन करने वाला नहीं। यह दूसरी भावना है।

इसके बाद तीसरी भावना यह है--साधु क्षेत्र और काल के परिमाण पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला होता है। केवली भगवान् कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ क्षेत्र और काल की मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना नहीं करता वह अदत्तादान का सेवन करने वाला होता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु क्षेत्र और काल की मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करने वाला होता है अन्यथा नहीं। यह तीसरी भावना है।

तदनन्तर चौथी भावना यह है - निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने के बाद बार-बार अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने वाला हो। क्योंकि केवली भगवान् कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेता परन्तु बार-बार अवग्रह की अनुज्ञा नहीं लेता, वह अदत्तादान का सेवन करता है। अतः निर्ग्रन्थ को एक बार अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर भी पुनः-पुनः अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। यह चौथी भावना है।

तदनन्तर पांचवीं भावना इस प्रकार है - जो साधक साधर्मिकों से भी विचार पूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे मर्यादित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। केवली भगवान् कहते हैं कि जो बिना विचारे साधर्मिकों से परिमित अवग्रह की याचना करता है वह अदत्तादान का सेवन करता है। अतः जो साधक साधर्मिकों से भी विचार पूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है वही निर्ग्रन्थ कहलाता है, बिना विचारे साधर्मिकों से मर्यादित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। यह पांचवीं भावना हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीसरे महाव्रत की पांच भावनाओं का वर्णन किया गया है जो संक्षेप में इस प्रकार हैं - १. साधु किसी भी आवश्यक एवं कल्पनीय वस्तु को बिना आज्ञा ग्रहण न करे २. प्रत्येक वस्तु को ग्रहण करने के पूर्व गुरु की आज्ञा ले ३. क्षेत्र और काल की मर्यादा पूर्वक अवग्रह की याचना करे ४. बार-बार आज्ञा ग्रहण करे और ५. साधर्मिकों से भी विचार पूर्वक अवग्रह की याचना करे।

तीसरे महाव्रत की सुरक्षा के लिए ये पांच भावनाएँ आवश्यक हैं।

एतावताव तच्चे महव्वए सम्मं जाव आणाए आराहए यावि भवइ, तच्चे भंते! महव्वए अदिण्णादाणाओ वेरमणं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इस प्रकार पांच भावनाओं से युक्त तीसरे महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, पालन करने, गृहीत महाव्रत को भली भांति पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा उसमें अंत तक अवस्थित रहने पर भगवान् की आज्ञा का आराधन हो जाता है। यह अदत्तादान विरमण रूप तीसरा महाव्रत है। हे भगवन्! मैं इसमें उपस्थित होता हूँ।

अहावरं चउत्थं महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मेहुणं से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा, णेव सयं मेहुणं गच्छिज्जा, णेव अण्णं मेहुणं गच्छाविज्जा, मेहुणं गच्छंतं अण्णावि ण समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

भावार्थ - इसके पश्चात् हे भगवन्! मैं चतुर्थ महाव्रत अंगीकार करता हूँ। इसमें समस्त प्रकार के मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ। देव संबंधी, मनुष्य संबंधी और तिर्यंच संबंधी मैथुन का स्वयं सेवन नहीं करूँगा, न दूसरे से सेवन कराऊँगा और न ही मैथुन सेवन करने वाले का अनुमोदन करूँगा। इस प्रकार मैं यावज्जीवन के लिये तीन करण तीन योग (मन, वचन, और काया) से मैथुन सेवन रूप पाप से निवृत्त होता हूँ। हे भगवन्! मैं उस पूर्वकृत पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् उस पाप से पीछे हटत हूँ। आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को मैथुन के पाप से पृथक् करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वियों के चौथे महाव्रत का वर्णन किया गया है। इस महाव्रत में साधु साध्वी तीन करण तीन योग से देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी मैथुन के सर्वथा त्यागी होते हैं।

तस्स इमाओ पंच भावणाओ भवंति। तत्थिमा पढमा भावणा णो णिग्गंथे अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहइत्तए सिया, केवली बूया णिग्गंथे णं अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहेमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवली पण्णत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा, णो णिग्गंथे णं अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहित्तए सिय त्ति पढमा भावणा॥ १॥

अहावरा दोच्चा भावणा, णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिया, केवली बूया, णिग्गंथे णं इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं आलोएमाणे णिज्झाएमाणे संतिभेया संतिविभंगा जाव धम्माओ भंसिज्जा णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिय त्ति दोच्चा भावणा॥ २॥

अहावरा तच्चा भावणा, णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरित्तए सिया, केवली बूया, णिग्गंथे णं इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवली पण्णत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरित्तए सिय त्ति तच्चा भावणा।

अहावरा चउत्था भावणा, णाइमत्त पाणभोयणभोई से णिग्गंथे णो पणीयरस भोयणभोई, केवली बूया, अइमत्त पाणभोयणभोई से णिग्गंथे, पणीयरस भोयणभोई च संतिभेया जाव भंसिज्जा, णो अइमत्त पाणभोयणभोई से णिग्गंथे, णो पणीयरसभोयणभोई त्ति चउत्था भावणा॥

अहावरा पंचमा भावणा णो णिग्गंथे इत्थी पसु पंडग संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सिया, केवली बूया, णिग्गंथे णं इत्थी-पसु-पंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा, णो णिग्गंथे इत्थी-पसुपंडग-संसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सिय त्ति पंचमा भावणा॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - **इत्थीणं** - स्त्रियों की, **कहं** - कथा को, **कहित्तए** - कहने वाला, **संति** - शांति-चारित्र समाधि, **भेया** - भेद, **भंसिज्जा** - भ्रष्ट हो जाता है, **मणोहराइं** - मनोहर, **आलोइत्तए** - अवलोकन करना, **णिज्झाइत्तए** - आसक्ति पूर्वक देखना, **पुव्वरयाइं**- पूर्व रति को, **पुव्व कीलियाइं**- पूर्व क्रीडा को, **सरमाणे** - स्मरण करता हुआ, **पणीय रस भोयणभोई** - प्रणीत रस भोजन भोजी, **इत्थी पसु पंडग संसत्ताइं** - स्त्री, पशु, नपुंसक आदि से युक्त, **सयणासयाइं** - शय्या उपाश्रय आसनादि को।

भावार्थ - उस चतुर्थ महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं। उन पांच भावनाओं में से प्रथम भावना इस प्रकार है - निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की कथा नहीं कहे। केवली भगवान् का कथन है कि बार-बार स्त्रियों की कथा कहने वाला साधु शांति रूप चारित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु को स्त्रियों की बार-बार कथा नहीं करनी चाहिये। यह प्रथम भावना है।

इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है - निर्ग्रन्थ साधु कामराग से स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को सामान्य अथवा विशेष रूप से न देखे। केवली भगवान् कहते हैं कि - स्त्रियों की मनोहर मनोरम इन्द्रियों को कामराग पूर्वक सामान्य या विशेष रूप से देखने वाला साधु शांति रूप चारित्र और ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अतः निर्ग्रन्थ को स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को कामराग पूर्वक सामान्य या विशेष रूप से नहीं देखना चाहिये। यह दूसरी भावना है।

तदनन्तर तीसरी भावना यह है-निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति और पूर्वकृत कामक्रीडा का स्मरण न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि स्त्रियों के साथ की हुई रति और पूर्वकृत कामक्रीडा का स्मरण करने वाला निर्ग्रन्थ शांति रूप चारित्र तथा ब्रह्मचर्य का नाश करने वाला होता है एवं शांतिरूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति और पूर्वकृत काम क्रीड़ा का स्मरण न करे। यह तीसरी भावना है।

इसके बाद चौथी भावना यह है - निर्ग्रन्थ परिमाण से अधिक आहार पानी एवं प्रणीत रस प्रकाम भोजन-स्निग्ध सरस स्वादिष्ट भोजन का उपभोग न करे। केवली भगवान् का कथन है कि जो निर्ग्रन्थ परिमाण से अधिक आहार पानी सेवन करता है और स्निग्ध सरस स्वादिष्ट भोजन करता है वह शांति रूप चारित्र एवं शांतिरूप ब्रह्मचर्य को भंग करने वाला होता है तथा शांतिरूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अतः निर्ग्रन्थ को अतिमात्रा में आहार पानी का सेवन या सरस स्निग्ध स्वादिष्ट भोजन का उपभोग नहीं करना चाहिये। यह चौथी भावना है।

इसके पश्चात् पांचवीं भावना इस प्रकार है - निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु, पण्डग (नपुंसक) से युक्त शय्या और आसन आदि का सेवन न करे। केवली भगवान् कहते हैं कि जो निर्ग्रन्थ स्त्री-पशु-नपुंसक से युक्त शय्या और आसन आदि का सेवन करता है वह शांति रूप चारित्र और शांति रूप ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। अतः निर्ग्रन्थ साधु को स्त्री-पशु-नपुंसक से युक्त शय्या और आसन आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। यह पांचवीं भावना है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौथे महाव्रत की पांच भावनाओं का वर्णन किया गया है जो संक्षेप में इस प्रकार है - १. साधु स्त्रियों की कामविषयक कथा नहीं करे २. विकार दृष्टि से स्त्रियों के अंगोपांगों को नहीं देखे ३. पूर्व में भोगे हुए कामभोगों का स्मरण नहीं करे ४. परिमाण से अधिक एवं रूखा सूखा आहार भी परिमाण से अधिक नहीं करे तथा सरस आहार का सेवन भी नहीं करे और ५. स्त्री पशु नपुंसक युक्त शय्या (उपाश्रय) आसन आदि का सेवन नहीं करे।

चौथे महाव्रत की सम्यक् परिपालना के लिये ये पांचों भावनाएँ आवश्यक हैं।

एतावताव चउत्थे महव्वए सम्मं काएण फासिए जाव आराहिए या वि भवइ, चउत्थं भंते! महव्वयं मेहुणाओ वेरमणं॥

भावार्थ - इस प्रकार इन पांच भावनाओं से युक्त चौथे महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, पालन करने, गृहीत महाव्रत को भली भांति पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा उसमें अंत तक अवस्थित रहने पर भगवान् की आज्ञा का आराधन हो जाता है। यह मैथुन विरमण रूप चौथा महाव्रत है। हे भगवन्! मैं इसमें उपस्थित होता हूँ।

अहावरं पंचमं भंते! महव्वयं सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं परिग्गहं गिण्हिज्जा, णेवण्णेहिं परिग्गहं गिण्हाविज्जा, अण्णंपि परिग्गहं गिण्हंतं ण समणुजाणिज्जा जाव वोसिरामि॥

भावार्थ - इसके पश्चात् हे भगवन्! मैं पांचवें महाव्रत को स्वीकार करता हूँ जिसमें मैं सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करता हूँ। मैं थोड़ा या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, न दूसरों से ग्रहण कराऊँगा और न परिग्रह ग्रहण करने वालों का अनुमोदन करूँगा यावत् मैं अपनी आत्मा को परिग्रह से सर्वथा पृथक् करता हूँ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधु साध्वियों के पांचवें महाव्रत का वर्णन किया गया है। इस महाव्रत में साधु या साध्वी सर्व प्रकार के परिग्रह का तीन करण तीन योग से त्याग करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्स इमाओ पंच भावणाओ भवंति। तत्थिमा पढमा भावणा, सोयओ णं जीवे मणुण्णामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेइ, मणुण्णामणुण्णेहिं सद्देहिं णो सज्जिज्जा, णो रज्जिज्जा, णो गिज्झिज्जा, णो मुज्झिज्जा, णो अज्झोववज्झिज्जा, णो विणिग्घायमावज्जिज्जा, केवली बूया, णिग्गंथे णं मणुण्णा मणुण्णेहिं सद्देहिं सज्जमाणे जाव विणिग्घाय-मावज्जमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा।

ण सक्का ण सोउं सद्दा, सोयविसयमागया।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥
सोयओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेइ त्ति पढमा भावणा॥

कठिन शब्दार्थ - **सोयओ** - श्रोत्र इन्द्रिय से, **मणुण्णामणुण्णाइं** - मनोज्ञ और अमनोज्ञ, **सज्जिज्जा** - आसक्त होवे, **रज्जिज्जा** - रागभाव करे, **गिज्झिज्जा** - गृद्ध होवे, **मुज्झिज्जा** - मूर्च्छित होवे, **अज्झोववज्जिज्जा**- अत्यंत आसक्त होवे, **विणिग्घायं** - विनिघात-विनाश को, **आवज्जिज्जा** - प्राप्त होवे, **सोयविसयं** - श्रोत्र विषय में, **आगया** - आये हुए।

भावार्थ - उस पांचवें महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं। उन पांच भावनाओं में से प्रथम भावना यह है - श्रोत्र इन्द्रिय (कान) से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों को सुनता है परन्तु वह उनमें आसक्त न होवे, रागभाव न करे, गृद्ध न होवे, मोहित न होवे, अत्यंत आसक्ति न करे और न ही रागद्वेष करे। केवली भगवान् का कथन है-जो साधु मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में आसक्त होता है यावत् राग द्वेष करता है वह शांति रूप चारित्र का नाश करता है, शांति को भंग करता है और शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

श्रोत्र विषय में आए हुए (कान में पड़े हुए) शब्द नहीं सुने जाय, यह संभव नहीं है किन्तु उनके सुनने पर जो राग द्वेष की उत्पत्ति होती है भिक्षु (साधु साध्वी) उसका त्याग करे।

अतः श्रोत्रेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ सभी प्रकार के शब्दों को सुनकर उनमें आसक्त न होवे अर्थात् मनोज्ञ शब्द में राग भाव और अमनोज्ञ शब्द में द्वेष भाव नहीं करें। यह प्रथम भावना है।

अहावरा दोच्चा भावणा, चक्खुओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रूवाइं पासइ, मणुण्णामणुण्णेहिं रूवेहिं णो सज्जिज्जा णो रज्जिज्जा जाव णो विणिग्घायमा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्जिज्जा केवली बूया, मणुण्णामणुण्णेहिं रूवेहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिग्घायमावज्जमाणे संतिभेया संतिविभंगा जाव भंसिज्जा॥

णो सक्का रूवमदट्ठुं, चक्खुविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥
चक्खुओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रूवाइं पासइ त्ति दोच्चा भावणा॥ २॥

भावार्थ - इसके बाद दूसरी भावना यह है-चक्षु(आँख) से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ सभी प्रकार के रूपों को देखता है किन्तु साधु साध्वी उन मनोज्ञ अमनोज्ञ रूपों में आसक्त न होवे, रागभाव न करे, गृद्ध न होवे, मोहित न होवे, अत्यंत आसक्ति न करे और न ही राग द्वेष करे। केवली भगवान् कहते हैं कि जो साधु मनोज्ञ अमनोज्ञ रूपों में आसक्त होता है यावत् राग द्वेष करता है वह शांति रूप चारित्र को नष्ट करता है शांति को भंग करता है और शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

चक्षुओं के विषय में आये हुए रूपों को नहीं देख पाना संभव नहीं है किन्तु उनके देखने पर जो राग द्वेष उत्पन्न होता है साधु साध्वी उसका परित्याग करे। अतः चक्षुरिन्द्रिय से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ सभी प्रकार के रूपों को देखता है किन्तु निर्ग्रन्थ साधक उनमें आसक्त नहीं होवे यावत् राग द्वेष नहीं करे। यह दूसरी भावना है।

अहावरा तच्चा भावणा, घाणओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं गंधाइं अग्घायइ, मणुण्णामणुण्णेहिं गंधेहिं णो सज्जिज्जा णो रज्जिज्जा जाव णो विणिग्घायमावज्जिज्जा, केवली बूया, मणुण्णामणुण्णेहिं गंधेहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिग्घाय मावज्जमाणे संतिभेया संति विभंगा जाव भंसिज्जा।

णो सक्का गंधमग्घाउं, णासा विसयमागयं।
राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥
घाणओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं गंधाइं अग्घायइ त्ति तच्चा भावणा॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - **अग्घायइ** - सूंघता है।

भावार्थ - इसके पश्चात् तीसरी भावना इस प्रकार है - नासिका (नाक) से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ गंधों को सूंघता है किन्तु निर्ग्रन्थ मनोज्ञ या अमनोज्ञ गंध में आसक्त न होवे, अनुरक्त न होवे, गृद्ध न होवे, मूर्च्छित न होवे, अति आसक्त न होवे और उन पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राग द्वेष न करे। केवली भगवान् कहते हैं जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ और अमनोज्ञ गंध में आसक्त, आरक्त, गृद्ध यावत् राग द्वेष से युक्त हो जाता है वह शांति रूप चारित्र को नष्ट कर देता है, शांति भंग करता है और शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा संभव नहीं है कि नासिका के सान्निध्य में आए हुए गंध के परमाणु सूंघे न जाएं किन्तु सूंघने पर उनमें राग द्वेष उत्पन्न होता है तो भिक्षु (साधु-साध्वी) उसका त्याग करे।

अतः घ्राणेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ या अमनोज्ञ सभी प्रकार की गंधों को सूंघता है किन्तु निर्ग्रन्थ साधक उसमें आसक्त नहीं हो यावत् राग द्वेष नहीं करे। यह तीसरी भावना है।

अहावरा चउत्था भावणा जिब्भाओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रसाइं अस्साएइ, मणुण्णामणुण्णेहिं रसेहिं णो सज्जिज्जा णो रज्जिज्जा जाव णो विणिग्घाय-मावज्जिज्जा, केवली बूया, णिग्गंथे णं मणुण्णामणुण्णेहिं रसेहिं सज्जमाणे जाव विणिग्घाय-मावज्जमाणे संतिभेया जाव भंसिज्जा।

णो सक्का रसमस्साउं, जीहाविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥

जीहाओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रसाइं अस्साएइ त्ति चउत्था भावणा॥ ४॥

कठिन शब्दार्थ - अस्साएइ - आस्वादन-चखता है।

भावार्थ - इसके पश्चात् चौथी भावना इस प्रकार है-जिह्वा से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों का आस्वादन करता है किन्तु वह उन रसों में आसक्त न होवे, आरक्त न होवे, गृद्ध न होवे, मूर्च्छित न होवे, अत्यासक्त न होवे और उन पर राग द्वेष नहीं करे। केवली भगवान् का कथन है कि जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में आसक्त होता है, आरक्त होता है यावत् रागद्वेष करता है वह शांति रूप चारित्र को नष्ट करता है, शांति भंग करता है और शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा नहीं होता है कि जिह्वा प्रदेश में आए हुए अर्थात् जीभ पर रखे हुए रसों को जिह्वा चखे नहीं किन्तु उन रसों के प्रति जो रागद्वेष होता है भिक्षु (साधु साध्वी) उसका त्याग करे। अतः जिह्वा से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ सभी प्रकार के रसों का आस्वादन करता है किन्तु निर्ग्रन्थ उनमें आसक्त, आरक्त यावत् रागद्वेष नहीं करे। यह चौथी भावना है।

अहावरा पंचमा भावणा फासओ जीवो मणुण्णामणुण्णाइं फासाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिसंवेएइ, मणुण्णामणुण्णेहिं फासेहिं णो रज्जिज्जा णो सज्जिज्जा णो गिज्झिज्जा, णो मुज्झिज्जा, णो अज्झोववज्जिज्जा णो विणिग्घायमावज्जिज्जा, केवली बूया, णिग्गंथे णं मणुण्णामणुण्णेहिं फासेहिं सज्जमाणे जाव विणिग्घायमावज्जमाणे, संतिभेया संतिविभंगा, संति केवली पण्णत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा।

णो सक्का फासमवेएउं, फासविसयमागयं।
रागदोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥

फासओ जीवा मणुण्णामणुण्णाइं फासाइं पडिसंवेएइ त्ति पंचमा भावणा॥

कठिन शब्दार्थ - **पडिसंवेएइ** - संवेदन (अनुभव) करता है।

भावार्थ - इसके पश्चात् पांचवीं भावना इस प्रकार है-स्पर्शेनेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों का अनुभव करता है किन्तु भिक्षु (साधु साध्वी) उन मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में आसक्त न होवे, आरक्त न होवे, गृद्ध न होवे, मूर्च्छित न होवे, अति आसक्त न होवे और न ही उन स्पर्शों में राग द्वेष करे। केवली भगवान् का कथन है कि जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में आसक्त होता है यावत् रागद्वेष करता है वह शांति रूप चारित्र को नष्ट करता है, शांति को भंग करता है और शांति रूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा संभव नहीं है कि स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेश में आए स्पर्श का अनुभव नहीं हो अतः भिक्षु (साधु साध्वी) उन मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग द्वेष का त्याग करे।

अतः स्पर्शनेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ सभी प्रकार के स्पर्शों का अनुभव करता है किन्तु निर्ग्रन्थ उन स्पर्शों में आसक्त नहीं हो यावत् राग द्वेष नहीं करे। यह पांचवीं भावना है।

एतावताव पंचमे महव्वए सम्मं काएण फासिए पालिए तीरिए किट्टिए अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवइ, पंचमं भंते! महव्वयं परिग्गहाओ वेरमणं॥

भावार्थ - इस प्रकार इन पांच भावनाओं से युक्त पांचवें महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, पालन करने, गृहीत (ग्रहण किये हुए) महाव्रत को भलीभांति पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा उसमें अंत तक अवस्थित रहने पर भगवान् की आज्ञा का आराधन हो जाता है। यह परिग्रह विरमण रूप पांचवां महाव्रत है। हे भगवन्! मैं इसमें उपस्थित होता हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांचवें महाव्रत की पांच भावनाओं का वर्णन किया गया है जो संक्षेप में इस प्रकार है-साधु या साध्वी मनोज्ञ (प्रिय) १. शब्द २. रूप ३. गंध ४. रस और ५. स्पर्श में राग नहीं करे और अमनोज्ञ (अप्रिय) में द्वेष नहीं करे।

इच्चेएहिं पंचमहव्वएहिं पणवीसाहिं च भावणाहिं संपण्णे अणगारे अहासुयं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता, सोहित्ता, तीरित्ता, किट्टित्ता आणाए आराहित्ता यावि भवइ॥ १७९॥

॥ पणरहमं अज्झयणं समत्तं॥

कठिन शब्दार्थ - **अहासुयं** - यथाश्रुत, **अहाकप्पं** - यथाकल्प, **अहामग्गं** - यथामार्ग, **सम्मं** - सम्यक् प्रकार से, सहातच्चं - यथा तथ्य।

भावार्थ - इन उपरोक्त पांच महाव्रतों और उनकी पच्चीस भावनाओं से सम्पन्न अनगार यथाश्रुत, यथाकल्प यथामार्ग और यथातथ्य इनका काया से सम्यक् प्रकार से स्पर्श कर, पालन कर, अतिचारों का शोधन कर, इन्हें पार लगा कर, इनके महत्त्व का कीर्तन करके, आराधना करके भगवान् की आज्ञानुसार पालन करके आराधक बन जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में साधक भगवान् की आज्ञानुसार पांच महाव्रतों का आराधक किस प्रकार बन सकता है इसका संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ४ और प्रश्न व्याकरण सूत्र के संवर द्वार में इसी प्रकार पांच महाव्रतों का वर्णन किया गया है।

समवायांग सूत्र और आचारांग सूत्र की चूर्णि में वर्णित पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं के क्रम एवं वर्णन में कुछ अंतर है। इसका कारण वाचना भेद ही लगता है।

इस पन्द्रहवें भावना नामक अध्ययन में सर्वप्रथम श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के जीवन पर प्रकाश डाला गया है तत्पश्चात् साधु, साध्वियों के पांच महाव्रत और उनकी पच्चीस भावनाओं का विस्तृत वर्णन है। इनका सम्यक् प्रकार से पालन और आराधन करके ही जीव आराधक बनता है और अंत में सभी कर्म बंधनों से मुक्त होकर शाश्वत सुखों को प्राप्त करता है।

❀ भावना नामक पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त ❀

॥ तृतीय चूला समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ चूला

विमुक्ति नामक सोलहवां अध्ययन

पन्द्रहवें अध्ययन में पांच महाव्रत और पच्चीस भावनाओं का उल्लेख करने के बाद सूत्रकार इस सोलहवें अध्ययन में विमुक्ति-मोक्ष के साधन रूप उपायों का वर्णन करते हैं। महाव्रतों की साधना कर्मों से मुक्त होने के लिए ही है अतः इस अध्ययन में कर्म मुक्ति के लिए निर्जरा के साधनों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। निर्जरा के साधनों का उल्लेख करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं -

अनित्य भावना बोध

अणिच्चमावासमुवेंति जंतुणो, पलोयए सुच्चमिणं अणुत्तरं।
विउसिरे विण्णू अगारबंधणं, अभीरू आरंभपरिग्गहं चए॥ १॥

कठिन शब्दार्थ - **अणिच्चं** - अनित्य, **आवासं** - आवास को, **उवेंति** - प्राप्त करते हैं, **पलोयए**- पर्यालोचन करे, **विउसिरे** - त्याग कर दे, **विण्णू** - विज्ञ-विद्वान्, **अगारबंधणं**- अगार (गृहस्थ) के बंधनों को, **अभीरू** - भय रहित-निर्भीक, **चए** - छोड़ दे।

भावार्थ - जिन शरीर आदि में आत्माएँ आवास प्राप्त करती है अर्थात् संसार के समस्त प्राणी जिन योनियों में जन्म लेते हैं वे सब स्थान अनित्य हैं। सर्व श्रेष्ठ जिन प्रवचन में कथित यह वचन सुन कर उस पर अंतर की गहराई से पर्यालोचन करे तथा समस्त भयों से मुक्त बना हुआ विज्ञ (विद्वान्) पुरुष अगारिक-घर बार के बंधनों का त्याग कर दे और आरंभ परिग्रह को छोड़ दे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में संसार की अनित्यता का बोध कराते हुए विविध बंधनों और आरंभ परिग्रह का त्याग करने की प्रेरणा दी गई है। जो सभी भयों से मुक्त विवेकी पुरुष है वह सांसारिक बंधनों के यथार्थ स्वरूप को समझ कर उनका त्याग कर देता है।

यह सारा ही संसार अनित्य है। तात्पर्य यह है कि - चारों गतियों में जीव, जिन-जिन योनियों में उत्पन्न होते हैं वे सब अनित्य हैं। देवों की जैसी लम्बी स्थिति है वैसी मनुष्यों की नहीं है। धर्माचरण की दृष्टि से मनुष्य आयु एक करोड़ पूर्व से भी कम है। ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, घर आदि के पाश बन्धनों का सर्वथा त्याग कर दे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी प्रकार के भय से भयभीत नहीं होने वाला और परीषह उपसर्गों से नहीं घबराने वाला साधु आरम्भ तथा बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का सर्वथा परित्याग कर दे।

पर्वत की उपमा तथा परीषहोपसर्ग सहन-प्रेरणा

तहागयं भिक्खुमणंतसंजयं, अणेलिसं विण्णू चरंतमेसणं।
तुदंति वायाहिं अभिद्दवं णरा, सरेहिं संगामगयं व कुंजरं॥ २॥

कठिन शब्दार्थ - **तहागयं** - तथागत, **अणंतसंजयं** - अनंत संयत-एकेन्द्रिय जीवों की रक्षा में यत्नशील, **अणेलिसं** - अनुपम संयमी, **चरंतं** - गवैषणा करने वाला, **एसणं** - शुद्ध आहार की, **तुदंति**- व्यथित करते हैं, **वायाहिं** - वचनों से, **सरेहिं** - शरों-बाणों से, **संगामगयं**- संग्राम में गये हुए, **कुंजरं**- हाथी को।

भावार्थ - उस तथाभूत एकेन्द्रिय आदि जीवों के प्रति सम्यक् यतनावान्, अनुपम संयमी, विद्वान् और आगमानुसार शुद्ध आहार आदि की एषणा करने वाले भिक्षु को देख कर कोई अनार्य मनुष्य उसे असभ्य वचन कहता है तथा पत्थर आदि से प्रहार कर उसी तरह व्यथित कर देते हैं जैसे संग्राम में वीर योद्धा शत्रु के हाथी पर बाणों की वर्षा करते हैं।

विवेचन - मूल में '**तहागयं**' शब्द दिया है। जिसकी संस्कृत छाया 'तथागत' होती है। तथागत शब्द का अर्थ यह किया गया है-अनित्यता आदि भावनाओं से गृह बन्धन से मुक्त। दूसरा अर्थ यह किया गया है कि जिस मार्ग से तीर्थङ्कर भगवान् तथा गणधर आदि गये हैं उसी मार्ग से जो गमन करता है वह तथागत कहलाता है। इस गाथा में साधु साध्वी की सहिष्णुता और समभाव वृत्ति का उल्लेख किया गया है।

तहप्पगारेहिं जणेहिं हीलिए, ससद्दफासा फरुसा उईरिया।
तितिक्खए णाणी अदुट्ठचेयसा, गिरिव्व वाएण ण संपवेयए॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - **हीलिए** - हीलित, **ससद्दफासा** - सशब्द स्पर्श, **उईरिया** - उदीरित, **तितिक्खए**- सहन करे, **अदुट्ठचेयसा**- अदुष्ट-कलुषता रहित मन वाला, **वाएण**- वायु से, **संपवेयए**-कम्पित होता है।

भावार्थ - अनार्य पुरुषों के तुल्य और असभ्यजनों द्वारा आक्रोश आदि शब्दों से हीलना किया जाने पर तथा शीत आदि स्पर्शों से पीडित किया जाने पर ज्ञानवान् मुनि उन परीषह उपसर्गों को समभाव पूर्वक प्रसन्न चित्त से सहन करे। जिस प्रकार वायु के प्रबल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता उसी प्रकार संयमशील मुनि भी इन परीषह उपसर्गों के होने पर संयम से विचलित न होवे।

विवेचन - बाल अज्ञानी जनों द्वारा अत्यन्त प्रबलता से किये गये कठोर और तीव्र अमनोज्ञ शब्दों द्वारा आक्रोशित किया जाने पर तथा शीत उष्ण आदि दुःखोत्पादक परीषह दिया जाने पर आत्मज्ञानी मुनि मन को द्वेषभाव आदि से दूषित किये बिना अकलुषित अतःकरण से सहन करे क्योंकि वह मुनि ज्ञानी है। 'ये मेरे ही पूर्वकृत कर्मों का फल है' यह मान कर वैराग्य भावना से इस तथ्य के विचार से सहन करे कि -

आक्रुष्टेन मतिमता तत्त्वार्थ विचारणे मतिः कार्या।
यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किं नु कोपेन?॥

अर्थ - बुद्धिमान पुरुष को आक्रोश का प्रसङ्ग आने पर तत्त्वार्थ का विचार करने में अपनी बुद्धि लगानी चाहिए कि यदि इस आक्रोश करने वाले पुरुष का कथन सत्य है तो उसके लिये क्रोध क्यों करना चाहिए? क्योंकि यह ठीक बात कह रहा है और यदि उसका कथन असत्य है तो उस पर क्रोध करने से क्या लाभ? इस प्रकार ज्ञानी साधक मन से भी उन अनार्य पुरुषों पर द्वेष न करें। जब मन से भी द्वेष न करे तो फिर वचन और काया से तो करने का प्रश्न ही नहीं रहता है।

जिस प्रकार प्रबल झंझावात एवं आंधी से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता है उसी प्रकार विचार शील साधक इन परीषह उपसर्गों के आने पर संयम से थोड़ा सा भी विचलित न होवे।

रजत-शुद्धि का दृष्टान्त व कर्ममल शुद्धि की प्रेरणा

उवेहमाणे कुसलेहिं संवसे, अकंतदुक्खी तस थावरा दुही।
अलूसए सव्वसहे महामुणी, तहा हि से सुसमणे समाहिए॥ ४॥

कठिन शब्दार्थ - **उवेहमाणे** - सहन करता हुआ या उपेक्षा करता हुआ, **अकंतदुक्खी**- अकान्त दुःखी अर्थात् दुःख से दुःखी, **अलूसए** - परिताप न देता हुआ, **सुसमणे** - सुश्रमण- श्रेष्ठ श्रमण।

भावार्थ - परीषह उपसर्गों को सहन करता हुआ अथवा माध्यस्थ भाव का अवलम्बन करता हुआ वह मुनि गीतार्थ मुनियों के साथ रहे। त्रस एवं स्थावर सभी प्राणियों को दुःख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रिय लगता है अतः उन्हें दुःखी देख कर किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथ्वी की भांति सभी परीषह उपसर्गों को सहन करने वाला महामुनि सुश्रमण-श्रेष्ठ श्रमण कहा जाता है।

विवेचन - मुनि संसार के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता और द्रष्टा होता है अतः वह परीषह और उपसर्गों से विचलित नहीं होता है क्योंकि वह यह भी जानता है कि प्रत्येक प्राणी को सुख प्रिय लगता है और दुःख अप्रिय लगता है। संसार में एकेन्द्रिय आदि सभी प्राणी दुःखों से पीड़ित हैं। इसलिये वह किसी भी प्राणी को संक्लेश और परिताप नहीं देता। वह दूसरे प्राणियों से मिलने वाले अपने दुःखों को समभाव पूर्वक सहन करता है। परन्तु अपनी तरफ से किसी भी प्राणी को दुःख नहीं देता है यह उसकी उत्कृष्ट साधुता है। इस विशिष्ट साधना के द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण तो करता ही है किन्तु अन्य प्राणियों को भी कल्याण करने में सहायक बनता है। ऐसे मुनि को गीतार्थ और विशिष्ट ज्ञानियों के साथ रहना चाहिए ताकि उसकी साधना आगे से आगे बढ़ती रहे।

विऊ णए धम्मपयं अणुत्तरं, विणीय तण्हस्स मुणिस्स ज्झायओ।
समाहियस्स अग्गिसिहा व तेयसा, तवो य पण्णा य जसो य वड्ढइ॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - **णए** - नत-विनयवान्, **विऊ** - विद्वान, **विणीयतण्हस्स** - तृष्णा को दूर करने वाले, **ज्झायओ** - धर्मध्यान करने वाले, **समाहियस्स** - समाधिवान् के, **अग्गिसिहा** - अग्नि शिखा।

भावार्थ - क्षमा मार्दव आदि दस प्रकार के श्रेष्ठ धर्म में प्रवृत्ति करने वाला विनयवान् एवं ज्ञान संपन्न विद्वान् मुनि जो तृष्णा रहित होकर धर्म ध्यान में संलग्न है और चारित्र पालन में सावधान है उसके तप, प्रज्ञा और यश में अग्नि शिखा के तेज की भांति वृद्धि होती है।

विवेचन - जिस प्रकार निर्धूम अग्नि शिखा तेजस्वी और प्रकाशवान् होती है उसी प्रकार प्रभु आज्ञानुसार संयम का पालन करने वाले विनयी शिष्य के तप, तेज, प्रज्ञा और यश में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है जिससे वह तेजस्वी और प्रकाश युक्त बन जाता है।

दिसोदिसिंऽणंतजिणेण ताइणा, महव्वया खेमपया पवेइया।
महागुरु णिस्सयरा उईरिया, तमेव तेउत्ति दिसं पगासया॥ ६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - **दिसोदिसिं** - सभी दिशाओं में, **खेमपया** - क्षेमपद-रक्षा के स्थान, **ताइणा** - रक्षक, **णिस्सयरा** - निःस्वकराणि-कर्म बंधन को तोडने वाले, **पगासया** - प्रकाशक-प्रकाश करने वाले।

भावार्थ - छहकाया के रक्षक, अनंत ज्ञान संपन्न जिनेन्द्र भगवान् ने सभी एकेन्द्रिय आदि भाव दिशाओं में रहने वाले जीवों के हित के लिए तथा उन्हें अनादिकाल से आबद्ध कर्म बंधनों से छुडाने में समर्थ महाव्रतों का निरूपण किया है। जिस प्रकार तेज ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् इन तीन दिशाओं के अंधकार को नष्ट करके प्रकाश करता है उसी प्रकार महाव्रत रूप तेज भी अंधकार रूप कर्म समूह को नष्ट करके ज्ञानवान आत्मा तीनों लोकों में प्रकाशक बन जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में पांच महाव्रतों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। जगत् जीवों के कल्याण के लिये तीर्थंकर प्रभु महाव्रतों का निरूपण करते हैं। जो साधक इन महाव्रतों का निर्दोष पालन करते हैं वे अपने कर्म बंधनों को तोड कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन जाते हैं अर्थात् महाव्रतों की साधना आत्मा को कर्म बंधन से मुक्त कराने वाली है।

मूल गाथा में "**दिसोदिसिं**" शब्द दिया है। जिसकी संस्कृत छाया टीकाकार ने "दिशोदिशः" की है। जिसका अर्थ होता है सभी दिशाओं में। दिशा के दो भेद हैं-द्रव्य दिशा और भाव दिशा। द्रव्य दिशा के अठारह भेद हैं और भाव दिशा के भी अठारह भेद हैं। द्रव्य दिशा के अठारह भेद इस प्रकार हैं - पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (दिशा), ईशाणकोण आग्नेयकोण, वायव्यकोण और नैऋत्यकोण (विदिशा) इन आठ के बीच में आठ अन्तराल दिशाएँ हैं इनको अनुदिशा कहते हैं। विमला (ऊर्ध्वदिशा-ऊंची-दिशा), तमा (अधोदिशा-नीची दिशा) इस प्रकार ये अठारह द्रव्य दिशाएँ हैं।

जीव को लक्ष्य करके अठारह भाव दिशाएँ बतलाई गयी हैं वे इस प्रकार हैं - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज और स्कन्धबीज (ये चार वनस्पतिकाय) बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, अकर्मभूमि मनुष्य, कर्मभूमि मनुष्य, अन्तरद्वीपिक मनुष्य और सम्मूर्च्छिम मनुष्य, नरक और देव। ये अठारह भाव दिशाएँ हैं। इन अठारह भाव दिशाओं को अठारह द्रव्य दिशाओं से गुणा करने पर (१८×१८=३२४) तीन सौ चौबीस होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक जीव इन तीन सौ चौबीस दिशाओं में अनादि काल से परिभ्रमण करता आ रहा है। अब मनुष्य भव मिला है। ज्ञानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फरमाते हैं कि इस मनुष्य भव में ही धर्म क्रिया करने की योग्यता है। इसलिए भगवान् के द्वारा फरमाये हुए पांच महाव्रतों को अङ्गीकार करके कर्म बन्धनों को तोड़ कर अजर-अमर होकर अनन्त अव्याबाध सुखों को प्राप्त करने का अर्थात् सिद्ध पद को प्राप्त करने का यह अमूल्य अवसर है। अतः बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि ऐसे अमूल्य अवसर को व्यर्थ नहीं खो देना चाहिए। अर्थात् कामभोगों में आसक्त होकर आरम्भ परिग्रह में जीवन को नहीं खो देना चाहिए।

सिएहिं भिक्खू असिए परिव्वए, असज्जमित्थीसु चइज्ज पूयणं।
अणिस्सिओ लोगमिणं तहापरं, णमिज्जइ कामगुणेहिं पंडिए॥ ७॥

कठिन शब्दार्थ - **सिएहिं** - कर्म या गृहपाश में बद्ध जीवों से, **असिए** - असित-पाश से निर्गत अर्थात् कर्म बन्धनों से रहित, **असज्जं** - आसक्त न होता हुआ, **इत्थीसु** - स्त्रियों में, **चइज्ज** - त्याग कर देवे, **पूयणं** - पूजा-मान सत्कार की चाह को, **अणिस्सिओ**-अनिश्रित, **मिज्जइ** - स्वीकार करता है।

भावार्थ - साधु कर्मपाश से बंधे हुए गृहस्थों या अन्यतीर्थियों के संसर्ग (संपर्क) से रहित होकर संयम में विचरण करे तथा स्त्रियों के संग का त्याग करके पूजा सत्कार की लालसा को छोड़े और इहलोक तथा परलोक के सुखों की कामना नहीं करता हुआ अनिश्रित-निस्पृह होकर रहे। कामभोगों के कटु विपाक को देखने वाला पंडित मुनि शब्दादि कामगुणों को स्वीकार न करे।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में राग द्वेष से युक्त कर्मपाश में आबद्ध गृहस्थों एवं अन्यतीर्थियों का संसर्ग आत्मसाधना में बाधक होने के कारण त्याज्य बताया गया है। क्योंकि गृहस्थ और अन्यमति परिव्राजकों के सम्पर्क से उसके भव में रागद्वेष की भावना जागृत हो सकती है और आध्यात्मिक साधना पर संशय हो सकता है। दूसरी बात यह है कि साधक का स्वाध्याय और चिन्तन करने का अमूल्य समय जिसके द्वारा वह आत्मा पर लगे हुए कर्म मल को दूर करके आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर आगे बढ़ता है। वह अमूल्य समय व्यर्थ की बातों में नष्ट हो जायेगा इस प्रकार उनका संसर्ग आत्म-साधना में बाधक होने के कारण त्याज्य बतलाया गया है। इसी तरह स्त्रियों के संसर्ग से भी विषय वासना जागृत एवं उद्दीप्त हो सकती है और संयम के लिए घातक बन सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मान, पूजा, प्रतिष्ठा की भावना और इहलौकिक एवं पारलौकिक सुखों की अभिलाषा भी संयम से पतित होने का कारण बन सकती है क्योंकि इनके वशीभूत बना हुआ आत्मा अनेक प्रकार के बुरे और पापकर्म कर सकता है। इसलिए साधक को इन सब के कटु परिणामों को जानकर इनसे दूर रहना चाहिये। इन से सर्वथा पृथक् रहना चाहिए। जो ऐसा रहता है वह साधक वास्तव में पण्डित है ज्ञानी है और वही साधक कर्म बन्धन से मुक्त होकर सिद्ध गति को प्राप्त कर सकता है।

तहा विमुक्कस्स परिण्णचारिणो, धिइमओ दुक्खखमस्स भिक्खुणो।
विसुज्झइ जंसि मलं पुरेकडं, समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥ ८॥

कठिन शब्दार्थ - विमुक्कस्स - विमुक्त-सर्वसंग से रहित, **परिण्णचारिणो** - ज्ञान पूर्वक आचरण करने वाला, **धिइमओ** - धृतिमान्-धैर्यवान्, **समीरियं** - समीरित-प्रेरित किया हुआ, **रुप्पमलं** - चांदी का मैल, **जोइणो** - अग्नि से।

भावार्थ - जिस प्रकार अग्नि से चांदी का मैल अलग हो जाता है उसी प्रकार सर्व संगों से विमुक्त ज्ञान पूर्वक क्रिया करने वाला धैर्यमान एवं सहिष्णु साधक पूर्वकृत कर्ममल को दूर कर विशुद्ध हो जाता है।

विवेचन - जैसे चांदी पर लगे हुए मैल को अग्नि द्वारा दूर कर दिया जाता है। उसी प्रकार कर्म मैल को ज्ञान पूर्वक आचरण करके हटाया जा सकता है। ज्ञान पूर्वक की गयी क्रिया ही आत्म विकास में सहायक होती हैं। जैसे चांदी आग में तपकर शुद्ध होती है उसी तरह तप और परीषह उपसर्गों की आग में तपकर साधक की आत्मा भी शुद्ध बन जाती है।

इस गाथा में यह बतलाया गया है कि साधना करने वाले साधक में धैर्य और सहिष्णुता का होना भी आवश्यक है क्योंकि धैर्यवान् और सहिष्णु साधक ही परीषह उपसर्गों में अडोल रह सकता है।

भुजंग दृष्टान्त द्वारा बंधन मुक्ति की प्रेरणा

से हु परिण्णा समयंमि वट्टइ, णिराससे उवरय मेहुणा चरे।
भुयंगमे जुण्णतयं जहा जहे, विमुच्चइ से दुहसिज्ज माहणे॥ ९॥

कठिन शब्दार्थ - परिण्णा - परिज्ञा-परिज्ञान, **समयंमि** - समय-सिद्धान्त में, **णिराससे**-निराशंस-आशंसा से रहित, **उवरय** - उपरत, **भुयंगमे** - भुजंगम-सर्प, **जुण्णतयं** - जीर्णत्वचा-कांचली को, **विमुच्चइ** - विमुक्त होता है, **दुहसिज्ज** - दुःख रूप शय्या से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जिस प्रकार सर्प अपनी जीर्ण त्वचा-कांचली को त्याग कर उससे मुक्त (पृथक्) हो जाता है उसी प्रकार मूल गुण और उत्तर गुणों को धारण करने वाला शास्त्रोक्त क्रियाओं का पालक मुनि मैथुन से सर्वथा निवृत एवं इहलोक परलोक के सुखों की आशा से रहित माहन-भिक्षु नरकादि दुःख रूप शय्या या कर्म बंधनों से मुक्त हो जाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में सर्प का उदाहरण देकर बताया गया है कि जैसे सर्प अपनी पुरानी कैंचुली को छोड़ कर शीघ्रगामी और हलका हो जाता है उसी प्रकार जो मुनि सावद्य कार्यों, विषयविकारों एवं भौतिक सुखों की इच्छा का त्याग कर देता है वह दुःखमय संसार से मुक्त हो जाता है।

मूल गाथा में "**उवरय मेहुणा**" (मैथुन से उपरत) शब्द दिया यह उपलक्षण मात्र है इससे प्राणातिपात विरमण आदि पांचों महाव्रतों का ग्रहण कर लेना चाहिए।

ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में चार प्रकार की दुःख शय्या और चार प्रकार की सुख शय्या का वर्णन किया गया है।

महासमुद्र दृष्टान्त द्वारा कर्म अन्त करने की प्रेरणा

जमाहु ओहं सलिलं अपारयं, महासमुद्दं व भुयाहिं दुत्तरं।
अहे य णं परिजाणाहि पंडिए, से हु मुणी अंतकडे त्ति वुच्चइ॥ १०॥

कठिन शब्दार्थ - **जं** - जो, **आहु** - कहा है, **ओहं** - ओघरूप, **सलिलं** - जल, **अपारयं** - जिसका पार नहीं आता, **भुयाहिं** - भुजाओं से, **दुत्तरं** - दुस्तर, **परिजाणाहि** - ज्ञ परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग करे, **अंतकडे** - अंतकृत-कर्मों का अंत करने वाला।

भावार्थ - तीर्थंकर भगवन्तों ने फरमाया है जैसे अपार जल वाले महासमुद्र को भुजाओं से तैरना दुस्तर है वैसे ही संसार रूपी महासमुद्र को पार करना दुष्कर है अतः इस संसार समुद्र के स्वरूप को ज्ञ परिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका त्याग कर दे। इस प्रकार त्याग करने वाला पंडित मुनि कर्मों का अंत करने वाला कहलाता है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में ज्ञानियों ने संसार को महासमुद्र की उपमा देकर उससे पार पाने का उपाय बताया है। समुद्र में अपरिमित जल है अनेक नदियाँ आकर मिलती हैं इसलिए उसे भुजाओं से तैर कर पार करना कठिन है। इसी तरह यह संसार समुद्र भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य आत्माओं के लिए पार करना कठिन है। इस संसार सागर में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग रूप आस्रव से कर्म रूपी जल आता रहता है। इसलिए सर्वप्रथम इस संसार समुद्र के स्वरूप का ज्ञान करना चाहिए कि आस्रव संसार परिभ्रमण का कारण है और संवर एवं निर्जरा संसार से पार होने का साधन है इसलिए ज्ञानी फरमाते हैं कि ज्ञ परिज्ञा से संसार के स्वरूप को जानकर, प्रत्याख्यान परिज्ञा से उसका त्याग कर दे। उससे संसार सागर से पार हो जाएगा। क्योंकि ज्ञान पूर्वक क्रिया करने वाला साधक ही संसार समुद्र को उल्लंघन कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ऐसे मुनि को "**अंतकडे**" कर्मों का अन्त करने वाला कहा गया है।

जहा हि बद्धं इह माणवेहिं, जहा य तेसिं तु विमोक्ख आहिओ।
अहा तहा बंध विमोक्ख जे विऊ, से हु मुणी अंतकडे त्ति वुच्चइ॥ ११॥

कठिन शब्दार्थ - **माणवेहिं** - मनुष्यों ने, **विमोक्ख** - विमुक्त, **अहा** - यथा, **तहा** - तथा।

भावार्थ - मनुष्यों ने इस संसार में आस्रव का सेवन करके जिस प्रकार कर्म बांधे हैं उसी प्रकार सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप के द्वारा उन कर्मों से मुक्त हुआ जाता है यह भी बताया गया है। इस प्रकार जो विद्वान् मुनि बंध और मोक्ष के *यथार्थ स्वरूप को जानता है वह मुनि संसार का या कर्मों का अंत* करने वाला कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत गाथा में कर्म बंध और उससे मुक्त होने का उपाय बताया गया है। आस्रव कर्म आने का द्वार है तो संवर आते हुए कर्मों को रोकने का उपाय है। निर्जरा के द्वारा पूर्वकृत कर्मों का क्षय होता है। इस प्रकार कर्म बंध और कर्मों से मुक्ति का यथार्थ स्वरूप जान कर सम्यक् प्रवृत्ति करने वाला संसार का अंत कर निर्वाण को प्राप्त करता है।

इमंमि लोए परए य दोसु वि, ण विज्जइ बंधणं जस्स किंचि वि।
से हु णिरालंबणमप्पइट्ठिए, कलंकली भावपहं विमुच्चइ॥ १२॥ त्तिबेमि॥

॥ सोलसमं विमुत्तिज्झयणं समत्तं॥

॥ सदाचार णाम बीओ सुयक्खंधो समत्तो॥

कठिन शब्दार्थ - **णिरालंबणं** - निरालम्बन-आलम्बन रहित, **अप्पइट्ठिए** - अप्रतिष्ठित,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कलंकली - आयुष्य कर्म की परंपरा से, **भावपहं** - भावपथ को **विमुच्चइ** - विमुक्त हो जाता है।

भावार्थ - इस लोक, परलोक या दोनों लोकों में जिसका किंचित् मात्र भी राग आदि बंधन नहीं है जो साधक निरालम्ब-इहलोक परलोक की आशाओं से रहित है एवं जो अप्रतिबद्ध है वह साधु निश्चय ही संसार में जन्म मरण की परम्परा से विमुक्त हो जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

त्ति बेमि - अर्थात् सुधर्म स्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मन् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से सुना है वैसा ही तुम्हें कहता हूँ।

विवेचन - प्रश्न - कलंकली भाव किसको कहते हैं ?

उत्तर - कलंकली भाव शब्द के लिए टीकाकार ने लिखा है कि संसारगर्भादिपर्यटनम्" अर्थात् संसार में जन्म मरण करना उसको कलंकली भाव कहते हैं।

"**ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः**" - जैन सिद्धांत में बतलाया गया है कि सम्यग् ज्ञान पूर्वक की जाने वाली क्रिया से मोक्ष होता है।

प्रस्तुत गाथा में विमुक्ति अध्ययन का उपसंहार करते हुए सूत्रकार फरमाते हैं कि जो साधक इहलोक परलोक के सुखों की इच्छा नहीं करता है, जो राग द्वेष से निवृत हो चुका है, जो अप्रतिबद्ध विहारी है वह गर्भावास में नहीं आता अर्थात् वह जन्म मरण का अंत कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाता है।

॥ विमुक्ति नामक सोलहवां अध्ययन समाप्त ॥

॥ चतुर्थ चूला समाप्त ॥

❁ सदाचार नामक द्वितीय श्रुतस्कंध समाप्त ❁

॥ श्री आचारांग सूत्र ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	आचारांग सूत्र भाग १	२५-००
१६.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१७-१९.	उत्तराध्ययनसूत्र भाग १,२,३	४५-००
२०.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२१.	दशवैकालिक सूत्र	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२६.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२९.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
३०-३२.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३४.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३५-३७.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	५७-००
३८.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३९.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
४०.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४१.	नवतत्वों का स्वरूप	१३-००
४२.	अगार-धर्म	१०-००
४३.	Saarth Saamaayik Sootra	१०-००
४४.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४५.	तेतली-पुत्र	४५-००
४६.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४७.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रं.	नाम	मूल्य
४९.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००
५०.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५१.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५२.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५३.	बड़ी साधु वंदना	१०-००
५४.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५५.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५६.	आनुपूर्वी	१-००
५७.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५८.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५९.	जैन स्तुति	७-००
६०.	सिद्ध स्तुति	३-००
६१.	संसार तरणिका	७-००
६२.	आलोचना पंचक	२-००
६३.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६४.	भवनाशिनी भावना	२-००
६५.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६६.	सामायिक सूत्र	१-००
६७.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६८.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६९.	जैन सिद्धांत परिचय	३-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७१.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७२.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७३.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७४.	तीर्थंकरों का लेखा	१-००
७५.	जीव-धड़ा	२-००
७६.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७७.	लघुदण्डक	३-००
७८.	महादण्डक	१-००
७९.	तेतीस बोल	२-००
८०.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८१.	गति-आगति	१-००
८२.	कर्म-प्रकृति	१-००
८३.	समिति-गुप्ति	२-००
८४.	समकित के ६७ बोल	२-००
८५.	पच्चीस बोल	३-००
८६.	नव-तत्त्व	६-००
८७.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८८.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८९.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
९०.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९१.	सामण्ण सद्दिधम्मो	अप्राप्य
९२.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९३.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	४-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ